महाकवि कालिदास विरचितम्

रघुवंश महाकाव्यम्

[द्वितीय सर्गः]

डा० पारसनाथ द्विवेदी

प्रस्तुतं श्लोकं महाकवि कालिदासेन विरचितं 'रघुवंश' महाकाव्यस्य द्वितीयसर्गात् उद्धृतं अस्ति।
अस्मिन श्लोके

इदम् श्लोके ...

महाकवि-कालिदास-विरचितम्

रघुवंश महाकाव्यम्

(द्वितीयः सर्गः)

डा० पारसनाथ द्विवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य
आगरा कालेज, आगरा

एवं

डा० सीताराम शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री
गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, जोधपुर

चपलावत प्रकाशन मन्दिर
मोतीकटरा, आगरा—३

मूल्यः ३००

प्रकाशक :
चपलावत प्रकाशन मन्दिर,
मोतीकटरा, आगरा—३

मूल्य : ३.००

मुद्रक—
किशन कम्पोजिग हाउस,
महेश प्रेस, आगरा—२

प्राक्कथन

महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश-महाकाव्य' संस्कृत साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। इस महाकाव्य का द्वितीय सर्ग विश्वविद्यालयों में बी० ए० के पाठ्य-क्रम में निर्धारित है, किन्तु इस पुस्तक पर छात्रों के लिए कोई उपयुक्त हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं है। दो-चार टीकाएँ जो उपलब्ध भी हैं उनमें भी कुछ कमियाँ रह गई हैं। जैसे किसी पुस्तक में यदि हिन्दी व्याख्या है तो उसमें भूमिका का अभाव है जिससे विद्यार्थियों को आलोचनात्मक अध्ययन के लिए अलग से पुस्तक देखनी पड़ती है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में एक विस्तृत भूमिका दी गई है। टीका में विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रत्येक श्लोक का अन्वय, सस्कृत व्याख्या, संस्कृत भावार्थ, हिन्दी-अर्थ, समास, व्याकरण आदि अलग-अलग दिये गये हैं और अन्त में विस्तृत टिप्पणी दी गई है। टिप्पणी में उस श्लोक की विशेषता अन्तर्कथा आदि का उल्लेख है, अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सूक्तियों की व्याख्या, परीक्षा में प्रष्टव्य प्रश्नों के उत्तर, श्लोकों की सूची आदि का विवेचन है।

यथासम्भव पुस्तक को विद्यार्थियों के लिए अशुद्ध एवं छात्रोपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है, तथापि यदि पुस्तक में कहीं त्रुटियाँ, न्यूनताएँ हों तो उसके लिए क्षमा-याचना करता हुआ पाठक महानुभावों से प्रार्थना है कि वे उन्हें सूचित कर अनुगृहीत करेंगे।

—लेखक

विषय सूची

पृष्ठ

१. भूमिका — १—३०
- (क) संस्कृत काव्य
- (ख) महाकाव्य का लक्षण तथा रघुवंश का महाकाव्यत्व
- (ग) कालिदास का जीवनवृत्त
- (घ) कालिदास का समय
- (ङ) कालिदास का व्यक्तित्व
- (च) रघुवंश महाकाव्य का वैशिष्ट्य
- (छ) द्वितीया सर्ग का कथानक
- (ज) कालिदास का काव्य-सौष्ठव

२. रघुवंश के द्वितीयसर्ग की व्याख्या — ३१—१३२

३. परिशिष्ट—१ (कालिदास प्रशस्ति) — १३३—१३४

४. परिशिष्ट—२ (सूक्तियों की व्याख्या) — १३४—१४३

५. परिशिष्ट—३ — १४४—१७४

विश्वविद्यालयों में प्रष्टव्य प्रश्नों के उत्तर—
- (क) संस्कृत महाकाव्यों के उत्पत्ति एवं विकास पर एक टिप्पणी लिखिये। — १४४
- (ख) संस्कृत महाकाव्यों के उद्गम व विकास पर एक लेख लिखिये। — १४६
- (ग) महाकाव्य किसे कहते हैं ? रघुवंश एक महाकाव्य है इस कथन की समीक्षा कीजिये। — १४८
- (घ) महाकवि कालिदास के जन्मस्थान और जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिये। — १५१

(ङ) महाकवि कालिदास के स्थितिकाल की विवेचना कीजिये। १५१
(च) 'कविकुलगुरुः कालिदासः' इस कथन की समीक्षा कीजिये। १५१
(छ) कालिदास के प्रकृतिवर्णन पर रोचनात्मक उद्धरण देते हुऐ एक लेख लिखिये। १५५
(ज) कालिदास के शैली की विशेषतायें बताइये। १५८
(झ) 'उपमा कालिदासस्य' इस कथन की समीक्षा कीजिये। १६१
(ञ) संस्कृत साहित्य के कवियों में महाकवि कालिदास का स्थान निर्धारित कीजिये। १६३
(ट) रघुवंश के द्वितीय सर्ग का कथानक संक्षेप में लिखिये और उसका महत्त्व बताइये। १६६
(ठ) रघुवंश के द्वितीय सर्ग के आधार पर दिलीप का चरित्र-चित्रण कीजिए— १६९
(ड) रघुवंश के द्वितीय सर्ग में वर्णित दिलीप की गो-सेवा का वर्णन कीजिये— १७०
(ढ) रघुवंश के द्वितीय सर्ग में वर्णित सिंह-दिलीप संवाद को अपनी भाषा में लिखिए और उसका महत्त्व बताइये— १७२
६. परिशिष्ट—४ (श्लोक सूची) १७५—१७८

भूमिका

संस्कृत काव्य

काव्य का उदय सृष्टि की उस पवित्र वेला में हुआ, जबकि ब्रह्मा ने मानव-सृष्टि कर उन्हें ज्ञान का उपदेश दिया था और वे कवि कहलाने के अधिकारी बने ।[1] वैदिकयुग में वेद की ऋचाओं में काव्य का मूल स्रोत देखा जा सकता हैं । किन्तु उस समय का काव्य आख्यान एवं स्तुति-प्रधान था । लौकिक साहित्य में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने क्रौञ्च-पक्षी के करुण-क्रन्दन से उद्भूत छन्दोमयी वाणी के आधार पर रामायण की रचना की, जो लौकिक साहित्य का आदिकाव्य कहलाया । इसी शैली में महाभारत की रचना हुई, जिसे आर्षकाव्य कहा जाता है । तत्पश्चात् काव्य-निर्माण का एक नवीन युग प्रारम्भ हुआ और यहीं से विविध काव्यों का निर्माण होने लगा । कालिदास के ग्रन्थों के अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि उनके पूर्व प्रबन्ध-शैली के अनेक काव्य लिखे जाते रहे हैं और उन्हीं से काव्य के अनेक रूपों का विकास हुआ ।

सामान्य रूप से लोकोत्तर श्लोक रचना करते वाले विद्वान् को 'कवि' और उनकी कृति को 'काव्य' कहा जाता है । किन्तु समय-परिवर्तन के साथ काव्य-रूप में भी परिवर्तन हुआ और उसकी एक सीमा निर्धारित हो गई, जो समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्धित होती रही है । विश्वनाथ के अनुसार काव्य के दो भेद होते हैं—"दृश्य और श्रव्य"। उनमें दृश्य काव्य को रूपक कहा जाता है । रूपक के नाटक, प्रकरण आदि दस भेद होते हैं । दृश्य काव्य दर्शनीय और श्रवणीय दोनों होता है । जबकि श्रव्य काव्य केवल श्रवणीय या पठनीय ही होता है । श्रव्य काव्य के तीन भेद होते हैं—गद्य, पद्य और मिश्र । उनमें गद्य काव्य के प्रमुख दो भेद होते है—कथा और आख्यायिका । पद्य काव्य दस प्रकार का होता है, किन्तु उनमें तीन प्रमुख हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक । मिश्र काव्य को "चम्पूकाव्य" कहते हैं । इसमें गद्य और पद्य दोनों को मिश्रण रहता है ।

---

१. कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः । —शुक्लयजुर्वेद ४०/८

साहित्य-शास्त्र में महाकाव्य का लक्षण प्रायः सभी आचार्यों ने प्रस्तुत किया है, किन्तु यहाँ हम केवल विश्वनाथ के मतानुसार काव्य का लक्षण प्रस्तुत कर रहे हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तः गुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्त्तु वनसागरः ।
सम्भोगः विप्रलम्भो च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयमसन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनायाः यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु ॥

—साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद

१—महाकाव्य सर्गों में विभाजित होता है।

२—महाकाव्य में देवता या उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय नायक होता है। नायक 'धीरोदात्त' गुणयुक्त होना चाहिये। कहीं-कहीं पर एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक होते हैं।

३—महाकाव्य में शृंगार, वीर, और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान और अन्य रस अप्रधान होने चाहिए।

४—महाकाव्य में नाटक की समस्त सन्धियां विद्यमान होनी चाहिये।

५—महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध होना चाहिये।

६—महाकाव्य में धर्म, अर्थ काम और मोक्ष उद्देश्यों में से एक फल की प्राप्ति होना चाहिये।

७—महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण होना चाहिये और वह मंगलाचरण आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए। कहीं-कही दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा भी होनी चाहिये।

८—महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए और उसके सर्ग न बहुत बड़े हों न अधिक छोटे। प्रत्येक सर्ग में कुल एक ही प्रकार के छन्द होने चाहिये, किन्तु सर्ग के अन्त में कुछ श्लोक भिन्न छन्दों में भी होते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होती है।

९—महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, दिन, अंधकार, प्रातःकाल मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, उपवन, नगर, समुद्र, स्वर्ग, यज्ञ, यात्रा, युद्ध, विवाहोत्सव आदि का सांगोपाङ्ग वर्णन होना चाहिये।

१०—महाकाव्य का नाम प्रायः कवि के नाम पर या नायक के नाम पर अथवा वर्ण्यवस्तु के नाम पर होना चाहिये। कहीं-कहीं इसके अतिरिक्त नाम भी होता है। महाकाव्य के सर्ग का नाम कथावस्तु के अनुसार होना चाहिए।

रघुवंश का महाकाव्यत्व

महाकवि कालिदास द्वारा रचित रघुवंश एक 'महाकाव्य' है। यहां साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के काव्यलक्षण के अनुसार रघुवंश के महाकाव्यत्व की समीक्षा कर रहे हैं—

१—साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य की रचना सर्गबद्ध होनी चाहिए। रघुवंश उन्नीस सर्गों में रचा गया सर्गबद्ध महाकाव्य है।

२—महाकाव्य का नायक देवता या उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए

और उसमें धीरोदात्त गुण विद्यमान होने चाहिये। कहीं-कहीं एक कुल में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक होते हैं।

रघुवंश महाकाव्य के नायक सूर्यवंश में उत्पन्न अनेक राजा नायक हैं और उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं।

३—महाकाव्य में शृंगार, वीर और शान्त में से एक रस प्रधान और अन्य रस अप्रधान होने चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य में यद्यपि वीर,करुण आदि रसों का भी सुन्दर वर्णन मिलता है, किन्तु रघुवंश का प्रधान रस शृंगार है और वीर, करुण आदि रस गौण (अप्रधान) हैं।

४—महाकाव्य में नाटक की समस्त सन्धियाँ विद्यमान होनी चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य में नाटक की सभी सन्धियाँ विद्यमान हैं।

५—महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध होनी चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य का इतिवृत्त (कथानक) ऐतिहासिक है। इस महाकाव्य का कथानक सूर्यवंशीय राजा दिलीप से प्रारम्भ होता है और उसमें उनके प्रतापी पुत्र रघु के विशेष गुणों का वर्णन किया गया है।

६—महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उद्देश्यों में से एक फल की प्राप्ति होनी चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्गरूप फलप्राप्ति है। इसमें चारों वर्गों का फल दर्शाया गया है।

७—महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए और कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा भी होनी चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ" श्लोक में महाकवि ने शिव-पार्वती की वन्दनारूप नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया गया है। कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों के गुणों का वर्णन भी किया गया है।

८—महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए और उसके सर्ग न तो बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार का छन्द होना चाहिए. किन्तु सर्ग के अन्त के कुछ श्लोक भिन्न छन्दों में भी होते है और सर्ग के अन्तिम श्लोक में अगले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य में कुल उन्नीस सर्ग है। न किसी सर्ग में अधिक श्लोक है और न बिलकुल कम ही। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित किया गया है।

९—महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, दिन, प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या मृगया, नदी, पर्वत, वन, उपवन, नगर, समुद्र, ऋतु, युद्ध, यात्रा, विवाहोत्सव आदि का वर्णन होना चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य में इसका पूर्णरूप से पालन किया गया है। जैसे प्रथम-सर्ग में आश्रम का, द्वितीय में वन का, पञ्चम में प्रभात का, छठे सर्ग में स्वयम्वर का, सप्तम में युद्ध का, अष्टम में विलाप, नवम में ऋतुवर्णन तथा मृगया, त्रयोदश सर्ग में समुद्र का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य वर्णन भी प्राप्त होते है। इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य विविध वर्णनों से परिपूर्ण है।

१०—महाकाव्य का नाम कवि या नायक के नाम पर अथवा वर्ण्यवस्तु के नाम पर होना चाहिए।

रघुवंश महाकाव्य का नाम वर्ण्यविषय (रघु के कुल के वर्णन रूप विषय) को लक्ष्य करके रखा गया है। इस महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य रघु के वंश का वर्णन करना है।

इस प्रकार महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार 'रघुवंश' एक सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है। महाकाव्य की कसौटी पर यह सफल महाकाव्य सिद्ध होता है।

रघुवंश महाकाव्य का रचयिता और उनका जीवनवृत्त

संस्कृत साहित्य के लघुत्रयी महाकाव्यों में रघुवंश का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि कालिदास हैं। वे संस्कृत के सर्वमान्य कवि नाटककार, काव्यकार एवं गीतिकाव्यकार हैं। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनका काव्य-क्षेत्र विस्तृत है। उनके काव्य संस्कृत-साहित्य के हीरक रत्न हैं।

जीवन परिचय

महाकवि कालिदास के जीवन-वृत के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। उन्होंने ने भी अपने जीवन पर अपने काव्यों में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। उनके जन्मस्थान व जीवन-वृत के सम्बन्ध में परम्परागत अनेक किम्वदन्तियां एवं दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि वे युवावस्था तक महामूर्ख थे। बाद में उन्होंने काली के प्रसाद से विद्या प्राप्ति की थी और तभी से वे कालिदास कहलाने लगे।

एक दूसरी परम्परा के अनुसार कालिदास बाल्यावस्था में महामूर्ख और निरक्षर भट्टाचार्य थे। वे जंगल में भेड़, बकरियों को चराया करते थे। उसी समय काशीनरेश की राजकुमारी महाविदुषी विद्योत्तमा ने प्रण लिया था कि जो मुझे शास्त्रार्थ में हरायेगा उसी के साथ विवाह करुँगी। उसकी सौन्दर्य एवं कीर्ति को सुनकर दूर-दूर से विद्वान् शास्त्रार्थ करने के लिए आये, किन्तु वे भसी राजकुमारी से हार गये।

इसके बाद विद्वानों ने सोचा कि 'इस राजकुमारी का विवाह किसी ऐसे महामूर्ख से कराना चाहिए कि जिससे यह जीवन भर पछताये' ऐसा विचार कर वे मूर्ख की खोज में चल पड़े। रास्ते में इन्होंने कालिदास को देखा कि वे जिस डाली पर बैठे थे उसी को काट रहे थे। पण्डितों ने सोचा कि इसके बढ़कर और मूर्ख कहाँ मिलेगा। उन्होंने कालिदास को बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी से कराना चाहते हैं किन्तु वहाँ चलकर तुम्हें चुप रहना पड़ेगा।

इसके बाद पण्डित लोग कालिदास को राजकुमारी के पास ले जाकर कहा कि ये हमारे गुरुजी आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं किन्तु आज-कल ये मौनव्रत धारण किये हुए हैं, अतः संकेतों द्वारा शास्त्रार्थ करेंगे। तब राजकुमारी ने 'ईश्वर एक है!' इस उद्देश्य से एक अंगुली उठाकर प्रश्न किया। कालिदास ने यह समझा कि यह मेरी एक आँख फोड़ देना चाहती है अतः उन्होंने दो उंगुली दिखाई कि मैं तुम्हारी दोनों आंखें फोड़ दूँगा। पण्डितों ने इस संकेत की व्याख्या इस प्रकार की कि राजकुमारी जी आपका प्रश्न था कि 'ईश्वर एक है।' हमारे गुरुजी का संकेत है कि ईश्वर एक नहीं, बल्कि दो है—जीवात्मा और परमात्मा।

उसके बाद राजकुमारी ने दूसरा प्रश्न किया कि "तत्त्व पांच हैं"। कालिदास ने समझा कि यह मुझे थप्पड़ मारना चाहती है अतः उन्होंने मुट्ठी दिखाकर संकेत किया कि यदि तुम मुझे थप्पड़ मारोगी तो मैं तुम्हें घूँसे दूँगा। पण्डितों ने इस संकेत की व्याख्या इस प्रकार की कि हमारे गुरुजी का संकेत है कि तत्त्व पाँच हैं, किन्तु वे पांचों तत्त्व मिलकर कार्य करते हैं। इस प्रकार राजकुमारी को पराजय स्वीकार करनी पड़ी और कालिदास के साथ उनका विवाह हो गया।

इसके बाद रात्रि के समय जब राजकुमारी और कालिदास चित्रसारी में थे, उसी समय बाहर ऊँट चिल्लाया। राजकुमारी ने कालिदास से कहा देखो क्या चिल्ला रहा है। कालिदास ने बाहर देखकर बताया कि 'उट्र है, उट्र है' इस पर राजकुमारी को ज्ञात हुआ कि यह तो महामूर्ख और अपढ़ है, और उन्हें धक्के देकर बाहर धकेल दिया। कालिदास लड़खड़ाते हुए बाहर आये, और नीचे देवी के मन्दिर के पास जाकर गिर पड़े, और उनकी जीभ कट गयी। देवी प्रसन्न होकर कालिदास से कहा कि वर माँगों। कालिदास मूर्ख तो थे ही, उन्होंने समझा कि देवी पूछ रही हैं कि किसने मारा। अतः उन्होंने कहा कि विद्या-विद्या अर्थात् विद्या (विद्योत्तमा) ने मारा है। देवी ने उनको विद्या का वरदान दिया।

उसके बाद कालिदास अपूर्व वैदुष्य एवं कवित्वशक्ति को प्राप्त कर राजकुमारी के पास पहुँचे, और द्वार खोलने के लिये कहा— "अनावृतकपाटं द्वारं देहि"। राजकुमारी ने समझा कि फिर पण्डितों ने रटा कर इन्हें भेजा होगा। अतः उनकी विद्वत्ता जानने कि इच्छा से कहा कि—"अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः" अर्थात् वाणी में कुछ विशेषता है। उसके बाद कालिदास ने राजकुमारी के वाक्य के तीनों पदों को लेकर तीन काव्यों की रचना की। 'अस्ति' पद को ग्रहण कर "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" इस प्रकार 'कुमारसम्भव' की रचना की। 'कश्चित्' पद को लेकर 'कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा······ इस प्रकार मेघदूत की रचना की और 'वाग्' पद को लेकर "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये" इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य की रचना की।

कालिदास के मृत्यु के सम्बन्ध में एक किम्वदन्ती प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि सिंहल देश के राजा और कालिदास की मित्रता थी। एक बार कालिदास अपने मित्र से मिलने के लिये, सिंहलदीप गये, और रात्रि में एक वेश्या के घर ठहरे। सिंहलदीप के राज्य में एक समस्यापूर्ति करने के लिए दी गयी थी कि—"**कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते।**" जब वेश्या ने कालिदास को सारा वृत्तान्त सुनाया तो कालिदास ने तुरन्त समस्या की पूर्ति कर दी—"**बाले! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्**"? वेश्या ने सोचा कि इस प्रकार समस्या की पूर्ति कर राजा से पारितोषिक प्राप्त करूँगी। अतः उसने विष देकर कालिदास को मार दिया और शव को घर में गाड़ दिया। दूसरे दिन राज्य दरबार में जब वेश्या ने समस्यापूर्ति सुनाई तो राजा को तुरन्त सन्देह हो गया कि इतनी सुन्दर समस्या की पूर्ति कालिदास के सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता। अतः उन्होंने वेश्या को डरा-धमका कर सारा भेद पूछ लिया। अन्त में सिंहलदीप के राजा कुमारदास को इतना दुःख हुआ कि उन्होंने कालिदास के साथ चिता में कूद कर प्राण त्याग दिया। इसके अतिरिक्त कालिदास के सम्बन्ध में और भी बहुत सी किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

कालिदास का स्थान

कालिदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है। परम्परा के अनुसार उन्हें उज्जयनीनरेश शकप्रवर्तक राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में माना जाता है। इस आधार पर कुछ विद्वान् कालिदास को उज्जयनी का निवासी मानते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास की जन्मभूमि बङ्गाल मानते हैं, और कुछ उन्हें काश्मीर का निवासी बताते हैं। कुछ आलोचकों का कहना है कि रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर में विदर्भ नगरी का सुन्दर वर्णन किया गया है। अतः वे उक्त आधार पर कालिदास को विदर्भदेशवासी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं किन्तु अनेक विचारकों के विविध अनुसंधान करने पर भी यह निश्चित न हो सका कि कालिदास का मूल निवासस्थान कहाँ था? किन्तु उनके काव्यालोड़न एवं वर्ण्यविषय के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि

कालिदास दक्षिण देशवासी सम्भवतः उज्जयनी के आस-पास के रहने वाले थे। क्योंकि कालिदास का उज्जयनी के प्रति विशेष प्रेम दिखाई देता है।

कालिदास की रचनायें

संस्कृत साहित्य के इतिहास में कालिदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अनेक महाकाव्य, खण्ड-काव्य और नाटकों की रचनायें की हैं। किन्तु उनके नाम से रचित निम्नलिखित सात रचनायें महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं—

१. महाकाव्य— रघुवंश और कुमारसम्भव।
२. खण्डकाव्य—मेघदूत और ऋतुसंहार।
३. नाटक—अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय।

कालिदास का समय

संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्राचीन संस्कृत कवियों का स्थितिकाल प्रायः तिरोहित रहा है। संस्कृत वाङ्मय के महाकवि कविकुलगुरु कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी यही स्थिति रही है। प्राचीन निःस्पृह कवियों की यह धारणा रही है कि वे अपनी रचनाओं में अपने जीवनवृत्त और समय के सम्बन्ध में कुछ भी परिचय नहीं देते थे। यही कारण है कि महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। यहाँ हम उनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में कुछ मत प्रस्तुत कर रहे हैं—

भारतीय परम्परा के अनुसार महाकवि कालिदास शकारि विक्रमादित्य के नौ रत्नों में प्रधान थे। 'विक्रमोर्वशीय' नाटक तथा 'अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः" इत्यादि वाक्यों में विक्रम शब्द का उल्लेख इसी बात को पुष्ट करता है कि कालिदास का सम्बन्ध विक्रमादित्य से अवश्य रहा है। किन्तु भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य नामक कई राजा हुए हैं। उनमें किस विक्रमादित्य के राज्य में कालिदास थे यह आज भी विवादास्पद बना हुआ है। कालिदास के स्थिति काल के सम्बन्ध में मुख्यतः चार मत प्रचलित हैं:—

(१) ईसा की षष्ठ शताब्दी
(२) गुप्तकाल

(३) ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी
(४) ईसापूर्व प्रथम शताब्दी

षष्ठ शताब्दी का मत

डा. हार्नेली का मत है कि मालवनरेश यशोधर्मन् ने हूणवंशीय प्रतापी राजा मिहिरकुल को पराजित कर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की थी। फर्गुसन के अनुसार उन्होंने अपने विजय के उपलक्ष्य में नवीन संवत् चलाया था जो विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और उन्होंने प्राचीनता का पुट देने के लिये ५४४ ई० की विजय घटना की स्मृति में ६०० वर्ष पूर्व से विक्रम सम्वत् को चलाया था। इस प्रकार विक्रम सम्वत् ईसा से ५८ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है। अतः इस आधार पर कालिदास का समय षष्ठ शतक मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेघदूत में बौद्धदार्शनिक दिङ्नाग का उल्लेख होने से कालिदास को दिङ्नाग का समसामयिक माना जाता है। दिङ्नाग का समय षष्ठ शतक माना जाता है। अतः कालिदास का समय भी षष्ठ शतक होना चाहिए। विक्रमादित्य के नौ रत्नों में कालिदास के साथ वाराहमिहिर और अमरसिंह का भी नाम आया है। अमरसिंह तथा वाराहमिहिर का समय षष्ठ शतक माना जाता है। अतः कालिदास का समय भी षष्ठ शतक होना चाहिए। म० म० हरप्रसाद शास्त्री भी इस मत को स्वीकार करते हैं।

समीक्षा

कालिदास के समय निर्धारण में षष्ठ शतक के समर्थन में दी गई युक्तियाँ युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती हैं। प्रश्न यह हैं कि यशोधर्मन् ने विक्रम संवत् को छः सौ वर्ष पूर्व से क्यों चलाया ? दूसरे इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि विक्रम सम्वत् का प्रचलन भी इससे पूर्व मालव संवत् के नाम से प्रसिद्ध था। तीसरे षष्ठ शतक में विक्रमादित्य उपाधि धारी राजा होने का कहीं ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता है। चौथे कालिदास को दिङ्नाग का समसामयिक मानना भी उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि कीथ ने दिङ्नाग का समय चतुर्थ शताब्दी सिद्ध किया है। वत्सभट्टि के ४७३ ईसवीय शिलालेख पर कालिदास के 'ऋतुसंहार' एवं 'मेघदूत' के कई श्लोकों की झलक दिखायी

पड़ती है। इन प्रमाणों के आधार पर कालिदास को षष्ठ शताब्दी का नहीं माना जा सकता है।

गुप्तकालीन मत

कुछ विद्वान् कालिदास को गुप्तकाल का स्वीकार करते हैं, किन्तु गुप्त-काल में भी दो विक्रमादित्य हुए हैं, अतः किस विक्रमादित्य के काल में कालि-दास थे इस विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। प्रो० के० बी० पाठक कालिदास को स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं। उनका मत है कि कालिदास रघुवंश में रघु का दिग्विजय वर्णन करते हुए 'वंक्षु' नदी का उल्लेख किया है। पाठक की सम्मति में यह 'वक्षू' शब्द 'OXUS' (आक्सस्) शब्द का संस्कृतीकरण प्रतीत होता है। रघु ने इसी नदी के तट पर हूणों को पराजित किया था। यह घटना स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों को पराजित करने की ओर संकेत करता है स्कन्दगुप्त के समय में ही हूणों ने आक्रमण किया था। अतः इस आधार पर कालिदास को स्कन्दगुप्त का समकालिक माना जा सकता है।

डा० ए० बी० कीथ, मैकडानल, डा० भण्डारकर आदि विद्वान् कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते हैं। वे अपने मत की पुष्टि में निम्न तथ्य प्रस्तुत करते हैं :—

१. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों को पराजित कर विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, यही विक्रमादित्य द्वितीय (३७५-४१३) कालिदास के आश्रय-दाता शकारि विक्रमादित्य रहे होंगे ?

२. कीथ का कहना है कि कालिदास ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव को लक्ष्य बनाकर 'कुमारसम्भव' की रचना की होगी ?

३. चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय ही सुख और शान्ति का समय माना जाता है। कालिदास ने अपने काव्यों मे उसी प्रकार सुख-शांति-सम्पन्न समाज का चित्रण किया है।

४. कालिदास के 'रघुवंश' में वर्णित रघु के दिग्विजय और चंद्रगुप्त के दिग्विजय में बहुत कुछ साम्य है। इसके अतिरिक्त कालिदास का रघुवंश में बार-बार चंद्र और इंदु शब्द का प्रयोग चंद्रगुप्त की ओर संकेत करता है।

५. कालिदास ने अपने काव्य में कई स्थलों पर 'गुप् धातु' का प्रयोग किया है, जो 'गुप्त वंश' की ओर संकेत करता है।

६. कालिदास ने कुमारसम्भव में "तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्" में 'जामित्र' शब्द का प्रयोग किया है। यकोबी आदि विद्वान् इसे ग्रीक भाषा का शब्द मानते हैं। ग्रीक शब्दों का भारत में आदान-प्रदान चतुर्थ शताब्दी के पहले नहीं हुआ था। अतः कालिदास का समय ४०० ईसवी के बाद का होना चाहिये।

७. वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय के साथ चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती के विवाह के शुभ-अवसर पर मालविकाग्निमित्र नाटक की रचना की गयी होगी ?

८. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कालिदास को कुन्तलेश्वर के राज्य में दूत बनाकर भेजा था। जिसके आधार पर उन्होंने 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

उपर्युक्त प्रमाणों के अधार पर यह सिद्ध होता है कि महाकवि कालिदास शकारि चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में विद्यमान रहे हैं। किन्तु इस मत के सम्बन्ध में भी कुछ विप्रतिपत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जिनका विवरण निम्न-प्रकार प्रस्तुत किया जाता है:—

समीक्षा

प्रो० पाठक ने कालिदास को हूणों के पराजय के आधार पर चन्द्रगुप्त का समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु यह मत युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि उनके पहले भी महाभारत काल में भी हूणों का उल्लेख मिलता है। दूसरे चन्द्रगुप्त द्वितीय का 'विक्रमादित्य' यह उपाधि धारण करना सूचित करता है कि इससे पूर्व भी विक्रमादित्य उपाधिधारी राजा हो चुके थे। गुप्तवंशीय राजाओं में किसी अन्य विक्रमादित्य का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालिक मानने का कोई ठोस प्रयाण उपलब्ध नहीं है।

'कुमार' शब्द के प्रयोग के आधार पर 'कुमारसम्भव' को कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर लिखा गया बताना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि

कालिदास ने कुमार शब्द का प्रयोग किसी खास अर्थ में न कर पुत्र, आत्मज आदि सामान्य अर्थों में किया है।

यह कहा जाता है कि कालिदास के 'गुप् धातु' का प्रचुर प्रयोग 'गुप्तवंश' की ओर संकेत करता है ठीक नहीं; क्योंकि कालिदास ने 'गुप् धातु' का प्रयोग 'गुप्तवंश' के द्योतक के रूप में नहीं किया है, अपितु 'गुप् धातु' का प्रयोग सामान्य रक्षा अर्थ में किया गया है।

कालिदास द्वारा 'चन्द्र' और 'इन्दु' के बार-बार प्रयोग के आधार पर भी उन्हें चन्द्रगुप्त के शासन-काल का मानना ठीक प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि कालिदास ने 'चन्द्र' और 'इन्दु' आदि शब्दों का प्रयोग सामान्य अर्थों में किया है।

यह कहा जाना भी ठीक प्रतीत नहीं होता कि कालिदास का सुख-सम्पन्न भारत की झाँकी प्रस्तुत करना गुप्तकाल का द्योतक है। क्योंकि गुप्तकाल के पूर्व शातवाहन शुंगकाल में भी इसी प्रकार सुख-सम्पन्न भारत विद्यमान था।

रघु की दिग्विजय की घटना भी ऐतिहासिक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि रघु के दिग्विजय का वर्णन स्कन्दगुप्त के दिग्विजय के वर्णन से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता।

यकोबी के अनुसार ग्रीक शब्दों के प्रयोग के आधार पर कालिदास को चतुर्थ शताब्दी के बाद का स्वीकार करना उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यह भी सम्भव हो सकता है कि सिकन्दर या सैल्यूकस के आक्रमण के समय ही कुछ ग्रीक शब्द भारत में आ गये हों।

वाकाटक नरेश के साथ चन्द्रगुप्त की पुत्री के विवाह के अवसर पर 'मालविकाग्निमित्र' नाटक की रचना की कल्पना भी निराधार है। चन्द्रगुप्त के द्वारा विक्रम सम्वत् चलाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरे गुप्तवंश द्वारा विक्रम सम्वत् चलाने की कल्पना ऐतिहासिक नहीं है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर कालिदास को गुप्तकालीन नहीं माना जा सकता।

द्वितीयशताब्दी का मत—

कुन्हन राजा का कहना है कि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के भरतवाक्य में अग्निमित्र का उल्लेख किया है—

आशास्यमीतिविगमप्रभृतिप्रजानां ।
सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ।

कुन्हन राजा ने विदिशा को अग्निमित्र की राजधानी होने का उल्लेख किया है और कालिदास ने मेघदूत में विदिशा का सुन्दर वर्णन किया है । अतः कालिदास का समय ईसापूर्व द्वितीय शतक होना चाहिए ।

समीक्षा—

कुन्हन राजा का उक्त मत विश्वसनीय नहीं माना जा सकता । क्योंकि अग्निमित्र का कालिदास के समकालीन होना ऐतिहासिक नहीं सिद्ध होता । दूसरे अग्निमित्र की राजधानी मगध रही है, विदिशा नहीं । तीसरे किसी अग्निमित्र को विक्रमदित्य की उपाधि से विभूषित होने का कोई प्रमाण भी नहीं मिलता । अतः कालिदास को अग्निमित्र का समकालिक मानकर ईसापूर्व द्वितीय-शतक का मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता ।

प्रथमशताब्दी का मत

भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से ज्ञात होता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

विक्रमादित्य ईसापूर्व प्रथम शतक में उज्जयिनी में राज्य करते थे । उन्होंने शकों को पराजित कर 'शकारि' की उपाधि ग्रहण की थी और इसी विजय के उपलक्ष्य में मालव सम्वत् नामक एक नवीन सम्वत् चलाया था । यही मालव सम्वत् बाद में विक्रम सम्वत् के नाम से पुकारा जाने लगा । गुणाढ्य की वृहत्कथा पर आधारित 'कथासरित्सागर' में महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य का वर्णन आया है । ये ब्राह्मण धर्म से पुनरुद्धारक एवं साहित्य प्रेमी राजा थे । इन्हीं के दरबार में कालिदास विद्यमान थे । "विक्रमोर्वशीयम्" में प्रयुक्त विक्रम शब्द इन्हीं विक्रमादित्य की ओर संकेत करता है । ये विक्रमादित्य ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे । अतः कालिदास का समय ई. पू. प्रथम शतक मानना चाहिए ।

'गाथासप्तशती' में विजय के उपलक्ष्य में लाखों रुपया पुरस्कार देने वाले विक्रमादित्य नामक एक प्रतापी राजा का उल्लेख मिलता है। गाथासप्तशती की रचना ईसा की प्रथम शताब्दी में हुई थी। अतः विक्रमादित्य का समय इससे पूर्व अर्थात् प्रथमशतक होना चाहिए।

मेरुतुङ्गाचार्य की पट्टावली के अनुसार गर्दभिल् के पुत्र विक्रमादित्य उज्जयिनी में राज्य करते थे जिन्होंने शकों को पराजित कर उनसे उज्जयिनी का राज्य वापस लिया था। यह घटना महावीर के निर्वाण से ४७० वर्ष बाद अर्थात् ५७ वर्ष ईसापूर्व में हुई थी। अतः विक्रमादित्य का प्रथम शताब्दी में होना सिद्ध होता है।

अश्वघोष पर महाकवि कालिदास का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। अश्वघोष प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध कनिष्क के समकालीन थे। अतः कालिदास का समय इससे पूर्व ई. पू. प्रथम शताब्दी मानना समीचीन है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि कालिदास का समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी विक्रमादित्य का शासनकाल मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि वीर विक्रमादित्य अत्यन्त उदार, दानी एवं विद्वत्प्रेमी थे। ऐसे उदार राजा के दरबार में कालिदास जैसे कवियों का होना उचित ही है। अतः कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शतक मानना अधिक समीचीन है।

महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व

संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो महाकवि कालिदास को न जानता हो। विश्व में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ के लोग महाकवि से परिचित न हों। उनका वैदुष्य, उनकी काव्य-प्रतिभा, उनकी कवित्व-शक्ति किसी से तिरोहित नहीं है। वे संस्कृत साहित्य के महाकवि है, कविता-कामिनी के विलास है, विद्यादेवी सरस्वती के हास है, कविकला-कौशल के लास्य हैं। निश्चय ही उनके समान संसार में दूसरा कोई महाकवि नहीं हैं। तभी तो कहा गया है—

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

महाकवि कालिदास अनेक शास्त्रों में प्रवीण संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका वैदुष्य समस्त विश्व में व्याप्त है। इनके काव्यों में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का रूप दिखाई देता है। इन्होंने गुण, रीति, छन्द, अलङ्कार आदि का जैसा समुचित एवं सुन्दर वर्णन किया है। वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं दिखाई देता। भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल स्वरूप का वर्णन जितना उन्होंने किया है उतना किसी ने भी नही किया है। उन्होंने चित्ताकर्षक मनोहारिणी भाषा का प्रयोग किया है।

महाकवि वेद, व्याकरण, साहित्य, नाट्यशास्त्र, राजनीति. अर्थशास्त्र, के महान् ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्रकला आदि से भी कुशल ज्ञाता थे। उनका ज्ञान नीरस नहीं था। वे यशःप्रार्थी थे। यशःशून्य जीवन को वे निरर्थक समझते थे। वे भौतिक शरीर की अपेक्षा यशःशरीर में विशेष आस्था रखते थे। जैसाकि रघुवंश में कहा है—

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥

कालिदास परोपकार में ही जीवन की सार्थकता समझते थे। जो जीवन परोपकार में रत रहता है वही जीवन वास्तविक जीवन है। गुरु के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। कवि की दृष्टि में उसी व्यक्ति का जीवन प्रशंसनीय है, जो समाज के लिए अपने जीवन को अर्पित करदे। महाकवि ने जीवन का मूलभूत तत्त्व 'प्रेम' बताया है। जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता महाकवि कालिदास में दृष्टिगोचर होती है।

महाकवि कालिदास राष्ट्र कवि हैं। राष्ट्र की उन्नति तथा राष्ट्र के कल्याण की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनके विचार से सच्चा शासक (राजा) वहीं है जो प्रजा का अनुरञ्जन कर सके। उन्होंने राष्ट्र के मंगल की भावना किस प्रकार प्रकट की है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः,
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।

महाकवि तपस्या को समस्त श्रेयस् का साधन समझते थे। वे भारतीय राष्ट्र को यही सन्देश देते हैं कि 'भारतीय राष्ट्रियिता का प्रमुख अङ्ग तप है।'

जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
अ थ प्र	जा ना म	धि पः प्र	भा ते	=	(उपेन्द्रवज्रा)

जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
जा या प्र	ति ग्रा हि	त ग न्ध	माल्याम्	=	(इन्द्रवज्रा)

जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ऽ	ऽ ऽ		
व ना य,	पी त प्र	ति ब द्ध	व त्साम् .	=	(उपेन्द्रवज्रा)

जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
य शो ध	नो धे नु	मृ पे मु	मो च	=	(उपेन्द्रवज्रा)

समास--यशोधनः=यश एव धनं यस्य सः (बहुव्रीहिसमास)। जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्=जायया प्रतिग्राहिते गन्धमाल्ये यया सा ताम् (बहुव्रीहि०)। पीतप्रतिबद्धवत्साम्=पूर्वं पीतः पश्चात् प्रतिबद्धो वत्सो यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि०)।

व्याकरण—प्रजानाम्=प्र+जन्+ड+टाप्=प्रजा, षष्ठीबहुवचन में प्रजानाम्। अधिपः=अधि+पा+क। प्रतिग्राहित=प्रति+ग्रह्+णिच्+क्त। पीतः—पा+क्त, प्रतिबद्धः=प्रति+बन्ध्+क्त। मुमोच= मुच् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

'वनाय' में "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है। जहाँ तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का भाव या अर्थ छिपा रहता है उसके कर्म में चतुर्थी हो जाती है। वनं गन्तुं मुमोच=वनाय मुमोच ॥१॥

प्रसङ्ग—राजा दिलीप नन्दिनी को जब जंगल में चराने के लिए ले जा रहे थे तो उनके साथ सुदक्षिणा भी उनके पीछे-पीछे चली—

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥२॥

अन्वय—अपांसुलानाम् धुरि कीर्त्तनीया मनुष्येश्वरधर्मपत्नी खुरन्यासपवित्रपांसुम् तस्याः मार्गम् स्मृतिः श्रुतेः अर्थम् इव अन्वगच्छत् ॥२॥

संस्कृत टीका—अपांसुलानाम्=पतिव्रतानाम्, धुरि=अग्रे, कीर्त्तनीया=प्रशंसनीया, मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=महाराजदिलीपस्य धर्मपत्नी सुदक्षिणा, खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुरनिक्षेपपवित्रधूलिम्, तस्याः=नन्दिन्याः, मार्गम्=पन्थानम्, स्मृतिः=स्मृतिशास्त्रम्, श्रुतेः=वेदस्य, अर्थमिव, अन्वगच्छत्=अनुसृतवती ॥२॥

संस्कृत भावार्थः—समस्तपतिव्रतास्त्रीमण्डले अग्रे गणनीया राजमहिषी सुदक्षिणा तस्याः नन्दिन्याः खुरनिक्षेपेण पवित्रधूलियुक्तं मार्गं एवमनुसृतवती यथा मन्वादिप्रणीतं शास्त्रम् वेदार्थनुसरति ॥२॥

शब्दार्थ=अपांसुलानाम्=पतिव्रता स्त्रियों में। अग्रे=आगे। कीर्तनीया=परिगणनीया। मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=दिलीप की पत्नी रानी सुदक्षिणा। खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुर रखने से पवित्र धूलियुक्त। स्मृति=धर्मशास्त्र। श्रुतेः=वेद के। अन्वगच्छत्=पीछे-पीछे चली ॥२॥

हिन्दी अर्थ—पतिव्रताओं में अग्रगण्य राजा दिलीप की धर्मपत्नी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के खुरों के निक्षेप से उठने वाली धूलियों से पवित्र मार्ग का ऐसे अनुसरण किया, जैसे स्मृतियां वेदों का अनुसरण करती हैं ॥२॥

समास—अपांसुलानाम्=न पाँसुला अपांसुलाः तासाम् (नञ् तत्पुरुष) खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुराणां न्यासेन पवित्राः पांसवः यस्य तत् (बहुब्रीहिसमास)। मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=मनुष्याणां ईश्वरस्य धर्मपत्नी (षष्ठीतत्पुरुष) ॥२॥

व्याकरण—पांसुलानां=पासु+लच्+टाप्। श्रुति=श्रु+क्तिन्। स्मृति=स्मृ+क्तिन्। अन्वगच्छत्=अनु+गम्+लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन ॥२॥

विशेष:—प्रस्तुत श्लोक में 'उपमा' अलंकार है यहाँ नन्दिनी गाय उपमेय और श्रुति उपमान, मार्ग उपमेय और अर्थ उपमान, रानी सुदक्षिणा

उपमेय और स्मृति उपमान है। 'अनुगमन करना' साधारण धर्म और 'इव' उपमा वाचक शब्द है। इस प्रकार उपमा के चारों अंग होने से पूर्णोपमा है। इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार भी है। सुदक्षिणा पाँसुयुक्त मार्ग का अनुसरण करती हुई भी अपांसु है। यहाँ मार्ग पांसुयुक्त है जिसका वह अनुसरण कर रही है परन्तु वह अपांसु अर्थात् दोष रहित है ॥२॥

प्रसंग—दयार्द्र राजा नन्दिनी के पीछे-पीछे आती हुई सुदक्षिणा को लौटाकर स्वयम् नन्दिनी की सेवा में तत्पर हो गये—

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥३॥

अन्वयः—यशोभिः सुरभिः दयालुः राजा दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम् ताम् सौरभेयीं गोरूपधरां उर्वीम् इव जुगोप ॥३॥

संस्कृत टीका—यशोभिः=कीर्तिभिः, सुरभिः=मनोज्ञः, दयालुः=दयावान्, राजा=दिलीपः, दयितां=पत्नीं सुदक्षिणाम् निवर्त्य=आश्रमं प्रति परावर्त्य, पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम्=स्तनीभूतचतुःसंख्याकसागराम्, ताम्=पूर्वोक्ताम्, सौरभेयीम्=कामधेनोः सुतां नन्दिनीम्, गोरूपधराम्=धेनुरूप दधानाम्, उर्वीम्=वसुन्धराम्, इव=यथा, जुगोप=ररक्ष ॥३॥

संस्कृत भावार्थः—सः यशस्वी परमकारुणिको राजा दिलीपः नन्दिनीमनुसरन्तीं स्वपत्नीं सुदक्षिणां गुरोराश्रम प्रति परावर्त्य स्तनरूपचतुःसमुद्रयुक्तां नन्दिनीं गोरूपधारिणीमुर्वीमिव रक्षितवान् ॥३॥

शब्दार्थ—यशोभिः=कीर्त्ति से। सुरभिः=मनोहर। दयिताम्=प्रिया सुदक्षिणा को। निर्वत्य=लौटाकर। सौरभेयीम्=कामधेनुपुत्री नन्दिनी को। पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम्=पयोधरीभुत स्तन (थन) रूप चार समुद्रों वाली। गोरूपधराम्=गाय का रूप धारण करने वाली। उर्वीम्=पृथ्वी। जुगोप=रक्षा करने लगे ॥३॥

हिन्दी अर्थ—यश से सुशोभित, दयालु स्वभाववाले राजा दिलीप ने अपनी पत्नी सुदक्षिणा को गुरु के आश्रम को लौटाकर चार स्तनों के रूप में चारों समुद्रों को धारण करने वाली नन्दिनी की गाय का रूप धारण करने वाली पृथ्वी के समान रक्षा करने लगे ॥३॥

समास—पयोधरीभूतचतु:समुद्राम्=न पयोधरा: अपयोधरा:, अपयोधरा: पयोधरा: सम्पद्यमाना: पयोधरीभूता:, पयोधरीभूता: चत्वार: समुद्रा: यस्या: सा ताम् (बहुव्रीहि) ॥३॥

व्याकरण—दयालु:=दय्+आलुच् । दयिताम्=दय्+क्त+टाप् । निवर्त्य=नि+वृत्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । गोरूपधराम्=गोरूप+धृ+अच्+टाप् । जुगोप=गुप्+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥३॥

विशेष–प्रस्तुत श्लोक में 'दयितां दयालु:' तथा 'सौरभेयी सुरभिर्यशोभि:' में क्रमश: द य वर्णों का और स र भ वर्णो का एक बार साम्य होने से वृत्यनुप्रास है। इसके अतिरिक्त नन्दिनी का पृथ्वी से सादृश्य प्रकट करने के कारण उपमा तो पूर्ण रूप से है ही। 'पयोधरीभूत' शब्द में श्लेष भी है । पृथ्वी के पक्ष में गोरूपधारिणी शब्द का अर्थ होगा कि समुद्र पयोधर न होकर भी पयोधर हो गये है, और नन्दिनी गाय के पक्ष में अर्थ होगा कि जिसके दूध से समुद्र भी अधरीभूत अर्थात् तिरस्कृत हो गया है। अन्त में व्यतिरेकालंकार की उत्कृष्टता भी कही जा सकती है क्योंकि यहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक गुण बताये गये हैं। उपमान चारसमुद्रों से उपमेय चारस्तनों की उत्कृष्टता दिखाई गई है ।

इस श्लोक में "दयालु और दयिता शब्दों के प्रयोग पूर्ण उपयुक्त एवं साभिप्रायात्मक रूप में हैं"। राजा दयालु होने के कारण दयिता की सुकुमारता को जानता है, और गोसेवा के लिए साथ में वनगमन करने वाली रानी सुदक्षिणा को वन में कष्ट होगा, यह विचार कर लौटा देता है। ऐसा कार्य एक दयालु पति ही दयापात्र पत्नी के प्रति कर सकता है ॥३॥

प्रसंग :—नन्दिनी का अनुगमन करने वाली सुदक्षिणा को वापिस लौटाकर राजा दिलीप ने गाय के पीछे आते हुए शेष सेवक वर्ग को भी लौटा दिया—

व्रताय तेनानुचरेण धेनो: न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्ग: ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनो: प्रसूति: ॥४॥

अन्वय :—व्रताय धेनो: अनुचरेण तेन शेष: अनुयायिवर्ग : अपि न्यषेधि । तस्य शरीररक्षा च अन्यत: न, हि मनो: प्रसूति: स्ववीर्यगुप्ता (भवति) ॥३॥

संस्कृत टीका :—व्रताय=पुत्रप्राप्त्यर्थं गोसेवारूपनियमपालनार्थं, धेनोः= नन्दिन्याः, अनुचरेण=सेवकेन, तेन=राज्ञा दिलीपेन, शेषः=अवशिष्टः, अनुयायिवर्गः=सेवकसमूहः। अपि=समुच्चये, न्यषेधि=निर्वर्तितः। राज्ञः= दिलीपस्य, शरीररक्षा=गात्ररक्षणं च, अन्यतः=अन्यस्मात्, न=नहि, हि=यतः, मनोः=मनुनामकस्य नृपस्य, प्रसूतिः=सन्ततिः, स्ववीर्यगुप्ता= आत्मपराक्रमरक्षिता भवति ॥४॥

संस्कृतभावार्थ—पुत्रप्राप्त्यर्थ गोसेवारूपनियमपालनार्थं सौरभेय्याः सेवकेन तेन राज्ञा दिलीपेन अवशिष्टोऽपि अनुयायिवर्गः धेनोर् अनुसरणान्निवारितः। राज्ञः दिलीपस्य शरीररक्षणाय अन्यस्य कस्यचिदपि पुरुषस्य आवश्यकता नास्ति, यतः मनोः सन्ततिः स्वपराक्रमेणैव स्वं रक्षितुं समर्था भवति ॥४॥

शब्दार्थ—व्रताय=गोसेवारूप व्रत पालन के लिए। अनुचरेण=सेवक। तेन=राजा दिलीप ने। शेषः=बचे हुए। अनुयायिवर्गः=सेवकों को। न्यषेधि=लौटा दिया। अन्यतः=दूसरे से। स्ववीर्यगुप्ता=अपने पराक्रम से रक्षित। मनोः प्रसूतिः=मनु की सन्तान ॥४॥

हिन्दी अर्थ—पुत्रप्राप्ति के लिए राजा दिलीप ने बचे हुए सेवकों को भी वापिस लौटा दिया। राजा को अपने शरीर की रक्षा के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मनु की सन्तान तो अपने ही पराक्रम से स्वयं की रक्षा करती है ॥४॥

समास—अनुयायिवर्गः=अनुयायिनां वर्गः (षष्ठीतत्पुरुष)। शरीररक्षा= शरीरस्य रक्षा (षष्ठीतत्पुरुष)। स्ववीर्यगुप्ता=स्वस्य वीर्येण गुप्ता (षष्ठी, तृतीया तत्पुरुष)।

व्याकरण—अनुचर=अनु+चर्+ट। न्यषेधि=नि+सिध्+लुङ् प्र. पु०ए०व० (कर्मवाच्य)। शेषः=शिष्+घञ्। अनुयायि=अनु+या+णिनि। अन्यतः=अन्य+तसिल्। गुप्ता=गुप्+क्त+टाप्। प्र+सू+क्तिन्। वीर्य=वीर+यत् ॥४॥

विशेष—राजाओं के शरीर की रक्षा के लिये पीछे सेवक वर्ग रहता था। परन्तु इस समय राजा पुत्र-प्राप्ति के निमित्त स्वयं नन्दिनी की सेवा में संलग्न था। सम्भव था गोसेवारूप व्रत में आने वाले कष्टों को कोई सेवक स्वामी पर

आया हुआ समझ कर स्वयं वहन कर लेता, अतः राजा ने सभी सेवकों को वापिस कर दिया, क्योंकि राजा सभी कष्टों को स्वयम् उठाना चाहता था। अपनी रक्षा के लिये राजा को किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी। सेवकों को साथ मे रखना उपचारमात्र के लिये ही था। अतः राजा ने समस्त औपचारिकताओं का परित्याग कर दिया। 'व्रताय' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि राजा किसी दबाव या अनिच्छा से गो-सेवा में तत्पर नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति स्वयं की सेवा चाहेगा वह दूसरों की सेवा क्या कर सकेगा ?

इस श्लोक में "राजा दिलीप को अपने शरीर की रक्षा के लिये अन्य किसी सेवक आदि की आवश्यकता नहीं थी" इस विशेष का समर्थन "मनु की संतान अपनी रक्षा अपने पराक्रम से करते हैं" इस सामान्य कथन के द्वारा किया गया है अतः यहां 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है। ॥४॥

प्रसंगः—सुदक्षिणा तथा सेवकों को लौटाने के पश्चात् राजा गो-सेवा में लग जाते हैं—

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥५॥

अन्वयः—सः सम्राट् तृणानाम् आस्वादवद्भिः कवलैः, कण्डूयनैः, दंश-निवारणैः, अव्याहतैः स्वैरगतैः च तस्याः समाराधनतत्परः अभूत् ॥५॥

संस्कृत टीका—सम्राट्=चक्रवर्ती, सः=राजा दिलीपः, तृणानाम्=शष्पानाम्, आस्वादवद्भिः=स्वादयुक्तैः, कवलैः=ग्रासैः, कण्डूयनैः=खर्जनैः, दंशनिवारणैः=वनमक्षिकादूरीकरणैः, अव्याहतैः=अप्रतिहतैः, स्वैर-गतैः=स्वच्छन्दविचरणैः, च तस्याः=नन्दिन्याः, समाराधनतत्परः=सेवा-निरतः, अभूत्=बभूव ॥४॥

संस्कृत भावार्थ—महामण्डलेश्वरः राजा दिलीपः कदाचित् तृणानाम् स्वादुयुक्तग्रासानां प्रदानेन, कदाचित् खर्जनेन, कदाचित् वनमक्षिकावारणेन, कदाचित् अव्याहतमन्दगमनेन च नन्दिन्याः सेवायां संलग्नोऽभूत् ॥५॥

शब्दार्थ—सम्राट्=राजा दिलीप। तृणानाम्=घासों के। आस्वाद-वद्भिः=स्वादयुक्त। कवलैः=ग्रासों से। कण्डूयनैः=खुजलाने से। दंश-

निवारणैः=मच्छर आदि के दूर करने के द्वारा। अव्याहतैः=अबाध, निर्विघ्न। स्वैरगतैः=स्वतन्त्र गमन के द्वारा। समाराधनतत्परः=सेवा में संलग्न ॥५॥

हिन्दी अर्थ—चक्रवर्ती राजा दिलीप घास के स्वादिष्ट ग्रासों को खिलाते हुए, खुजलाते हुए, वन में डांस आदि को नन्दिनी से दूर भगाते हुए, तथा उसके निर्विघ्न स्वच्छन्द गमन का अनुसरण करते हुए उसकी सेवा में संलग्न हो गया ॥५॥

समास—दंशनिवारणैः=दंशानां निवारणैः (षष्ठीतत्पु०)। स्वैरगतैः= स्वैराणि गतानि तैः (कर्मधारय.)। समाराधनतत्परः=समाराधने तत्परः (सप्तमी तत्पु०)।

व्याकरण—सम्राट्=सम्+राज्+क्विप्, कण्डूयनैः=कण्डू+यक्+ ल्यु (अन)। निवारणैः=नि+वृ+णिच्+ल्युट् (अन)। अव्याहतैः=अ+ वि+आ+हन्+क्त। गतैः=गम्+क्त। समाराधन=सम्+आ+राध् ल्युट् (अन)। अभूत्=भू+लुङ्, प्र.पु०ए.व० ॥५॥

विशेष—महामण्डलेश्वर होते हुये भी राजा दिलीप ने सन्तान-प्राप्ति के निमित्त जब गोसेवा का व्रत धारण किया तब वे अपने गुरु वसिष्ठ के द्वारा बताये हुए साधनों से गाय की सेवा में संलग्न हो गये। 'अव्याहतैः स्वैरगतैः' शब्दों द्वारा उसी सेवा-भाव की ओर इंगित किया गया है तथा राजा की नन्दिनी में विशेष श्रद्धा का प्रकाशन हो रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में नन्दिनी की सेवा के स्वाभाविक रूप का वर्णन किये जाने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है ॥५॥

प्रसंगः—महाकवि कालिदास वन में राजा दिलीप के द्वारा नन्दिनी की सेवा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥६॥

अन्वयः—भूपतिः ताम् स्थिताम् स्थितः, प्रयाताम् उच्चलितः, निषेदुषीम् आसनबन्धधीरः, जलम् आददानाम् जलाभिलाषी, छाया इव अन्वगच्छत् ॥६॥

संस्कृत टीका—भूपतिः=राजा दिलीपः । ताम्=नन्दिनीम् । स्थिताम्=अवस्थिताम्, स्थितः=अवस्थितः, प्रयाताम्=प्रचलिताम्, उच्चलितः=प्रस्थितः, निषेदुषीम्=उपविष्टाम् । आसनबन्धधीरः=निश्चलभावेनोपविष्टः, जलमाददानाम्=पयःपिबन्तीम्, जलाभिलाषी=जलपानेच्छुः सन् । छाया इव=प्रतिबिम्ब इव, अन्वगच्छत्=अनुसरणमकरोत् ॥६॥

संस्कृत भावार्थ—यद् यद् नन्दिन्या आचरितम्, तत्तदेव राजादिलीपेनानुसृतम् । यदा सा स्वेच्छया गमनं त्यक्त्वा स्थिता बभूव, राजापि तथैव स्थितवान् । यदा तया स्वेच्छया गमनं कृतं राज्ञापि तस्याः अनुसरणं कृतम्, यदा सा यत्र कुत्रापि स्वेच्छया उपविष्टा राजापि तथैव निश्चलभावेन स्थितोऽभवत् । यदा तया पयःपानं कृतं तदा राज्ञापि जलाभिलाषा कृता । एवं प्रकारेण राज्ञा सर्वतोभावेन नन्दिन्याः छाया इव अनुसरणं कृतम् ॥६॥

शब्दार्थ=स्थिताम्,=खड़े होने पर । स्थितः=खड़े रहते थे । प्रयाताम्=चलने पर । उच्चलितः=चलते थे । निषेदुषीम्=बैठने पर । आसनबन्धधीरः=आसन लगाकर बैठ जाते थे । जलमाददामाम्=जल ग्रहण करने पर । जलाभिलाषी=जल की इक्छा करते थे । छायेव=छाया के समान ॥६॥

हिन्दी अर्थ—राजा दिलीप नन्दिनी के खड़े हो जाने पर खड़े हो जाते थे । जब वह चलती थी तो राजा भी चलने लगते थे । जब वह बैठ जाती थी तो राजा भी बैठ जाते थे । जब वह जल पीती थी तो राजा भी जल पीते थे । इस प्रकार राजा ने छाया के समान नन्दिनी का अनुसरण किया ॥६॥

समास—आसनबन्धधीरः=आसनस्य बन्धे धीरः (तत्पुरुष.) । जलाभिलाषी =जलस्य अभिलाषी (षष्ठीतत्पुरुष) । भूपतिः=भुवः पतिः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

व्याकरण—स्थितः=स्था+क्तः । उच्चलितः=उत्+चल+क्त । प्रयाताम्=प्र+या+क्त+टाप् । निषेदुषीम्=नि+सद्+क्वसु+ङीप् । आसन=आस्+ल्यु (अन) । अन्वगच्छत्=अनु+गम् लङ् लकार प्र. पु. ए. व. ॥६॥

विशेष—नन्दिनी वन में जिस प्रकार का आचरण करना चाहती थी उसके लिये स्वतन्त्र थी । राजा केवल उसका अनुसरण इस प्रकार कर रहे थे,

मानो वे उसके प्रतिबिम्ब मात्र हों। सेवा कार्य में सेवक की इच्छा का व्याघात होना सेवक की अपटुता का द्योतक ही है। वशिष्ठ मुनि ने भी राजा को इसी प्रकार की सेवा करने का आदेश दिया था। कहा था कि—इसके चलने पर चलना, स्थिति होने पर स्थित होना, बैठने पर बैठ जाना, जल पान करने पर जल पीना (रघु० १-८९)। ठीक उसी प्रकार की सेवा राजा दिलीप ने की, यह प्रदर्शित किया गया है।

उक्त श्लोक में उपमालंकार हैं। यहाँ भूपति उपमेय, छाया उपमान, अनुगमन करना साधारण धर्म, और इव उपमावाचक है ॥६॥

प्रसंग—गाय की सेवा में संलग्न राजा दिलीप के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥७॥

अन्वय—न्यस्तचिह्नाम् अपि तेजोविशेषानुमिताम् राजलक्ष्मीम् दधानः सः अनाविष्कृतदानराजिः अन्तर्मदावस्थः द्विपेन्द्रः इव आसीत् ॥७॥

संस्कृत टीका—न्यस्तचिह्नामपि= परित्यक्तछत्रचमरादिराजलक्षणामपि, तेजोविशेषानुमिताम्=प्रभावातिशयेन परिज्ञाताम्। राजलक्ष्मीम्=राजश्रियम्, दधानः=धारयन्, सः=राजा दिलीपः, अनाविष्कृतदानराजिः=बहिरप्रकटिमदलेखः। अन्तर्मदावस्थः=आभ्यन्तरमदवारियुक्तः, द्विपेन्द्रः=गजराजः। इव=यथा, आसीत् ॥८॥

संस्कृतभावार्थ—गोसेवापरायणो राजा दिलीपः व्रतकारणात् सर्वाणि राजसूचकानि उपकरणादीनि छत्रचमारादीनि परित्यक्तवान्। तथापि स्वकीयवीर्यप्रभावातिशयेन स्वचक्रवर्तित्वं धारयन् अप्रकटितमदलेख आभ्यन्तरमदस्थितः गजेन्द्र इव आसीत् ॥७॥

शब्दार्थ—न्यस्तचिह्नाम्=छत्रचामरादि राजचिह्नों से रहित। तेजोविशेषानुमिताम्=प्रभावातिशय से अनुमित। राजलक्ष्मीम्=राजलक्ष्मी को। दधानः=धारण किये हुए। अनाविष्कृतदानराजिः=जिसकी मदलेखा अभी प्रकट नहीं हुई है। अन्तर्मदावस्थः=जिसकी मद की अवस्था भीतर स्थित है। द्विपेन्द्रः=गजेन्द्र ॥७॥

हिन्दी—छत्रचमरादि राजसूचक चिन्हों का परित्याग कर देने पर भी प्रभावातिशय से अनुमान की जाती हुई राजलक्ष्मी को धारण करता हुआ वह राजा दिलीप ऐसे हाथी के समान था, जिसकी मदरेखा अभी बाहर नहीं प्रस्फुटित हुई है परन्तु उसके भीतर ही भीतर मद है ।।७।।

समास—न्यस्तचिह्नाम्=न्यस्तानि चिह्नानि यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। राजलक्ष्मीम्=राज्ञलक्ष्मीं (षष्ठीतत्पुरुष)। तेजोविशेषानुमिताम्=तेजसां-विशेषः तेन अनुमिताम् (तत्पुरुष.)। अनाविष्कृतदानराजिः=अनाविष्कृताः दानस्य राजयः यस्य सः (बहुव्रीहि.)। अन्तर्मदावस्थः=अन्तर्गता मदस्य अवस्था यस्य सः (बहु०) ।।७।।

व्याकरण—न्यस्त=नि+अस्+क्त। अनुमित=अनु+मा+क्त। दधानः=धा+शानच्। आविष्कृत=आविस्+कृ+क्त। दान=दा+ल्युट् (अन) ।।७।।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में राजादिलीप के तेजस्वी होने का वर्णन है। इसके साथ ही यह प्रदर्शित किया गया है कि मुकुट, छत्र आदि से ही कोई राजा नहीं होता, अपितु राजा के अन्दर एक विशिष्ट तेज होता है जो सब अवस्था में अपने प्रभाव को प्रदर्शित करता है। राजा द्वारा गोसेवा व्रत को स्वीकार कर लेने पर राजोचित सम्मान का परित्याग किया जाना उसकी महत्ता का द्योतक है।

यहाँ उपमालंकार है। राजा दिलीप उपमेय, द्विपेन्द्र उपमान, अतिशय तेजस्वी होना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द है ।।७।।

प्रसंग—राजा दिलीप जो सेवा करते हुए धनुष बाण हाथ में लेकर हाथी के समान वन में विचरण कर रहे हैं—

> **लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्।**
> **रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ।।८।।**

अन्वय—लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः अधिज्यधन्वा स मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्वान् विनेष्यन् इव दावम् विचचार ।।८।।

संस्कृतटीका—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=वल्लीतन्तुबद्धैः, केशैः=कचैः। अधिज्यधन्वा=समारोपितमौर्वीचापः, सः=राजा दिलीपः, मुनिहोमधेनोः=वशिष्ठस्य होमसाधनभूतायाः नन्दिन्याः, रक्षापदेशात्=रक्षणस्य व्याजात्,

वन्यान्=आरण्यकान्, दुष्टसत्वान्=हिंसकजीवान्, विनेष्यन्निव=शिक्षयिष्यन्निव, दावम्=वनं, विचचार=अभ्रमत् ॥८॥

संस्कृतभावार्थ—गोसेवापरायणेन राज्ञा दिलीपेन वनजाताभिः लतातन्तुभिः स्वकेशानि उद्ग्रथितानि। वने विचरन् सः एवं प्रतीयते यत् नन्दिन्याः रक्षणव्याजेन वनस्य हिंसकान् जन्तून् नम्रतां शिक्षयति ॥८॥

शब्दार्थ—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=लताओं के सूत्रों से ग्रथित (गुम्फित) अधिज्यधन्वा=प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुष वाले। रक्षापदेशात्=रक्षा के बहाने से। वन्यान्=जंगली। दुष्टसत्वान्=हिंसक जीवों को। विनेष्यन्निव=शिक्षित करते हुए के समान। दावम्=वन में। विचचार=विचरण करने लगे ॥८॥

हिन्दी अर्थ—लताओं के तन्तुओं से गुथे हुए केशों से युक्त राजा दिलीप चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा वाले धनुष को हाथ में लिये हुए महर्षि वशिष्ठ के यज्ञ की सामग्री घृतादि वस्तुओं को प्रदान करने वाली नन्दिनी की रक्षा के व्याज से मानो जंगली हिंसक जीवों को शासन करने के लिए वन में विचरण कर रहे थे ॥८॥

समास—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=लतानां प्रतानैः उद्ग्रथिताः तैः (तत्पुरुष समास)। अधिज्यधन्वा=अधिगता ज्या यस्य सः (बहुव्रीहि) अधिज्यं धनुः यस्य सः (बहुव्रीहि)। रक्षापदेशात्=रक्षाया अपदेशात् (षष्ठी तत्पु०)। मुनिहोमधेनोः=मुनेः होमस्य धेनोः (तत्पुरुष.)। दुष्टसत्वान्=दुष्टान् सत्वान् (कर्मधारय.)।

व्याकरण—उद्ग्रथितः=उद्+ग्रन्थ्+क्त। केशैः="इत्थं भूतलक्षणे" से तृतीया। अपदेशात्=अप+दिश्+घञ्। विनेष्यन्=वि+नी+लृट्+शतृ। दुष्ट=दुष्+क्त ॥८॥

विशेष—वन में नन्दिनी के पीछे-पीछे जाते हुए राजा के कुशलताओं के तन्तुओं से उलझने के कारण बँधे से हो गये। बड़ी परेशानी को सहते हुए भी राजा दिलीप ने वन में विचरण बन्द नहीं किया। प्रस्तुत श्लोक में मुनि की गाय की रक्षा करना उपमेय के स्थान पर कवि ने वन्य प्राणियों को विनय सिखाना इस उपमान की सम्भावना की है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥८॥

प्रसंग—मण्डलेश्वर राजा दिलीप द्वारा गौसेवाव्रत के स्वीकार कर लिये जाने के कारण उसकी महिमा एवं तेजस्विता से प्रभावित पशुपक्षी अपने सुमधुर शब्दों से मानो राजा का जय-जयकार कर रहे हैं—

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥९॥

अन्वय—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य पाशभृता समस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः उन्मदानां वयसां विरावैः आलोकशब्दं इव उदीरयामासुः ॥९॥

संस्कृत टीका—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=निर्वर्तितनिकटवर्तिसेवकवृन्दस्य, पाशभृता समस्य=वरुणेन सदृशस्य, तस्य=राज्ञो दिलीपस्य, पार्श्वद्रुमाः=पार्श्ववर्तिनो वृक्षाः, उन्मादानाम्=उत्कटहर्षयुक्तानाम् वयसाम्=पक्षिणाम् विरावैः=ध्वनिभिः, आलोकशब्दम्=जयध्वनिम्, इव=यथा, उदीरयामासुः=उच्चारयामासुः ॥९॥

संस्कृत भावार्थ—राज्ञा दिलीपेन सर्वोऽपि पार्श्ववर्तिसेवकवृन्दस्तथा जयशब्दोच्चारणपटुः वन्दिवृन्दश्च आश्रमं प्रति निर्वर्तितः । तथापि तस्य वरुणदेव तुल्यप्रतापातिशयेन प्रभाविताः तस्य पार्श्वे स्थिताः वृक्षाः एव स्वशाखासु उपविष्टानां खगानां कलध्वनिभिः तस्य जयशब्दं चक्रुः, एवं प्रतीयते ॥९॥

शब्दार्थ—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=जिसने समीपवर्ती नौकरों को विदा कर दिया है । पाशभृता=वरुण के । समस्य=समान । पार्श्वद्रुमाः=समीप के पेड़ । उन्मादानाम्=मदमस्त । वयसाम्=पक्षियों के । विरावैः=शब्दों के द्वारा । आलोकशब्दम्=जयकार का शब्द । उदीरयामासुः=उच्चारण किया ।।९।।

हिन्दी अर्थ—साथ में रहने वाले सेवक वृन्द को छोड़ देने पर भी वरुण के समान प्रभावशाली उस राजा दिलीप का पास के वृक्ष उन्मत्त पक्षियों के शब्दों द्वारा मानो जय-जय शब्द का उच्चारण कर रहे थे । ॥ ९ ॥

समास—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=विसृष्टाः पार्श्ववर्तिनो अनुचरा येन सः तस्य (बहुव्रीहि. । पाशभृता=पाशं बिभर्तितेन (उपपदसमास) । पार्श्वद्रुमाः=पार्श्ववर्तिनः द्रुमाः (कर्मधारय) । उन्मदानाम्=उत्कृष्टः मदो येषाम्तेषाम् (बहुव्रीहि) । आलोक शब्दम्=आलोकस्य शब्दम् (षष्ठीतत्पुरुष) ॥९॥

व्याकरण—विसृष्ट=वि+सृज्+क्त । अनुचर=अनु+चर्+ट । पाशभृता=पाश+भृ+क्विप् । विरावैः=वि+रू+घञ् । आलोक=आ+लोक+घञ् । उदीरयामासुः=उद्+ईर+लिट् लकार प्र. पु० वहुवचन ॥९॥

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में राजा का सादृश्य बताये जाने के कारण उपमा है। राजा दिलीप उपमान, वरुण उपमेय, सम उपमा का वाचक है। यहां साधारण धर्म का लोप होते से धर्मलुप्ता उपमा है।

यहां उत्प्रेक्षा अलंकार भी है। क्योंकि वृक्षों पर होने वाले पक्षियों की कल ध्वनियों की कवि ने वृक्षों द्वारा किये गये जयकार से उत्प्रेक्षा की है। अर्थात् वृक्षों पर जो पक्षी बोल रहे हैं वह मानो वृक्षों द्वारा राजा का जय-जय कार कर रहे हैं। ॥ ९ ॥

प्रसंग—अब वनवासी राजा का वन में फैलने वाली लताओं द्वारा स्वागत का वर्णन किया जा रहा है—

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम् ।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥ १० ॥

अन्वय—आराद् अभिवर्तमानम् मरुत्सखाभम् अर्च्यम् तम् मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः पौरकन्या आचारलाजैः इव प्रसूनैः अवाकिरन् ॥ १० ॥

संस्कृतटीका—आराद्=समीपम्, अभिवर्तमानम्=विचरन्तम्, मरुत्सखाभम्=अग्निसमतेजसम्, अर्च्यम्=पूज्यनीयम्, तम्=राजानं दिलीपम्, मरुत्प्रयुक्ताः=वायुना इतस्ततश्चालिताः, बाललताः=स्वल्पवल्लर्यः, पौरकन्याः=नगरवासिन्य बालाः, आचारलाजैः=स्वागतार्थप्रयुक्तैः मंगललाजैः। इव= यथा। प्रसूनैः =कुसुमैः। अवाकिरन्=अवर्षन् ॥ १० ॥

संस्कृत भावार्थ—समीपे विचरन्तं राजानं दिलीपम् वायुप्रेरिताः बाललताः स्वप्रसूनैः तथा अभिनन्दयामासुः, यथा नागरिकाः कन्याः स्वागतसमये राजानम आचारलाजैः अभिवर्षन्ति ॥१०॥

शब्दार्थ—मरुत्प्रयुक्ताः=वायु से प्रेरित। बाललता =कोमल लतायें। आरात्=समीप। अभिवर्तमानम्=विद्यमान। मरुत्सखाभम्=वायु के मित्र अग्नि के समान। अर्च्यम्=पूज्य। प्रसूनैः=फूलों से। पौरकन्याः=नगर की कन्यायें। आचारलाजैः=मांगलिक खीलों से। अवाकिरन्=वर्षा की ॥१०॥

हिन्दी अर्थ—समीप में विचरण करने वाले, मरुत के मित्र अग्नि की सदृश कान्ति वाले, पूजनीय उस राजा दिलीप पर वायु से हिलाई जाती हुई छोटी-छोटी वेलें इस प्रकार राजा पर पुष्प वर्षा कर रही थीं जिस प्रकार नगर निवासिनी कन्यायें राजा के स्वागत के समय खीलें विखेरती हैं ।१०।

समास—मरुत्प्रयुक्ताः=मरुता प्रयुक्ताः (तत्पुरुष)। बाललताः=बालाश्च ताः लताः (कर्मधारय)। आचारलाजैः=आचारार्थं लाजैः (तत्पुरुष मध्यमपदलोपी समास)। पौरकन्याः=पौराश्च ताः कन्याः (कर्मधारय) ॥१०॥

व्याकरण—प्रयुक्त=प्र+युज्+क्त। अर्च्यम्=ऋच्+यत्। अभिवर्तमानम्=अभि+वृत्+शानच्। प्रसून=प्र+सू+क्त। आचार=आ+चर्+घञ्। पौर=पुर+अण्। ॥ १० ॥

विशेषः—प्रस्तुत श्लोक में "मरुत्सखाभम्" में वाचक लुप्तोपमा है। क्यों कि राजा उपमेय, अग्नि उपमान, और आभा साधारण धर्म है। वाचक शब्द न होने के कारण वाचकलुप्तोपमा है। साथ ही नीचे वाले पद में पूर्णोपमा है। यहाँ पौरकन्या उपमान, बाललता उपमेय, अवाकिरन् साधारण धर्म और इव उपमा का वाचक है।प्रकृति के विभिन्न विषयों द्वारा राजा दिलीप की महत्ता का प्रकाशन किया गया है ॥ १० ॥

प्रशंग—सेवानिरत तेजस्वी राजा दिलीप को वन की हरिणियां भी उनकी दयालुतासे प्रभावित होकर उन्हें देख रही हैं—

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥ ११ ॥

अन्वयः—धनुर्भृतः अपि अस्य विशंकैः अन्तःकरणैः दयार्द्रभावम् आख्यातम् वपु विलोकन्त्यः हरिण्यः अक्ष्णाम् प्रकामविस्तारफलं आपुः ॥ ११ ॥

संस्कृतटीका—धनुर्भृतः अपि=धनुर्धारिणः अपि, अस्य=राज्ञः दिलीपस्य, विशंकैः=निःशंकैः, अन्तःकरणैः=अन्तरिन्द्रियैः, दयार्द्रभावम्=करुणार्द्रभावम्। आख्यातं=प्रकटीकृतम्। वपुः=शरीरम्। विलोकयन्त्यः=पश्यन्त्यः। हरिण्यः=मृग्यः। अक्ष्णाम्=नेत्राणाम्। प्रकामविस्तारफलम्=प्रकामविशालतालाभम्। आपुः=अलभन् ॥११॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः धनुर्धारी आसीत् परन्तु हरिण्यः निःशंकैः हृदयैः दयालुतायुक्तं तस्य वपुः प्रकामं विलोकयन्त्यः स्वनेत्राणाम् विस्तारस्य फलं अलभन्। तथा मृग्यः धनुर्भृतं तं विलोक्य पलायनं न कुर्वन्ति, किन्तु तम् विशेषरूपेण विलोकयन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—धनुर्भृतः=धनुष धारण करने वाले। विशंकैः=शंका रहित (निःशंक)। अन्तःकरणैः= हृदय से। दयार्द्रभावम्=दया के द्वारा आर्द्र भाव को। आख्यातम्=कहा गया। वपुः=शरीर को। विलोकयन्त्यः= देखती हुई। अक्ष्णाम्=नेत्रों के। प्रकामविस्तारफलम्=अत्यन्त विशालता के फल को। आपुः= प्राप्त किया॥ ११॥

हिन्दी अर्थ—धनुष को धारण करने वाले भी राजा दिलीप के दया के भाव का प्रकट करने वाले शरीर को भय से रहित हृदयों से देखती हुई हिरणियों ने अपने नेत्रों के अत्यधिक विस्तृत होने का लाभ उठाया॥ ११॥

समास—धनुर्भृतः=धनुर्बिभर्तीति धनुभृत् तस्य (उपपदसमास)। दयार्द्रभावम्=दयया आर्द्रस्य भावः यस्य स तम् (बहुव्रीहि)। प्रकाम-विस्तारफलम्=प्रकामस्य विस्तारस्य फलम् (षष्ठीतत्पुरुष)। विशंकैः=विगता शंका येषाम्ते तैः (बहुव्रीहि)

व्याकरण—भृतः=भृ+क्विप्। भावम्=भू+घञ्। आख्यातम्= आ+चक्ष्+क्त। अन्तःकरण=अन्तः+कृ+ल्युट्। विलोकयन्त्यः=वि+ लोक्+शतृ+ङीप्। आपुः=आप्+लिट् प्र० पु० बहुवचन।११।

विशेष—यहाँ राजा की परमोत्कृष्ट विशेषता व्यक्त की गई है कि धनुष धारण करने वाले से यद्यपि हरिणियाँ डरकर दूर भागती हैं परन्तु उसके दयाभाव से हरिणियों को विश्वास है कि यह हमें मारेगा नहीं अतः बहुत देर तक उसे देखती रहती है। राजा की उदारता एव वन्य जन्तुओं के प्रति प्रेम का प्रदर्शन है।

प्रस्तुत श्लोक में अनुप्रास अलंकार तो है ही साथ ही विरोधाभास भी है। क्योंकि भय को उत्पन्न करने वाले धनुष को देखकर भी हरिणियों के मन भय रहित हैं। परन्तु राजा के दयार्द्र प्रभाव के कारण उनका भय जाता रहता है॥११॥

प्रसंग—दिलीप को आता हुआ देखकर वृक्ष जय-जयकार करते हुये लताओं द्वारा उन पर फूल बरसाने लगे तथा अपने शब्दों द्वारा राजा का यशोगान करने लगे—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः॥१२॥

अन्वयः—स मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यम् कुञ्जेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानम् स्वम् यशः शुश्राव॥१२॥

संस्कृत टीका—सः=राजा दिलीपः । मारुतपूर्णरन्ध्रैः=वायुपूरितछिद्रैः कूजद्भिः=शब्दायमानैः । कीचकैः=वेणुभिः । आपादितवंशकृत्यम्=सम्पादितवेणुवाद्यकार्यम् । कुञ्जेषु=लतागृहेषु । वनदेवताभिः=वनदेवीभिः । उच्चैः उच्चस्वरेण । उद्गीयमानम्=गायनंक्रियमाणम् । स्वम्=आत्मीयम् । यशः=कीर्तिम् । शुश्राव=अशृणोत् ॥१२॥

संस्कृत भावार्थ—गोसेवापरायणः राजा दिलीपः वने विचरन् आसीत् तदा वायुपूरितछिद्रैः शब्दं कुर्वद्भिः वेणुविशेषैः, वनदेवताभिः गायमानम् स्वकीयं यशः अशृणोत् । गायने यत् वंशीवाद्यस्यावश्यकतासीत्, तत् स्वनद्भिः कीचकैः पूर्णं कृतम् ॥१२॥

शब्दार्थ—मारुतपूर्णरन्ध्रैः=वायु से पूर्ण छिद्रों वाले । कूजद्भिः=शब्द करते हुए । कीचकैः=बाँसों से । आपादितवंशकृत्यम्=जिससे बाँसुरी बजने का कार्य पूर्ण किया गया । कुञ्जेषु=लतागृहों में । वनदेवताभिः=वन देवताओं के द्वारा । उच्चैः=ऊँचे स्वर से । उद्गीयमानम्=गाये जाते हुए । स्वम् यशः =अपनी कीर्ति को । शुश्राव=सुना ॥१२॥

हिन्दी अर्थ—राजा दिलीप ने वायु से भरे हुये छिद्रों वाले अतः शब्द करते हुए बांसों द्वारा वांसुरी का कार्य पूर्ण करने वाले वनदेवियों द्वारा कुञ्जों में ऊँचे स्वर से गाये जाने वाले अपने यश को सुना ॥१२॥

समास—मारुतपूर्णरन्ध्रैः=मारुतेन पूर्णानि रन्ध्राणि येषाम् ते तैः (बहुव्रीहि) आपादितवंशकृत्यम्=आपादितं वंशस्य कृत्यं यस्मिन् तत् (तत्पुरुष, बहुव्रीहि) वनदेवताभिः=वनस्य देवताभिः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

व्याकरण—कीचकैः=चीक्+वुञ्+अक् (च और क काविपर्यय हुआ है) कूजद्=कूज्+शतृ । उद्गीयमानम्=उद्+गै+यक्+शानच् । शुश्राव=श्रु+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥१२॥

विशेष—तात्पर्य है कि वन देवियाँ राजा का यशोगान कर रही थीं । उस गायनकाल में कीचक नाम के विशेष प्रकार के बांस जो वायु के भर जाने के कारण शब्द कर रहे थे मानो वही वन देवताओं की बाँसुरी थे । इस प्रकार राजा की महत्ता स्थापित की गई है कि प्रकृति भी दिलीप के सुकृत्यों से प्रभावित हो गई थी ॥१२॥

जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
अ थ प्र	जा ना म	धि पः प्र	भा ते	=	(उपेन्द्रवज्रा)
जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
जा या प्र	ति ग्रा हि	त ग न्ध	माल्याम्	=	(इन्द्रवज्रा)
जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ऽ	ऽ ऽ		
व ना य	पी त प्र	ति ब द्ध	व त्साम्	=	(उपेन्द्रवज्रा)
जगण	तगण	जगण	गु. गु.		
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ		
य शो ध	नो धे नु	मृ षे मुं	मो च	=	(उपेन्द्रवज्रा)

समास--यशोधनः=यश एव धनं यस्य सः (बहुव्रीहिसमास)। जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्=जायया प्रतिग्राहिते गन्धमाल्ये यया सा ताम् (बहुव्रीहि०)। पीतप्रतिबद्धवत्साम्=पूर्वं पीतः पश्चात् प्रतिबद्धो वत्सो यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि०)।

व्याकरण—प्रजानाम्=प्र+जन्+ड+टाप्=प्रजा, षष्ठीबहुवचन में प्रजानाम्। अधिपः=अधि+पा+क। प्रतिग्राहित=प्रति+ग्रह्+णिच्+क्त। पीतः—पा+क्त, प्रतिबद्धः=प्रति+बन्ध्+क्त। मुमोच= मुच् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

'वनाय' में "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है। जहाँ तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का भाव या अर्थ छिपा रहता है उसके कर्म में चतुर्थी हो जाती है। वनं गन्तुं मुमोच=वनाय मुमोच ॥१॥

प्रसङ्ग—राजा दिलीप नन्दिनी को जब जंगल में चराने के लिए ले जा रहे थे तो उनके साथ सुदक्षिणा भी उनके पीछे-पीछे चली—

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥२॥

अन्वय—अपांसुलानाम् धुरि कीर्त्तनीया मनुष्येश्वरधर्मपत्नी खुरन्यासपवित्रपांसुम् तस्याः मार्गम् स्मृतिः श्रुतेः अर्थम् इव अन्वगच्छत् ॥२॥

संस्कृत टीका—अपांसुलानाम्=पतिव्रतानाम्, धुरि=अग्रे, कीर्त्तनीया=प्रशंसनीया, मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=महाराजदिलीपस्य धर्मपत्नी सुदक्षिणा, खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुरनिक्षेपपवित्रधूलिम्, तस्याः=नन्दिन्याः, मार्गम्=पन्थानम्, स्मृतिः=स्मृतिशास्त्रम्, श्रुतेः=वेदस्य, अर्थमिव, अन्वगच्छत्=अनुसृतवती ॥२॥

संस्कृत भावार्थः—समस्तपतिव्रतास्त्रीमण्डले अग्रे गणनीया राजमहिषी सुदक्षिणा तस्याः नन्दिन्याः खुरनिक्षेपेण पवित्रधूलियुक्तं मार्गं एवमनुसृतवती यथा मन्वादिप्रणीतं शास्त्रम् वेदार्थनुसरति ॥२॥

शब्दार्थ=अपांसुलानाम्=पतिव्रता स्त्रियों में। अग्रे=आगे। कीर्तनीया=परिगणनीया। मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=दिलीप की पत्नी रानी सुदक्षिणा। खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुर रखने से पवित्र धूलियुक्त। स्मृति=धर्मशास्त्र। श्रुतेः=वेद के। अन्वगच्छत्=पीछे-पीछे चली ॥२॥

हिन्दी अर्थ—पतिव्रताओं में अग्रगण्य राजा दिलीप की धर्मपत्नी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के खुरों के निक्षेप से उठने वाली धूलियों से पवित्र मार्ग का ऐसे अनुसरण किया, जैसे स्मृतियां वेदों का अनुसरण करती हैं ॥२॥

समास—अपांसुलानाम्=न पाँसुला अपांसुलाः तासाम् (नञ् तत्पुरुष) खुरन्यासपवित्रपांसुम्=खुराणां न्यासेन पवित्राः पांसवः यस्य तत् (बहुव्रीहिसमास)। मनुष्येश्वरधर्मपत्नी=मनुष्याणां ईश्वरस्य धर्मपत्नी (षष्ठीतत्पुरुष) ॥२॥

व्याकरण—पांसुलानां=पासु+लच्+टाप्। श्रुति=श्रु+क्तिन्। स्मृति=स्मृ+क्तिन्। अन्वगच्छत्=अनु+गम्+लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन ॥२॥

विशेष :—प्रस्तुत श्लोक में 'उपमा' अलंकार है यहाँ नन्दिनी गाय उपमेय और श्रुति उपमान, मार्ग उपमेय और अर्थ उपमान, रानी सुदक्षिणा

उपमेय और स्मृति उपमान है। 'अनुगमन करना' साधारण धर्म और 'इव' उपमा वाचक शब्द है। इस प्रकार उपमा के चारों अंग होने से पूर्णोपमा है। इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार भी है। सुदक्षिणा पाँसुयुक्त मार्ग का अनुसरण करती हुई भी अपांसु है। यहाँ मार्ग पांसुयुक्त है जिसका वह अनुसरण कर रही है परन्तु वह अपांसु अर्थात् दोष रहित है ॥२॥

प्रसंग—दयार्द्र राजा नन्दिनी के पीछे-पीछे आती हुई सुदक्षिणा को लौटाकर स्वयम् नन्दिनी की सेवा में तत्पर हो गये—

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥३॥

अन्वयः—यशोभिः सुरभिः दयालुः राजा दयितां निवर्त्य पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम् ताम् सौरभेयीं गोरूपधरां उर्वीम् इव जुगोप ॥३॥

संस्कृत टीका—यशोभिः=कीर्तिभिः, सुरभिः=मनोज्ञः, दयालुः=दयावान्, राजा=दिलीपः, दयितां=पत्नीं सुदक्षिणाम् निवर्त्य=आश्रमं प्रति परावर्त्य, पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम्=स्तनीभूतचतुःसंख्याकसागराम्, ताम्=पूर्वोक्ताम्, सौरभेयीम्=कामधेनोः सुतां नन्दिनीम्, गोरूपधराम्=धेनुरूप दधानाम्, उर्वीम्=वसुन्धराम्, इव=यथा, जुगोप=ररक्ष ॥३॥

संस्कृत भावार्थः—सः यशस्वी परमकारुणिको राजा दिलीपः नन्दिनीमनुसरन्तीं स्वपत्नीं सुदक्षिणां गुरोराश्रमं प्रति परावर्त्य स्तनरूपचतुःसमुद्रयुक्तां नन्दिनीं गोरूपधारिणीमुर्वीमिव रक्षितवान् ॥३॥

शब्दार्थ—यशोभिः=कीर्त्ति से। सुरभिः=मनोहर। दयिताम्=प्रिया सुदक्षिणा को। निर्वत्य=लौटाकर। सौरभेयीम्=कामधेनुपुत्री नन्दिनी को। पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम्=पयोधरीभूत स्तन (थन) रूप चार समुद्रों वाली। गोरूपधराम्=गाय का रूप धारण करने वाली। उर्वीम्=पृथ्वी। जुगोप=रक्षा करने लगे ॥३॥

हिन्दी अर्थ—यश से सुशोभित, दयालु स्वभाववाले राजा दिलीप ने अपनी पत्नी सुदक्षिणा को गुरु के आश्रम को लौटाकर चार स्तनों के रूप में चारों समुद्रों को धारण करने वाली नन्दिनी की गाय का रूप धारण करने वाली पृथ्वी के समान रक्षा करने लगे ॥३॥

समास—पयोधरीभूतचतु:समुद्राम्=न पयोधरा: अपयोधरा:, अपयोधरा: पयोधरा: सम्पद्यमाना: पयोधरीभूता:, पयोधरीभूता: चत्वार: समुद्रा: यस्या: सा ताम् (बहुव्रीहि) ॥३॥

व्याकरण—दयालु:=दय्+आलुच् । दयिताम्=दय्+क्त+टाप् । निवर्त्य=नि+वृत्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । गोरूपधराम्=गोरूप+धृ+अच्+टाप् । जुगोप=गुप्+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥३॥

विशेष–प्रस्तुत श्लोक में 'दयितां दयालु:' तथा 'सीरभेयी सुरभिर्यशोभि:' में क्रमश: द य वर्णों का और स र भ वर्णो का एक बार साम्य होने से वृत्यनुप्रास है । इसके अतिरिक्त नन्दिनी का पृथ्वी से सादृश्य प्रकट करने के कारण उपमा तो पूर्ण रूप से है ही । 'पयोधरीभूत' शब्द में श्लेष भी है । पृथ्वी के पक्ष में गोरूपधारिणी शब्द का अर्थ होगा कि समुद्र पयोधर न होकर भी पयोधर हो गये है, और नन्दिनी गाय के पक्ष में अर्थ होगा कि जिसके दूध से समुद्र भी अधरीभूत अर्थात् तिरस्कृत हो गया है । अन्त में व्यतिरेकालंकार की उत्कृष्टता भी कही जा सकती है क्योंकि यहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक गुण बताये गये हैं । उपमान चारसमुद्रों से उपमेय चारस्तनों की उत्कृष्टता दिखाई गई है ।

इस श्लोक में "दयालु और दयिता शब्दों के प्रयोग पूर्ण उपयुक्त एवं साभिप्रायात्मक रूप में हैं" । राजा दयालु होने के कारण दयिता की सुकुमारता को जानता है, और गोसेवा के लिए साथ में वनगमन करने वाली रानी सुदक्षिणा को वन में कष्ट होगा, यह विचार कर लौटा देता है । ऐसा कार्य एक दयालु पति ही दयापात्र पत्नी के प्रति कर सकता है ॥३॥

प्रसंग :—नन्दिनी का अनुगमन करने वाली सुदक्षिणा को वापिस लौटाकर राजा दिलीप ने गाय के पीछे आते हुए शेष सेवक वर्ग को भी लौटा दिया—

व्रताय तेनानुचरेण धेनो: न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्ग: ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनो: प्रसूति: ॥४॥

अन्वय :—व्रताय धेनो: अनुचरेण तेन शेष: अनुयायिवर्ग : अपि न्यषेधि । तस्य शरीररक्षा च अन्यत: न, हि मनो: प्रसूति: स्ववीर्यगुप्ता (भवति) ॥३॥

संस्कृत टीका :—व्रताय=पुत्रप्राप्त्यर्थं गोसेवारूपनियमपालनार्थं, धेनोः=नन्दिन्याः, अनुचरेण=सेवकेन, तेन=राज्ञा दिलीपेन, शेषः=अवशिष्टः, अनुयायिवर्गः=सेवकसमूहः । अपि=समुच्चये, न्यषेधि=निर्वर्तितः । राज्ञः=दिलीपस्य, शरीररक्षा=गात्ररक्षणं च, अन्यतः=अन्यस्मात्, न=नहि, हि=यतः, मनोः=मनुनामकस्य नृपस्य, प्रसूतिः=सन्ततिः, स्ववीर्यगुप्ता=आत्मपराक्रमरक्षिता भवति ॥४॥

संस्कृतभावार्थ—पुत्रप्राप्त्यर्थं गोसेवारूपनियमपालनार्थं सौरभेय्याः सेवकेन तेन राज्ञा दिलीपेन अवशिष्टोऽपि अनुयायिवर्गः धेनोर् अनुसरणान्निवारितः । राज्ञः दिलीपस्य शरीररक्षणाय अन्यस्य कस्यचिदपि पुरुषस्य आवश्यकता नास्ति, यतः मनोः सन्ततिः स्वपराक्रमेणैव स्वं रक्षितुं समर्था भवति ॥४॥

शब्दार्थ—व्रताय=गोसेवारूप व्रत पालन के लिए। अनुचरेण=सेवक। तेन=राजा दिलीप ने। शेषः=बचे हुए। अनुयायिवर्गः=सेवकों को। न्यषेधि=लौटा दिया। अन्यतः=दूसरे से। स्ववीर्यगुप्ता=अपने पराक्रम से रक्षित। मनोः प्रसूतिः=मनु की सन्तान ॥४॥

हिन्दी अर्थ—पुत्रप्राप्ति के लिए राजा दिलीप ने बचे हुए सेवकों को भी वापिस लौटा दिया। राजा को अपने शरीर की रक्षा के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मनु की सन्तान तो अपने ही पराक्रम से स्वयं की रक्षा करती है ॥४॥

समास—अनुयायिवर्गः=अनुयायिनां वर्गः (षष्ठीतत्पुरुष)। शरीररक्षा=शरीरस्य रक्षा (षष्ठीतत्पुरुष)। स्ववीर्यगुप्ता=स्वस्य वीर्येण गुप्ता (षष्ठी, तृतीया तत्पुरुष)।

व्याकरण—अनुचर=अनु+चर्+ट। न्यषेधि=नि+सिध्+लुङ् प्र. पु०ए०व० (कर्मवाच्य)। शेषः=शिष्+घञ्। अनुयायि=अनु+या+णिनि। अन्यतः=अन्य+तसिल्। गुप्ता=गुप्+क्त+टाप्। प्र+सू+क्तिन्। वीर्य=वीर+यत् ॥४॥

विशेष—राजाओं के शरीर की रक्षा के लिये पीछे सेवक वर्ग रहता था। परन्तु इस समय राजा पुत्र-प्राप्ति के निमित्त स्वयं नन्दिनी की सेवा में संलग्न था। सम्भव था गोसेवारूप व्रत में आने वाले कष्टों को कोई सेवक स्वामी पर

आया हुआ समझ कर स्वयं वहन कर लेता, अतः राजा ने सभी सेवकों को वापिस कर दिया, क्योंकि राजा सभी कष्टों को स्वयम् उठाना चाहता था। अपनी रक्षा के लिये राजा को किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी। सेवकों को साथ में रखना उपचारमात्र के लिये ही था। अतः राजा ने समस्त औपचारिकताओं का परित्याग कर दिया। 'व्रताय' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि राजा किसी दबाव या अनिच्छा से गो-सेवा में तत्पर नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति स्वयं की सेवा चाहेगा वह दूसरों की सेवा क्या कर सकेगा ?

इस श्लोक में "राजा दिलीप को अपने शरीर की रक्षा के लिये अन्य किसी सेवक आदि की आवश्यकता नहीं थी" इस विशेष का समर्थन "मनु की संतान अपनी रक्षा अपने पराक्रम से करते हैं" इस सामान्य कथन के द्वारा किया गया है अतः यहां 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है। ॥४॥

प्रसंगः—सुदक्षिणा तथा सेवकों को लौटाने के पश्चात् राजा गो-सेवा में लग जाते हैं—

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानाँ कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥५॥

अन्वयः—सः सम्राट् तृणानाम् आस्वादवद्भिः कवलैः, कण्डूयनैः, दंशनिवारणैः, अव्याहतैः स्वैरगतैः च तस्याः समाराधनतत्परः अभूत् ॥५॥

संस्कृत टीका—सम्राट्=चक्रवर्ती, सः=राजा दिलीपः, तृणानाम्=शष्पानाम्, आस्वादवद्भिः=स्वादयुक्तैः, कवलैः=ग्रासैः, कण्डूयनैः=खर्जनैः, दंशनिवारणैः=वनमक्षिकादूरीकरणैः, अव्याहतैः=अप्रतिहतैः, स्वैरगतैः=स्वच्छन्दविचरणैः, च तस्याः=नन्दिन्याः, समाराधनतत्परः=सेवानिरतः, अभूत्=बभूव ॥४॥

संस्कृत भावार्थ—महामण्डलेश्वरः राजा दिलीपः कदाचित् तृणानाम् स्वादुयुक्तग्रासानां प्रदानेन, कदाचित् खर्जनेन, कदाचित् वनमक्षिकावारणेन, कदाचित् अव्याहतमन्दगमनेन च नन्दिन्याः सेवायां संलग्नोऽभूत् ॥५॥

शब्दार्थ—सम्राट्=राजा दिलीप। तृणानाम्=घासों के। आस्वादवद्भिः=स्वादयुक्त। कवलैः=ग्रासों से। कण्डूयनैः=खुजलाने से। दंश-

निवारणैः=मच्छर आदि के दूर करने के द्वारा। अव्याहतैः=अबाध, निर्विघ्न। स्वैरगतैः=स्वतन्त्र गमन के द्वारा। समाराधनतत्परः=सेवा में संलग्न ॥५॥

हिन्दी अर्थ—चक्रवर्ती राजा दिलीप घास के स्वादिष्ट ग्रासों को खिलाते हुए, खुजलाते हुए, वन में डांस आदि को नन्दिनी से दूर भगाते हुए, तथा उसके निर्विघ्न स्वच्छन्द गमन का अनुसरण करते हुए उसकी सेवा में संलग्न हो गया ॥५॥

समास—दंशनिवारणैः=दंशानां निवारणैः (षष्ठीतत्पु०)। स्वैरगतैः= स्वैराणि गतानि तैः (कर्मधारय.)। समाराधनतत्परः=समाराधने तत्परः (सप्तमी तत्पु०)।

व्याकरण—सम्राट्=सम्+राज्+क्विप्, कण्डूयनैः=कण्डू+यक्+ल्यु (अन)। निवारणैः=नि+वृ+णिच्+ल्युट् (अन)। अव्याहतैः=अ+वि+आ+हन्+क्त। गतैः=गम्+क्त। समाराधन=सम्+आ+राध् ल्युट् (अन)। अभूत्=भू+लुङ्, प्र.पु०ए.व० ॥५॥

विशेष—महामण्डलेश्वर होते हुये भी राजा दिलीप ने सन्तान-प्राप्ति के निमित्त जब गोसेवा का व्रत धारण किया तब वे अपने गुरु वसिष्ठ के द्वारा बताये हुए साधनों से गाय की सेवा में संलग्न हो गये। 'अव्याहतैः स्वैरगतैः' शब्दों द्वारा उसी सेवा-भाव की ओर इंगित किया गया है तथा राजा की नन्दिनी में विशेष श्रद्धा का प्रकाशन हो रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में नन्दिनी की सेवा के स्वाभाविक रूप का वर्णन किये जाने के कारण स्वभावोक्ति अलकार है ॥५॥

प्रसंगः—महाकवि कालिदास वन में राजा दिलीप के द्वारा नन्दिनी की सेवा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥६॥

अन्वयः—भूपतिः ताम् स्थिताम् स्थितः, प्रयाताम् उच्चलितः, निषेदुषीम् आसनबन्धधीरः, जलम् आददानाम्, जलाभिलाषी, छाया इव अन्वगच्छत् ॥६॥

संस्कृत टीका—भूपतिः = राजा दिलीपः । ताम् = नन्दिनीम् । स्थिताम् = अवस्थिताम्, स्थितः = अवस्थितः, प्रयाताम् = प्रचलिताम्, उच्चलितः = प्रस्थितः, निषेदुषीम् = उपविष्टाम् । आसनबन्धधीरः = निश्चलभावेनोपविष्टः, जलमाददानाम् = पयःपिबन्तीम्, जलाभिलाषी = जलपानेच्छुः सन् । छाया इव = प्रतिबिम्ब इव, अन्वगच्छत् = अनुसरणमकरोत् ॥६॥

संस्कृत भावार्थ—यद् यद् नन्दिन्या आचरितम्, तत्तदेव राजादिलीपेनानुसृतम् । यदा सा स्वेच्छया गमनं त्यक्त्वा स्थिता बभूव, राजापि तथैव स्थितवान् । यदा तया स्वेच्छया गमनं कृतं राज्ञापि तस्याः अनुसरणं कृतम्, यदा सा यत्र कुत्रापि स्वेच्छया उपविष्टा राजापि तथैव निश्चलभावेन स्थितोऽभवत् । यदा तया पयःपानं कृतं तदा राज्ञापि जलाभिलाषा कृता । एवं प्रकारेण राज्ञा सर्वतोभावेन नन्दिन्याः छाया इव अनुसरणं कृतम् ॥६॥

शब्दार्थ—स्थिताम् = खड़े होने पर । स्थितः = खड़े रहते थे । प्रयाताम् = चलने पर । उच्चलितः = चलते थे । निषेदुषीम् = बैठने पर । आसनबन्धधीरः = आसन लगाकर बैठ जाते थे । जलमाददामाम् = जल ग्रहण करने पर । जलाभिलाषी = जल की इच्छा करते थे । छायेव = छाया के समान ॥६॥

हिन्दी अर्थ—राजा दिलीप नन्दिनी के खड़े हो जाने पर खड़े हो जाते थे । जब वह चलती थी तो राजा भी चलने लगते थे । जब वह बैठ जाती थी तो राजा भी बैठ जाते थे । जब वह जल पीती थी तो राजा भी जल पीते थे । इस प्रकार राजा ने छाया के समान नन्दिनी का अनुसरण किया ॥६॥

समास—आसनबन्धधीरः = आसनस्य बन्धे धीरः (तत्पुरुष.) । जलाभिलाषी = जलस्य अभिलाषी (षष्ठीतत्पुरुष) । भूपतिः = भुवः पतिः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

व्याकरण—स्थितः = स्था + क्तः । उच्चलितः = उत् + चल + क्त । प्रयाताम् = प्र + या + क्त + टाप् । निषेदुषीम् = नि + सद् + क्वसु + ङीप् । आसन = आस् + ल्यु (अन) । अन्वगच्छत् = अनु + गम् लङ् लकार प्र. पु. ए. व. ॥६॥

विशेष—नन्दिनी वन में जिस प्रकार का आचरण करना चाहती थी उसके लिये स्वतन्त्र थी । राजा केवल उसका अनुसरण इस प्रकार कर रहे थे,

मानो वे उसके प्रतिबिम्ब मात्र हों। सेवा कार्य में सेवक की इच्छा का व्याघात होना सेवक की अपटुता का द्योतक ही है। वशिष्ठ मुनि ने भी राजा को इसी प्रकार की सेवा करने का आदेश दिया था। कहा था कि—इसके चलने पर चलना, स्थिति होने पर स्थित होना, बैठने पर बैठ जाना, जल पान करने पर जल पीना (रघु० १-८९)। ठीक उसी प्रकार की सेवा राजा दिलीप ने की, यह प्रदर्शित किया गया है।

उक्त श्लोक में उपमालंकार हैं। यहाँ भूपति उपमेय, छाया उपमान, अनुगमन करना साधारण धर्म, और इव उपमावाचक है ॥६॥

प्रसंग—गाय की सेवा में संलग्न राजा दिलीप के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥७॥

अन्वय—न्यस्तचिह्नाम् अपि तेजोविशेषानुमिताम् राजलक्ष्मीम् दधानः सः अनाविष्कृतदानराजिः अन्तर्मदावस्थः द्विपेन्द्रः इव आसीत् ॥७॥

संस्कृत टीका—न्यस्तचिह्नामपि= परित्यक्तछत्रचमरादिराजलक्षणामपि, तेजोविशेषानुमिताम्=प्रभावातिशयेन परिज्ञाताम्। राजलक्ष्मीम्=राजश्रियम्, दधानः=धारयन्, सः=राजा दिलीपः, अनाविष्कृतदानराजिः=बहिरप्रकटिमदलेखः। अन्तर्मदावस्थः=आभ्यन्तरमदवारियुक्त, द्विपेन्द्रः=गजराजः। इव=यथा, आसीत् ॥८॥

संस्कृतभावार्थ—गोसेवापरायणो राजा दिलीपः व्रतका णात् सर्वाणि राजसूचकानि उपकरणादीनि छत्रचमारादीनि परित्यक्तवान्। तथापि स्वकीयवीर्यप्रभावातिशयेन स्वचक्रवर्तित्वं धारयन् अप्रकटितमदलेख आभ्यन्तरमदस्थितः गजेन्द्र इव आसीत् ॥७॥

शब्दार्थ—न्यस्तचिह्नाम्=छत्रचामरादि राजचिह्नों से रहित। तेजोविशेषानुमिताम्=प्रभावातिशय से अनुमित। राजलक्ष्मीम्=राजलक्ष्मी को। दधानः=धारण किये हुए। अनाविष्कृतदानराजिः=जिसकी मदलेखा अभी प्रकट नहीं हुई है। अन्तर्मदावस्थः=जिसकी मद की अवस्था भीतर स्थित है। द्विपेन्द्रः=गजेन्द्र ॥७॥

हिन्दी—छत्रचमरादि राजसूचक चिन्हों का परित्याग कर देने पर भी प्रभावातिशय से अनुमान की जाती हुई राजलक्ष्मी को धारण करता हुआ वह राजा दिलीप ऐसे हाथी के समान था, जिसकी मदरेखा अभी बाहर नहीं प्रस्फुटित हुई है परन्तु उसके भीतर ही भीतर मद है ।।७।।

समास—न्यस्तचिह्नाम्=न्यस्तानि चिह्नानि यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। राजलक्ष्मीम्=राज्ञलक्ष्मी (षष्ठीतत्पुरुष)। तेजोविशेषानुमिताम्=तेजसां-विशेषः तेन अनुमिताम् (तत्पुरुष.) । अनाविष्कृतदानराजिः=अनाविष्कृताः दानस्य राजयः यस्य सः (बहुव्रीहि.) । अन्तर्मदावस्थः=अन्तर्गता मदस्य अवस्था यस्य सः (बहु०) ।।७।।

व्याकरण—न्यस्त=नि+अस्+क्त । अनुमित=अनु+मा+क्त । दधानः=धा+शानच् । आविष्कृत=आविस्+कृ+क्त । दान=दा+ल्युट् (अन) ।।७।।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में राजादिलीप के तेजस्वी होने का वर्णन है। इसके साथ ही यह प्रदर्शित किया गया है कि मुकुट, छत्र आदि से ही कोई राजा नहीं होता, अपितु राजा के अन्दर एक विशिष्ट तेज होता है जो सब अवस्था में अपने प्रभाव को प्रदर्शित करता है। राजा द्वारा गोसेवा व्रत को स्वीकार कर लेने पर राजोचित सम्मान का परित्याग किया जाना उसकी महत्ता का द्योतक है।

यहाँ उपमालंकार है। राजा दिलीप उपमेय, द्विपेन्द्र उपमान, अतिशय तेजस्वी होना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द है ।।७।।

प्रसंग—राजा दिलीप जो सेवा करते हुए धनुष वाण हाथ में लेकर हाथी के समान वन में विचरण कर रहे हैं—

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ।।८।।

अन्वय—लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः अधिज्यधन्वा सः मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्वान् विनेष्यन् इव दावम् विचचार ।।८।।

संस्कृतटीका—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=वल्लीतन्तुबद्धैः, केशैः=कचैः। अधिज्यधन्वा=समारोपितमौर्वीचापः, सः=राजा दिलीपः, मुनिहोमधेनोः=वशिष्ठस्य होमसाधनभूतायाः नन्दिन्याः, रक्षापदेशात्=रक्षणस्य व्याजात्,

वन्यान्=आरण्यकान्, दुष्टसत्वान्=हिंसकजीवान्, विनेष्यन्निव=शिक्षयिष्यन्निव, दावम्=वनं, विचचार=अभ्रमत् ॥८॥

संस्कृतभावार्थ—गोसेवापरायणेन राज्ञा दिलीपेन वनजाताभिः लतातन्तुभिः स्वकेशानि उद्ग्रथितानि। वने विचरन् सः एवं प्रतीयते यत् नन्दिन्याः रक्षण-व्याजेन वनस्य हिंसकान् जन्तून् नम्रतां शिक्षयति ॥८॥

शब्दार्थ—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=लताओं के सूत्रों से ग्रथित (गुम्फित) अधिज्यधन्वा=प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुष वाले। रक्षापदेशात्=रक्षा के बहाने से। वन्यान्=जंगली। दुष्टसत्वान्=हिंसक जीवों को। विनेष्यन्निव=शिक्षित करते हुए के समान। दावम्=वन में। विचचार=विचरण करने लगे ॥८॥

हिन्दी अर्थ—लताओं के तन्तुओं से गुथे हुए केशों से युक्त राजा दिलीप चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा वाले धनुष को हाथ में लिये हुए महर्षि वशिष्ठ के यज्ञ की सामग्री घृतादि वस्तुओं को प्रदान करने वाली नन्दिनी की रक्षा के व्याज से मानो जंगली हिंसक जीवों को (शासन करने के लिए) वन में विचरण कर (रहे थे)।८॥
शिक्षित करते हुए के समान

समास—लताप्रतानोद्ग्रथितैः=लतानां प्रतानैः उद्ग्रथिताः तैः (तत्पुरुष समास)। अधिज्यधन्वा=अधिगता ज्या यस्य सः (बहुव्रीहि) अधिज्यं धनुः यस्य सः (बहुव्रीहि)। रक्षापदेशात्=रक्षाया अपदेशात् (षष्ठी तत्पु०)। मुनिहोमधेनोः=मुनेः होमस्य धेनोः (तत्पुरुष.)। दुष्टसत्वान्=दुष्टान् सत्वान् (कर्मधारय.)।

व्याकरण—उद्ग्रथितः=उद्+ग्रन्थ्+क्त। केशैः="इत्थं भूतलक्षणे" से तृतीया। अपदेशान्=अप+दिश्+घञ्। विनेष्यन्=वि+नी+लृट्+शतृ। दुष्ट=दुष्+क्त ॥८॥

विशेष—वन में नन्दिनी के पीछे-पीछे जाते हुए राजा के कुशलताओं के तन्तुओं से उलझने के कारण बँधे से हो गये। बड़ी परेशानी को सहते हुए भी राजा दिलीप ने वन में विचरण बन्द नहीं किया। प्रस्तुत श्लोक में मुनि की गाय की रक्षा करना उपमेय के स्थान पर कवि ने वन्य प्राणियों को विनय सिखाना इस उपमान की सम्भावना की है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥८॥

प्रसंग—मण्डलेश्वर राजा दिलीप द्वारा गौसेवाव्रत के स्वीकार कर लिये जाने के कारण उसकी महिमा एवं तेजस्विता से प्रभावित पशुपक्षी अपने सुमधुर शब्दों से मानो राजा का जय-जयकार कर रहे हैं—

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥९॥

अन्वय—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य पाशभृता समस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः उन्मदानां वयसां विरावैः आलोकशब्दं इव उदीरयामासुः ॥९॥

संस्कृत टीका—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=निवर्तितनिकटवर्तिसेवकवृन्दस्य, पाशभृता समस्य=वरुणेन सदृशस्य, तस्य=राज्ञो दिलीपस्य, पार्श्वद्रुमाः=पार्श्ववर्तिनो वृक्षाः, उन्मादानाम्=उत्कटहर्षयुक्तानाम् वयसाम्=पक्षिणाम् विरावैः=ध्वनिभिः, आलोकशब्दम्=जयध्वनिम्, इव=यथा, उदीरयामासु;=उच्चारयामासुः ॥९॥

संस्कृत भावार्थ—राज्ञा दिलीपेन सर्वोऽपि पार्श्ववर्तिसेवकवृन्दस्तथा जयशब्दोच्चारणपटुः वन्दिवृन्दश्च आश्रमं प्रति निवर्तितः । तथापि तस्य वरुणदेव तुल्यप्रतापातिशयेन प्रभाविताः तस्य पार्श्वे स्थिताः वृक्षाः एव स्वशाखासु उपविष्टानां खगानां कलध्वनिभिः तस्य जयशब्दं चक्रुः, एवं प्रतीयते ॥९॥

शब्दार्थ—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=जिसने समीपवर्ती नौकरों को विदा कर दिया है । पाशभृता=वरुण के । समस्य=समान । पार्श्वद्रुमाः=समीप के पेड़ । उन्मादानाम्=मदमस्त । वयसाम्=पक्षियों के । विरावैः=शब्दों के द्वारा । आलोकशब्दम्=जयकार का शब्द । उदीरयामासुः=उच्चारण किया ॥९॥

हिन्दी अर्थ—साथ में रहने वाले सेवक वृन्द को छोड़ देने पर भी वरुण के समान प्रभावशाली उस राजा दिलीप का (पास) के वृक्ष उन्मत्त पक्षियों के शब्दों द्वारा मानो जय-जय शब्द का उच्चारण कर रहे थे । ॥ ९ ॥ अत्यधिक हर्षित

समास—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य=विसृष्टाः पार्श्ववर्तिनो अनुचरा येन सः तस्य (बहुव्रीहि. । पाशभृता=पाशं बिभर्तितेन (उपपदसमास) । पार्श्वद्रुमाः=पार्श्ववर्तिनः द्रुमाः (कर्मधारय) । उन्मदानाम्=उत्कृष्टः मदो येषाम्तेषाम् (बहुव्रीहि) । आलोक शब्दम्=आलोकस्य शब्दम् (षष्ठीतत्पुरुष) ॥९॥

व्याकरण—विसृष्ट=वि+सृज्+क्त । अनुचर=अनु+चर्+ट । पाशभृता=पाश+भृ+क्विप् । विरावैः=वि+रू+घञ् । आलोक=आ+लोक+घञ् । उदीरयामासुः=उद्+ईर+लिट् लकार प्र. पु० बहुवचन ॥९॥

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में राजा का सादृश्य बताये जाने के कारण उपमा है। राजा दिलीप उपमान, वरुण उपमेय, सम उपमा का वाचक है। यहां साधारण धर्म का लोप होते से धर्मलुप्ता उपमा है।

यहां उत्प्रेक्षा अलंकार भी है। क्योंकि वृक्षों पर होने वाले पक्षियों की कल ध्वनियों की कवि ने वृक्षों द्वारा किये गये जयकार से उत्प्रेक्षा की है। अर्थात् वृक्षों पर जो पक्षी बोल रहे हैं वह मानो वृक्षों द्वारा राजा का जय-जय कार कर रहे हैं। ॥ ९ ॥

प्रसंग—अब वनवासी राजा का वन में फैलने वाली लताओं द्वारा स्वागत का वर्णन किया जा रहा है—

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम्।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः॥ १० ॥

अन्वय—आराद् अभिवर्तमानम् मरुत्सखाभम् अर्च्यम् तम् मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः पौरकन्या आचारलाजैः इव प्रसूनैः अवाकिरन् ॥ १० ॥

संस्कृतटीका—आराद्=समीपम्, अभिवर्तमानम्=विचरन्तम्, मरुत्सखाभम्=अग्निसमतेजसम्, अर्च्यम्=पूज्यनीयम्, तम्=राजानं दिलीपम्, मरुत्प्रयुक्ताः=वायुना इतस्ततश्चालिताः, बाललताः=स्वल्पवल्लर्यः, पौरकन्याः=नगरवासिन्य बालाः, आचारलाजैः=स्वागतार्थप्रयुक्तैः मंगललाजैः। इव= यथा। प्रसूनैः=कुसुमैः। अवाकिरन्=अवर्षन् ॥ १० ॥

संस्कृत भावार्थ—समीपे विचरन्तं राजानं दिलीपम् वायुप्रेरिताः बाललताः स्वप्रसूनैः तथा अभिनन्दयामासुः, यथा नागरिकाः कन्याः स्वागतसमये राजानम आचारलाजैः अभिवर्षन्ति ॥१०॥

शब्दार्थ—मरुत्प्रयुक्ताः=वायु से प्रेरित। बाललता=कोमल लतायें। आरात्=समीप। अभिवर्तमानम्=विद्यमान। मरुत्सखाभम्=वायु के मित्र अग्नि के समान। अर्च्यम्=पूज्य। प्रसूनैः=फूलों से। पौरकन्याः=नगर की कन्यायें। आचारलाजैः=मांगलिक खीलों से। अवाकिरन्=वर्षा की ॥१०॥

हिन्दी अर्थ—समीप में विचरण करने वाले, मरुत् के मित्र अग्नि की सदृश कान्ति वाले, पूजनीय उस राजा दिलीप पर वायु से हिलाई जाती हुई छोटी-छोटी बेलें इस प्रकार राजा पर पुष्प वर्षा कर रही थीं जिस प्रकार नगर निवासिनी कन्यायें राजा के स्वागत के समय खीलें बिखेरती हैं।१०।

समास—मरुत्प्रयुक्ताः=मरुता प्रयुक्ताः (तत्पुरुष)। बाललताः=बालाश्च ताः लताः (कर्मधारय)। आचारलाजैः=आचारार्थ लाजैः (तत्पुरुष मध्यम-पदलोपी समास)। पौरकन्याः=पौराश्च ताः कन्याः (कर्मधारय) ॥१०॥

व्याकरण—प्रयुक्त=प्र+युज्+क्त। अर्च्यम्=ऋच्+यत्। अभिवर्त-मानम्=अभि+वृत्+शानच्। प्रसून=प्र+सू+क्त। आचार=आ+चर्+घञ्। पौर=पुर+अण्। ॥ १० ॥

विशेषः—प्रस्तुत श्लोक में "मरुत्सखाभम्" में वाचक लुप्तोपमा है। क्यों कि राजा उपमेय, अग्नि उपमान, और आभा साधारण धर्म है। वाचक शब्द न होने के कारण वाचकलुप्तोपमा है। साथ ही नीचे वाले पद में पूर्णोपमा है। यहाँ पौरकन्या उपमान, बाललता उपमेय, अवाकिरन् साधारण धर्म और इव उपमा का वाचक है। प्रकृति के विभिन्न विषयों द्वारा राजा दिलीप की महत्ता का प्रकाशन किया गया है ॥ १० ॥

प्रशंग—सेवानिरत तेजस्वी राजा दिलीप को वन की हरिणियां भी उनकी दयालुतासे प्रभावित होकर उन्हें देख रही हैं—

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥ ११ ॥

अन्वयः—धनुर्भृतः अपि अस्य विशंकैः अन्तःकरणैः दयार्द्रभावम् आख्यातम् वपु विलोकन्त्यः हरिण्यः अक्ष्णाम् प्रकामविस्तारफलं आपुः ॥ ११ ॥

संस्कृतटीका—धनुर्भृतः अपि=धनुर्धारिणः अपि, अस्य=राज्ञः दिलीप-स्य, विशंकैः=निःशंकैः, अन्तःकरणैः=अन्तरिन्द्रियैः, दयार्द्रभावम्=करुणा-र्द्रभावम्। आख्यातं=प्रकटीकृतम्। वपुः=शरीरम्। विलोकयन्त्यः=पश्यन्त्यः। हरिण्यः=मृग्यः। अक्ष्णाम्=नेत्राणाम्। प्रकामविस्तारफलम्=प्रकामविशालतालाभम्। आपुः=अलभन् ॥११॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः धनुर्धारी आसीत् परन्तु हरिण्यः निःशंकैः हृदयैः दयालुतायुक्तं तस्य वपुः प्रकामं विलोकयन्त्यः स्वनेत्राणाम् विस्तारस्य फलं अलभन्। तथा मृग्यः धनुर्भृतं तं विलोक्य पलायनं न कुर्वन्ति, किन्तु तम् विशेषरूपेण विलोकयन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ:—धनुर्भृतः=धनुष धारण करने वाले। विशंकैः=शंका रहित (निःशंक)। अन्तःकरणैः= हृदय से। दयार्द्रभावम्=दया के द्वारा आर्द्र भाव को। आख्यातम्=कहा गया। वपुः=शरीर को। विलोकयन्त्यः= देखती हुई। अक्ष्णाम्=नेत्रों के। प्रकामविस्तारफलम्=अत्यन्त विशालता के फल को। आपुः= प्राप्त किया ॥ ११ ॥

हिन्दी अर्थ—धनुष को धारण करने वाले भी राजा दिलीप के दया के भाव को प्रकट करने वाले शरीर को भय से रहित हृदयों से देखती हुई हिरणियों ने अपने नेत्रों के अत्यधिक विस्तृत होने का लाभ उठाया ॥ ११ ॥

समास—धनुर्भृतः=धनुर्बिभर्तीति धनुभृत् तस्य (उपपदसमास)। दयार्द्रभावम्=दयया आर्द्रस्य भावः यस्य स तम् (बहुव्रीहि)। प्रकाम-विस्तारफलम्=प्रकामस्य विस्तारस्य फलम् (षष्ठीतत्पुरुष)। विशंकैः=विगता शंका येषाम्ते तैः (बहुव्रीहि)

व्याकरण—भृतः=भृ+क्विप्। भावम्=भू+घञ्। आख्यातम्= आ+चक्ष्+क्त। अन्तःकरण=अन्तः+कृ+ल्युट्। विलोकयन्त्यः=वि+ लोक्+शतृ+ङीप्। आपुः=आप्+लिट् प्र० पु० बहुवचन।११।

विशेष—यहाँ राजा की परमोत्कृष्ट विशेषता व्यक्त की गई है कि धनुष धारण करने वाले से यद्यपि हरिणियां डरकर दूर भागती हैं परन्तु उसके दयाभाव से हरिणियों को विश्वास है कि यह हमें मारेगा नहीं अतः बहुत देर तक उसे देखती रखती है। राजा की उदारता एवं वन्य जन्तुओं के प्रति प्रेम का प्रदर्शन है।

प्रस्तुत श्लोक में अनुप्रास अलंकार तो है ही साथ ही विरोधाभास भी है। क्योंकि भय को उत्पन्न करने वाले धनुष को देखकर भी हरिणियों के मन भय रहित हैं। परन्तु राजा के दयार्द्र प्रभाव के कारण उनका भय जाता रहता है ॥११॥

प्रसंग—दिलीप को आता हुआ देखकर वृक्ष जय-जयकार करते हुये लताओं द्वारा उन पर फूल बरसाने लगे तथा अपने शब्दों द्वारा राजा का यशोगान करने लगे—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥१२॥

अन्वयः—स मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यम् कुञ्जेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानम् स्वम् यशः शुश्राव ॥१२॥

संस्कृत टीका—सः=राजा दिलीपः । मारुतपूर्णरन्ध्रैः=वायुपूरितछिद्रैः कूजद्भिः=शब्दायमानैः । कीचकैः=वेणुभिः । आपादितवंशकृत्यम्=सम्पादितवेणुवाद्यकार्यम् । कुञ्जेषु=लतागृहेषु । वनदेवताभिः=वनदेवीभिः । उच्चैः उच्चस्वरेण । उद्गीयमानम्=गायनंक्रियमाणम् । स्वम्=आत्मीयम् । यशः=कीर्तिम् । शुश्राव=अश्रृणोत् ॥१२॥

संस्कृत भावार्थ—गोसेवापरायणः राजा दिलीपः वने विचरन् आसीत् तदा वायुपूरितछिद्रैः शब्दं कुर्वद्भिः वेणुविशेषैः, वनदेवताभिः गायमानम् स्वकीयं यशः अश्रृणोत् । गायने यत् वंशीवाद्यस्यावश्यकतासीत्, तत् स्वनद्भिः कीचकैः पूर्णं कृतम् ॥१२॥

शब्दार्थ—मारुतपूर्णरन्ध्रैः=वायु से पूर्ण छिद्रों वाले । कूजद्भिः=शब्द करते हुए । कीचकैः=बाँसों से । आपादितवंशकृत्यम्=जिससे बाँसुरी बजने का कार्य पूर्ण किया गया । कुञ्जेषु=लतागृहों में । वनदेवताभिः=वन देवताओं के द्वारा । उच्चैः=ऊँचे स्वर से । उद्गीयमानम्=गाये जाते हुए । स्वम् यशः=अपनी कीर्ति को । शुश्राव=सुना ॥१२॥

हिन्दी अर्थ—राजा दिलीप ने वायु से भरे हुये छिद्रों वाले अतः शब्द करते हुए वांसों द्वारा वांसुरी का कार्य पूर्ण करने वाले वनदेवियों द्वारा कुञ्जों में ऊँचे स्वर से गाये जाने वाले अपने यश को सुना ॥१२॥

समास—मारुतपूर्णरन्ध्रैः=मारुतेन पूर्णानि रन्ध्राणि येषाम् ते तैः (बहुव्रीहि) आपादितवंशकृत्यम्=आपादितं वंशस्य कृत्यं यस्मिन् तत् (तत्पुरुष, बहुव्रीहि) वनदेवताभिः=वनस्य देवताभिः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

व्याकरण—कीचकैः=चीक्+वुञ्+अक् (च और क काविपर्यय हुआ है) कूजद्=कूज्+शतृ । उद्गीयमानम्=उद्+गै+यक्+शानच् । शुश्राव=श्रु+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥१२॥

विशेष—तात्पर्य है कि वन देवियाँ राजा का यशोगान कर रही थीं । उस गायनकाल में कीचक नाम के विशेष प्रकार के बांस जो वायु के भर जाने के कारण शब्द कर रहे थे मानो वही वन देवताओं की बांसुरी थे । इस प्रकार राजा की महत्ता स्थापित की गई है कि प्रकृति भी दिलीप के सुकृत्यों से प्रभावित हो गई थी ॥१२॥

प्रस्तुत श्लोक में लतागृहों में सुनाई पड़ने वाला कलरव मानो वन देवियों द्वारा किया जाने वाला राजा का यशोगान है और वायु भरने के कारण जो बाँस बज रहे थे वे मानों बांसुरी हैं अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥१२॥

प्रसंग—गोसेवा के निमित्त वन में विचरण करने वाले राजा दिलीप की सेवा सुगन्धित पवन भी कर रहा है इसी का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

पृक्तस्तुषारैः गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे ॥१३॥

अन्वय—गिरिनिर्झराणाम् तुषारैः पृक्तः अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी पवनः अनातपत्रम् आतपक्लान्तम् आचारपुतम् तम् सिषेवे ॥१३॥

संस्कृत टीका—गिरिनिर्झराणाम्=पर्वतवारिप्रवाहाणाम्, तुषारैः=शीतलजलकणैः, पृक्तः=सिञ्चितः, अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी=वृक्षाणाम् ईषदाकम्पितकुसमगन्धवहः, पवनः=वायुः, अनातपत्रम्=छत्ररहितम्, आतपक्लान्तम्=धर्मेण पीडितम्, आचारपूतम्=सदाचारेण पवित्रम्, तम्=राजानम् दिलीपम्, सिषेवे=सेवितवान् ।।१३॥

संस्कृत भावार्थ—वने गोसेवापरायणं सदाचारनिष्ठितं छत्ररहितम् अतएव धर्मेण पीडितं तं राजानम् पर्वतवारिप्रवाहाणाम् शीतलैः जलकणैः सिञ्चितः तथा कुसुमानाम् गन्धापहारकः पवनः सेवितवान् । अर्थात् पवनोऽपि राज्ञः महत्तया प्रेरितः तस्य कष्टनिवारणार्थं यत्नं कृतवान् ॥१३॥

शब्दार्थ—गिरिनिर्झराणाम्=पर्वत के झरनों से । तुषारैः=जलकणों से । पृक्तः=मिश्रित । अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी=वृक्षों के मन्द-मन्द हिलने वाले फूलों के गन्ध से युक्त । पवनः=वायु । अनातपत्रम्=छाते से रहित । आतपक्लान्तम्=धूप से पीड़ित । आचारपूतम्=सदाचार से पवित्र । सिषेवे=सेवा करने लगा ॥१३॥

हिन्दी—पर्वतों से बहने वाले झरनों के शीतल जलकणों से सिञ्चित तथा वृक्षों के कुछ-कुछ हिलते हुए पुष्पों से गन्ध से युक्त वायु छत्र का त्याग करने वाले अतः धूप से पीड़ित होने वाले और सदाचार से पवित्र राजा दिजीप की सेवा की ॥१३॥

समास—गिरिनिर्झराणाम्=गिरीणाम् निर्झराः तेषाम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी=अनोकहानाम् आकम्पितानाम् पुष्पाणाम् गन्धः (षष्ठी.) सोऽस्यास्तीति। आतपक्लान्तम्=आतपेन क्लान्तम् (तृतीया तत्पुरुष)। अनातपत्रम्=न विद्यते आतपत्रं यस्य सः (बहुव्रीहि)। आचारपूतं=आचारेण पूतम् (तृतीया तत्पुरुष) ॥१३॥

व्याकरण—पृक्तः=पृच्+क्त। कम्पित=कम्प्+क्त। क्लान्तम्=क्लमु+क्त। आतपत्र=आतप+त्रा+क। आचार=आ+चर्+घञ्। पूञ्+क्त। पवनः=पू+ल्युट् (अन)। सिषेवे=सेव+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥१३॥

विशेष—पर्वतों से झरने वाले झरनों से शीतल जल कण और वृक्षों के थोड़े से हिलने वाले पुष्पों की सुगन्धि को ग्रहण करने वाले पवन द्वारा छत्रादि से रहित जिसको धूप लग रही थी उस राजा दिलीप की सेवा किया जाना कालिदास द्वारा वायु का मानवीकरण है। प्रस्तुत श्लोक में अनुप्रासालंकार है ॥१३॥

प्रसंग—महाराज दिलीप के वन में प्रवेश करने पर वन में सुख-शान्ति छा गई, वन्य जन्तुओं ने पारस्परिक ईर्ष्याभाव को छोड़ दिया, इसी का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

शशाम वृष्ट्यापि बिना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने ॥१४॥

अन्वय—गोप्तरि तस्मिन् वनं गाहमाने वृष्ट्या विना अपि दवाग्निः शशाम। फलपुष्पवृद्धिः विशेषा आसीत्। सत्वेषु अधिकः ऊनं न बबाधे ॥१४॥

संस्कृतटीका—गोप्तरि=प्रजारक्षके, तस्मिन्=राजनि दिलीपे, वनम्=अरण्यम्। गाहमाने=प्रविचरति सति। वृष्ट्या विनापि=वर्षणेन विनापि। दवाग्निः=दावानलः, शशाम=शान्तोऽभवत्। फलपुष्पवृद्धिः=सस्यप्रसून समृद्धिः, विशेषाः=अतिशययुक्ताः, आसीत्=अभवत्, सत्वेषु=जन्तुषु मध्ये, अधिकः=प्रबलः व्याघ्रादिः, ऊनं=हीनं मृगादिकम्, न=नहि, बबाधे=पीड़ितवान् ॥१४॥

संस्कृतभावार्थ—यदा गोसेवापरायणः राजा दिलीपः वनं प्राविशत्, तदा दवाग्निः वृष्ट्या विनापि शान्तोऽभवत्। तस्य प्रभावातिशयात् वने फलानां

कुसुमानाम् च विशेषवृद्धिरभवत् । वन्यजन्तुषु शक्तिसम्पन्नाः सिंहादयो निर्बल-जीववर्गं मृगादिकं किञ्चिदपि न बबाधे । अर्थात् सर्वे जन्तवः विस्मृतवैराः संजाताः ॥१४॥

शब्दार्थ—गोप्तरि=रक्षक । गाहमाने=प्रवेश करने पर । वृष्ट्या विना=वर्षा के बिना । दावाग्निः=दावानल । शशाम=शांत हो गया । फलपुष्पवृद्धिः=फल और फूलों की समृद्धि । विशेषः=अधिक । सत्त्वेषु=वन जन्तुओं में । अधिकः=बलवान् । ऊनम्=कमजोर को । न बबाधे=नहीं सताया ॥१४॥

हिन्दी—प्रजा की रक्षा करने वाले उस राजा दिलीप के वन में प्रवेश करने पर वन की अग्नि वर्षा के बिना ही शान्त हो गई । वन में फलों और पुष्पों की विशेष वृद्धि हुई । वन्य जीवों में अधिक शक्तिशाली भी कम शक्ति वाले जानवरों को कष्ट नहीं दिया ॥१४॥

समास—फलपुष्पवृद्धिः=फलानि च पुष्पाणि च (द्वन्द्व) तेषाम् वृद्धिः (षष्ठीतत्पुरुष) । दवाग्निः=दवस्य अग्निः (षष्ठी तत्पुरुष) ॥१४॥

व्याकरण—वृष्टया विना=विना के योग में तृतीया विभक्ति । विशेषा=वि+शिष्+घञ्+टाप् । शशाम=शम्+लिट् लकार प्र० पु० ए० वच० । आसीत्=अस्+लुङ् प्र० पु० ए० वच० । बबाधे=बाध्+लिट् प्र० पु० ए० वच० ॥१४॥

विशेष—राजा दिलीप अत्यन्त प्रभावशाली थे, उनके प्रभाव को जड़ और चैतन्य सभी स्वीकार करते थे, उनके वन में प्रवेश करते ही यद्यपि वर्षा नहीं हुई थी, फिर भी वन की अग्नि शान्त हो गई । वृक्ष फल-पुष्प अधिक मात्रा में देने लगे । सबसे विशेष बात यह हुई कि वन के हिंसक जीवों ने भी कमजोर जीवों का सताना छोड़ दिया और सब प्रेम से रहने लगे ।

उक्त श्लोक में वर्षा के बिना ही दवाग्नि का शान्त हो जाना प्रदर्शित किये जाने के कारण विभावना तथा राजा के अतिशय प्रभाव कथन के कारण उदात्तालंकार है ॥१४॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में दिन भर वन में भ्रमण करने के पश्चात् नन्दिनी के वशिष्ठाश्रम की ओर गमन का वर्णन किया जा रहा है—

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः ॥१५॥

अन्वय—पल्लवरागताम्रा पतंगस्य प्रभा मुनेः धेनुः च दिगन्तराणि संचारपूतानि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् प्रचक्रमे ॥१५॥

संस्कृतटीका—पल्लवरागताम्रा = किसलयरक्तिमा इव रक्तवर्णा, पतंगस्य = सूर्यस्य, प्रभाः = कान्तिः, मुनेः = गुरोः वशिष्ठस्य, धेनुः = नन्दिनी च, दिगन्तराणि = दिगवकाशान्, संचारपूतानि = प्रचरणेन पवित्राणि, कृत्वा = विधाय, दिनान्ते = दिवसावसाने, निलयाय = (सूर्यपक्षे) अस्ताचलाय, (धेनुपक्षे) वशिष्ठाश्रमाय, गन्तुम् = परावर्तितुम्, प्रचक्रमे = उपक्रमं कृतवान् ॥१५॥

संस्कृतभावार्थ—ईषद्रक्तवर्णा सूर्यस्य कान्तिः तथा मुनेः धेनुः नन्दिनी च सायंकाले स्व-स्वनिलयाय गन्तुम् उपक्रमं कृतवान् । अर्थात् सूर्यस्य कान्तिः अस्ताचलं गन्तुम् उद्यता अभवत्, गौः च वशिष्ठाश्रमं प्रति गन्तुम् उद्यता अभवत् ॥१५॥

शब्दार्थ—पल्लवरागाताम्रा = नवपल्लव के समान लाल । पतंगस्य = सूर्य की । प्रभा = कान्ति । मुनेः = वशिष्ठ की । धेनुः = गाय । दिगन्तराणि = दिशाओं को । सञ्चारपूतानि = अपने गमन से पवित्र । कृत्वा = करके । दिनान्ते = सन्ध्या के समय । निलयाय = स्थान अर्थात् अस्ताचल और आश्रम । गन्तुम् = जाने के लिये । प्रचक्रमे = प्रस्तुत हुए ॥१५॥

हिन्दी—पल्लवों की रक्तिमा के समान स्वल्प रक्तवर्ण वाली सूर्य की कान्ति और मुनि वशिष्ठ की धेनु नन्दिनी ने दिन भर दिशाओं के मध्य भाग को अपने विचरण से पवित्र कर सायंकाल स्वगृह अर्थात् वशिष्ठाश्रम को जाने के लिए उद्यत हुई ॥१५॥

समास—संचारपूतानि = संचारेण पूतानि (तृतीया तत्पुरुष) । दिगन्तराणि = दिशाम् अन्तराणि (षष्ठी तत्पुरुष) । पल्लवरागताम्रा = पल्लवस्य रागः (षष्ठीतत्पुरुष) पल्लवराग इव ताम्रा (उपमित समास) । दिनान्ते = दिनस्य अन्ते (षष्ठीतत्पुरुष) ॥१५॥

व्याकरण—संचार = सम् + चर् + घञ् । पूतानि = पू + क्त । कृत्वा = कृ + क्त्वा । गन्तुम् = गम् + तुमुन् । राग = रञ्ज + घञ् ॥१५॥

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में वशिष्ठ की धेनु नन्दिनी का रंग लाल बताया गया है । कहा गया है कि अस्त होते हुए सूर्य की कान्ति कोपलों के रंग के

समान स्वल्प रक्त वर्ण की होती है तथा वशिष्ठ की धेनु का रंग भी ऐसा ही है। जिस प्रकार सायंकाल सूर्य की उपर्युक्त प्रभा अस्ताचल को जाती है उसी प्रकार शाम को नन्दिनी भी वशिष्ठाश्रम को चलने लगी।

उक्त श्लोक में सूर्यप्रभा और नन्दिनी दोनों का ही वर्णन है। दोनों के मध्य स्वनिलयगमनरूप एक क्रियारूप धर्म सम्बन्ध है अत: तुल्ययोगिता अलंकार है। साथ ही 'प्रतंगस्य प्रभा' तथा 'मुने: धेनु:' दोनों की एक ही क्रिया "गन्तुं प्रचक्रमे" कथन किये जाने के कारण दीपक अलंकार भी है। उपमा तो अपने स्वाभाविक रूप में ही है। पल्लवरागताम्रा में पल्लव उपमान, गाय उपमेय, रक्त वर्ण होना साधारण धर्म है। वाचक शब्द न होने के कारण वाचकलुप्ता उपमा है ॥१५॥

प्रसंग—सायंकाल होने पर नन्दिनी जब आश्रम को लौट रही थी और राजा उसके पीछे लौट रहे थे, उस समय का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपाल:।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षात् विधिनोपपन्ना ॥१६॥

अन्वय—मध्यमलोकपाल: देवतापित्रतिथिक्रियार्थाम् ताम् अन्वग् ययौ। सतां मतेन तेन उपपन्ना सा विधिना साक्षात् श्रद्धा इव बभौ ॥१६॥

संस्कृतटीका—मध्यमलोकपाल:=पृथ्वीलोकरक्षक:, दिलीप:, देवतापित्र-तिथिक्रियार्थाम्=सुरपित्रभ्यागतार्थंप्रयोजनकाम्, ताम्=नन्दिनीम्, अन्वग् अनुपदं, ययौ=जगाम। सताम्=सज्जनानाम्, मतेन=सम्माननीयेन, तेन= राज्ञा दिलीपेन, उपपन्ना=युक्ता, सा=नन्दिनी, विधिना=धर्मानुष्ठानेन, साक्षात्=प्रत्यक्षभूता, श्रद्धा=भक्ति:, इव=यथा, बभौ=शुशुभे ॥१६॥

संस्कृतभावार्थ—पृथ्वीपालक: राजा दिलीप: यदा वशिष्ठाश्रमं प्रति निवर्तमानां देवपित्रतिथिकार्यसाधिकां नन्दिनीम् अनुययौ तदा सज्जनपुरुष-सम्माननीयेन तेन राज्ञादिलीपेन अनुगता सा धेनु: तथैव शोभिता यथा धर्मानुष्ठानेन संगता प्रत्यक्षश्रद्धा शोभते ॥१६॥

शब्दार्थ—मध्यमलोकपाल:=पृथ्वीपालक राजा दिलीप। देवतापित्रतिथि-क्रियार्थाम्=देवता पितर और अतिथियों के कार्य के लिए। अन्वक्=पीछे-पीछे। ययौ=चले। सतां मतेन=सज्जनों से पूजित। तेन=दिलीप ने।

विधिना=विधिपूर्वक धर्मानुष्ठान से। उपपन्न=युक्त। बभौ=सुशोभित हुई ॥१६॥

हिन्दी—पृथ्वीलोक का पालन करने वाले राजा दिलीप ने देवताओं, पितरों और अभ्यागतों के लिए किये जाने वाले यज्ञ आदि कार्यों को पूर्ण करने वाली उस नन्दिनी का अनुगमन किया। सज्जनों द्वारा सम्मानित राजा दिलीप से अनुगमन किये जाने पर वह नन्दिनी सज्जनों द्वारा अनुमोदित तथा शास्त्रानुष्ठान से युक्त साक्षात् श्रद्धा के समान शोभायमान हो रही थी ॥१६॥

समास—देवतापित्रतिथिक्रियार्थाम्=देवताश्च, पितरश्च अतिथयश्च (द्वन्द्वसमास) देवतापित्रतिथीनां क्रियाः (षष्ठीतत्पुरुष) देवतापित्रतिथिक्रियाः एव अर्थाः यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। मध्यमलोकपालः=मध्यमश्चासौ लोकः (कर्मधारय) मध्यमलोकस्य पालः (षष्ठी तत्पुरुष) ॥ १६ ॥

व्याकरण—अन्वग्=अनु+अञ्च्+क्विप्। ययौ=या+लिट् प्र० पु० ए० व०। बभौ=भा+लिट् प्र० पु० ए० व०। मतेन=मन्+क्त। उपपन्ना=उप+पद्+क्त+टाप्। ॥ १५ ॥

विशेष—नन्दिनी को गुरु वशिष्ठ के देवयज्ञ पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ की क्रियाओं को पूर्ण करने वाली कहा गया है। जिस प्रकार श्रद्धा शास्त्रोक्त विधि-विधान से युक्त होने पर शोभा को प्राप्त होती है उसी प्रकार सज्जनों से सम्मानीय राजा के द्वारा अनुगमन किये जाने पर वह नन्दिनी शोभा को प्राप्त हो रही थी।

प्रस्तुत श्लोक में राजा और गाय उपमेय, विधि और श्रद्धा उपमान, "सतां मतेन" तथा 'बभौ' साधारण धर्म एवं 'इव' उपमा का वाचक होने से पूर्णोपमा अलंकार है ॥ १६ ॥

प्रसंग—राजा सायंकाल होने पर आश्रम को लौटती हुई गाय का अनुगमन कर रहा था उस समय के वन के दृश्य का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥१७॥

अन्वयः—(स) पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ययौ ॥ १७ ॥

संस्कृत टीका—सः=राजादिलीपः, पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि=जलाशयनिर्गतशूकरसमूहानि, आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि=निवासार्थपादपाभिमुखमयूरान्। मृगाध्यासितशाद्वलानि=हरिणाधिष्ठितसस्यश्यामलानि। श्यामायमानानि=कृष्णीभूतानि, वनानि=अरण्यानि, पश्यन्=विलोकयन्, ययौ=गतवान् ॥ १७ ॥

संस्कृत भावार्थ—सः दिलीपः लघुसरोवरेभ्यः अवगाह्य विनिर्गतानि शूकरसमूहानि निवासार्थं वृक्षाभिमुखमयूराणि मृगाधिष्ठितसस्यश्यामलानि अर्थात् श्यामायामानानि वनानि विलोकयन् गामनुजगाम ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—पल्वलोतीर्णवराहयूथानि=छोटे-छोटे तालाबों से निकले हुए सुअरों के झुण्ड वाले। आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि=निवास के वृक्षों की ओर मयूरों वाले। मृगाध्यासितशालद्वलानि=हरे घास युक्त स्थानों पर बैठे हुए मृग वाले। श्यामायमानानि=श्यामवर्ण। पश्यन्=देखते हुए। ययौ=चल। ॥ १७ ॥

हिन्दी—राजा दिलीप ने छोटे छोटे जलाशयों से शूकरों के झुण्ड बाहर निकल रहे थे, सायंकाल हो जाने से मयूर अपने निवास वृक्षों की ओर जा रहे थे, हरित प्रदेशों में जहाँ हिरण बैठे हुए थे, ऐसे वनों को देखते हुये नन्दिनी का अनुगमन किया। ॥ १७ ॥

समास—पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि=पल्वलेभ्यः उत्तीर्णानि वराहाणाम् यूथानि येषु तानि (बहुव्रीहि)। आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि=आवासानां वृक्षा (षष्ठीतत्पुरुष) आवासवृक्षाणाम् उन्मुखाः बर्हिणाः येषु तानि (बहुव्रीहि)। मृगाध्यासितशाद्वलानि=मृगैः अध्यासिताः शाद्वलाः येषु तानि (बहुव्रीहि) ॥ १७ ॥

व्याकरण—उत्तीर्ण=उत+तृ+क्त। आवास=आ+वस्+घञ्। अध्यासित=अधि+आस्+णिच्+क्त। शाद्वल=शाद्+वलच्। श्यामायमान=श्याम+क्यच्+शानच्। पश्यन्=दृश्+शतृ। ययौ=या+लिट् प्र० पु० ए० वच० ॥ १७ ॥

विशेष—जब महाराज दिलीप सूर्यास्त के समय नन्दिनी के पीछे-पीछे आश्रम को लौट रहे थे उस समय सायंकाल हो जाने के कारण शूकर छोटे-छोटे तालाबों से अवगाहनकर बाहर निकल रहे थे, मयूर अपने निवासवृक्षों

को जा रहे थे, हरी-हरी घास वाले स्थानों पर हरिण बैठे हुये थे इस प्रकार राजा श्यामवर्ण वाले वनों को देख रहे थे । यहाँ कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्र उपस्थित-किया है । प्रस्तुत श्लोक में अनुप्रास अलंकार है । ॥ १७ ॥

प्रसंग—नन्दिनी एवं राजा दिलीप के आश्रम के प्रति प्रत्यावर्तन का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्द गृष्टिर्गुरुत्वाद् वपुषो नरेन्द्रः ।
उभावलचञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥१८॥

अन्वय—आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद् गृष्टिः वपुषः गुरुत्वात् नरेन्द्रः उभौ अञ्चिताभ्याम् गताभ्याम् तपोवनावृत्तिपथम् अलंचक्रतुः ॥ १८ ॥

संस्कृत टीका—आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्=ऊधसः भारस्य वहनप्रयासात् । गृष्टिः=सकृत्प्रसूता गौः नन्दिनी, वपुषः=शरीरस्य, गुरुत्वात्=आधिक्यात्, नरेन्द्रः=राजा दिलीपः, उभौ च=गौः नरेन्द्रश्च, अञ्चिताभ्याम्=दर्शनीयाभ्याम्, तपोवनावृत्तिपथम्=तपोवनप्रत्यागमनमार्गम् । अलंचक्रतुः=भूषितवन्तौ ॥ १८ ॥

संस्कृतभावार्थः—सायंकाले तपोवनान्निवर्तमाना प्रथमप्रसूता नन्दिनी ऊधसः भारोद्वहनप्रयासात् मन्दगमना आसीत् । राजा दिलीपश्च स्वकीयशरीरस्य स्थौल्यकारणवशात् मन्दं मन्दमनुसरतिस्म । एवं तौ नन्दिनीदिलीपौ दर्शनीयगतिभ्यां तपोवनप्रत्यावर्तनमार्गं भूषितवन्तौ ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—गृष्टिः=एकबार की व्याई हुई गाय । आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्=मोटे थनों के भार को वहन करने के प्रयास के कारण । वपुः=शरीर के गुरुत्वात्=भारी (स्थूल) होने के कारण । उभौ=राजा और गाय दोनों । अञ्चिताभ्याम्=सुन्दर । गताभ्याम्=गतियों से । तपोवनावृतिपथम्=तपोवन के लौटने के रास्ते को । अलञ्चक्रतुः=अलंकृत किया ॥ १८ ॥

हिन्दी—मोटे स्तनों के भार को वहन करने वाली प्रथमवार ही व्याई हुई नन्दिनी ने और अपने शरीर के विशाल होने के कारण राजा दिलीप इस प्रकार दोनों ने ही अपने मन्द-मन्द सुन्दर गमन के द्वारा तपोवन से लौटने के मार्ग को सुशोभित किया ॥ १८ ॥

समास—आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्=आपीनस्य भारस्य उद्वहनस्य प्रयत्नात् (षष्ठीतत्पुरुष)। तपोवनावृत्तिपथम्=तपोवनात् आवृत्तेः पन्थाः तम् (षष्ठीतत्पुरुष) नरेन्द्रः=नराणां इन्द्रः=(षष्ठीतत्पुरुष)॥ १८॥

व्याकरण—उद्वहन=उद्+वह्+ल्युट् (अन)। गुरुत्वात्=गुरु+त्व। अञ्चित=अञ्च्+क्तः। आवृत्ति=आ+वृत्+क्तिन्। अलंचक्रतुः=अलम्+कृ+लिट् प्र० पु० द्विवचन॥ १८॥

विशेष—संध्या समय तपोवन से लौटते हुए नन्दिनी एवं राजा दिलीप दोनों ही मन्द-मन्द गमन कर रहे थे। नन्दिनी का स्तन स्थूल था। अतएव वह उसके भार को वहन करने के प्रयत्न के कारण मन्द-मन्द गमन कर रही थी। राजा दिलीप शरीर की स्थूलता के कारण मन्द-मन्द चल रहे थे। अतः वे दोनों अपनी-अपनी मन्द-मन्द दर्शनीय चालों से तपोवन से लौटने के मार्ग को सुशोभित कर रहे थे।

प्रस्तुत श्लोक में प्राकृतिक दृश्य के साथ ही नन्दिनी के सुन्दर मन्द गमन का चित्र अनुप्रास अलंकार के माध्यम से खींचा गया है॥१८॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में गोसेवापरायण राजा दिलीप का गाय का अनुगमन करते हुये आश्रम पर लौटना तथा सुदक्षिणा द्वारा स्वागत किया जाना वर्णित है—

वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्॥१९॥

अन्वय—वशिष्ठधेनोः अनुयायिनम् वनान्तात् आवर्तमानम् वनिता निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः उपोषिताभ्याम् लोचनाभ्याम् इव पपौ॥१९॥

संस्कृत टीका—वशिष्ठधेनोः=गुरुधेनोः नन्दिन्याः। अनुयायिनम्=अनुगमनकर्तारम्, वनान्तात्=अरण्यप्रदेशात्, आवर्तमानम्=प्रत्यागतम्, तम्=राजानं दिलीपम्। वनिता=राज्ञी सुदक्षिणा, निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः=निमीलनेषु मन्दनेत्रलोमराजिः। लोचनाभ्याम्=नेत्राभ्याम्, उपोषिताभ्याम्=अतितृषिताभ्याम्, इव=यथा। पपौ=अपिबत्॥१९॥

संस्कृत भावार्थ—सायंकाले नन्दिनीमनुसरन् राजा दिलीपः वनप्रदेशात् वशिष्ठाश्रमं प्रति आजगाम तदा राज्ञी सुदक्षिणा निर्निमेषेण दृशा तं सतृष्णं दृष्टवती। यथा कश्चित् उपोषितः जनः व्रतान्ते अधिकाधिकजलं पिबन्नपि

तृप्तो न भवति, तथैव महिषी सुदक्षिणा अपि स्वपतिं विलोकयन्ती तृप्तिं न भेजे ॥१६॥

शब्दार्थ—वसिष्ठधेनोः=वशिष्ठ के गाय के। अनुयायिनम्=पीछे-पीछे गमन करने वाले। वनान्तात्=वन के बीच से। आवर्तमानम्=लौटते हुए। तम्=राजा दिलीप को। वनिता=पत्नी सुदक्षिणा। निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः=निर्निमेष दृष्टि से। उपोषिताभ्याम्=उपवास किये हुये। लोचनाभ्याम्=नेत्रों से। पपौ=पान किया ॥१६॥

हिन्दी—वशिष्ठ जी की गाय नन्दिनी का अनुगमन करने वाले और तपोवन से लौटे हुए महाराज दिलीप को रानी सुदक्षिणा ने अपलक नेत्र होकर उपवास किये हुए के समान सतृष्ण दृष्टि से देखा ॥१६॥

समास—निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः=निमेषेषु अलसा पक्ष्मणां पंक्तिः यस्याः सा (बहुव्रीहि) ॥१६॥

व्याकरण—अनुयायिनम्=अनु+या+णिनि। आवर्तमानम्=आ+वृत्+शानच्। निमेष=नि+मिष्+घञ्। पंक्ति=पञ्च्+ति। उपोषितः=उप+वस्+क्त। लोच्+ल्युट् (अन) ॥१६॥

विशेष—सायंकाल महाराज दिलीप जब गाय के साथ वन से लौटे तब सुदक्षिणा ने उनको निर्निमेष दृष्टि से देखा। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि नेत्र मानो उपवास किये हुये थे। जिस प्रकार उपवास करने वाला व्यक्ति जल को विशेष रुचि से पीता है। फिर भी तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार सुदक्षिणा ने भी दिन भर दिलीप को नहीं देखा था मानो उसके नेत्र दिन भर उपवास करते रहे और सायंकाल जब राजा दिलीप लौटे तो राजा को सतृष्ण नेत्रों से देखते अघाई नहीं ॥१६॥

प्रसंग—रानी सुदक्षिणा के राजा के स्वागत के पश्चात् नन्दिनी और राजा दिलीप के बीच में स्थित नन्दिनी की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥२०॥

अन्वय—वर्त्मनि पार्थिवेन पुरस्कृता पार्थिवधर्मपत्न्या प्रत्युद्गता सा धेनुः तदन्तरे दिनक्षपामध्यगता सन्ध्या इव विरराज ॥२०॥

संस्कृतटीका—वर्त्मनि=मार्गे, पार्थिवेन=राज्ञा दिलीपेन, पुरस्कृता=अग्रतःकृता। पार्थिवधर्मपत्न्या=राज्ञःदिलीपस्य भार्यया सुदक्षिणया, प्रत्युद्गता=स्वागतार्थं प्रत्युद्गम्य आदृता, सा धेनुः=नन्दिनी, तदन्तरे=सुदक्षिणा-दिलीपयोर्मध्ये, दिनक्षपामध्यगता=दिनरात्रिमध्यप्राप्ता। सन्ध्या=सायंकाल, इव=यथा। विरराज=शोभितवती ॥२०॥

संस्कृत भावार्थ—तपोवनात्प्रत्यावर्तमाना नन्दिनी राज्ञा दिलीपेन अग्रतः कृता आसीत् राज्ञः पत्नी सुदक्षिणा च स्वागतार्थं प्रत्युद्गता आसीत्। एवं तयोः मध्ये सा धेनुः एवम् विरराज, यथा दिनरात्रिमध्यगता सन्ध्या शोभते ॥२०॥

शब्दार्थ—वर्त्मनि=रास्ते में। पार्थिवेन=राजा के द्वारा। पुरस्कृता=आगे की गयी। पार्थिवधर्मपत्न्या=राजा की पत्नी सुदक्षिणा के द्वारा। प्रत्युद्गता=अगवानी की गयी। सा धेनुः=वह नन्दिनी गाय। तदन्तरे=राजा और रानी के बीच में। दिनक्षपामध्यगता=दिन और रात के बीच में। विरराज=सुशोभित हुई ॥२०॥

हिन्दी—तपोवन से लौटने के रास्ते में नन्दिनी राजा के द्वारा आगे की गई और रानी सुदक्षिणा के द्वारा स्वागतार्थ अगवानी की गई वह उन दोनों के मध्य दिन और रात्रि के मध्य सन्ध्या के समान सुशोभित हुई ॥२०॥

समास—पार्थिवधर्मपत्न्या=पार्थिवस्य धर्मपत्नी तया (षष्ठीतत्पुरुष)। दिनक्षपामध्यगता=दिनं च क्षपा च (द्वन्द्व) तयोः मध्यगता (षष्ठीतत्पुरुष) तदन्तरे=तयोः अन्तरे (सप्तमी तत्पुरुष) ॥२०॥

व्याकरण—पुरस्कृता=पुरस्+कृ+क्त+टाप्। वर्त्मनि=वृत्+मनिन्। पार्थिवः=पृथिवी+अण्। प्रत्युद्गता=प्रति+उद्+गम्+क्त+टाप्। विरराज=वि+राज्+लिट् प्र० पु० ए० वच० ॥२०॥

विशेष—वन से लौटते हुये राजा के आगे नन्दिनी थी और रानी सुदक्षिणा द्वारा अगवानी की जा रही थी इस प्रकार दोनों के मध्य लालरंग वाली नन्दिनी ऐसी शोभा पा रही थी मानो दिन और रात्रि के मध्य सन्ध्या हो।

प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार में लिंग व वर्ण साम्य स्थापित किया गया है। राजा को दिन के समान कान्ति वाला तथा रानी को रात्रि की समान कान्ति वाली कहा गया है। राजा को पुंल्लिग से और रानी को स्त्रीलिंग से

साम्य स्थापित किया है। नन्दिनी को भी स्त्रीलिंग लालसन्ध्या के समान कहा गया है ॥२०॥

प्रसंग—तपोवन से लौटने वाले राजा एवं नन्दिनी का स्वागत कर सुदक्षिणा द्वारा नन्दिनी की पूजा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं ताम् सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः श्रृंगान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥२१॥

अन्वय—साक्षतपात्रहस्ता सुदक्षिणा पयस्विनीम् ताम् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च अर्थसिद्धेः द्वारम् इव अस्याः विशालम् श्रृंगान्तरम् आनर्च ॥२१॥

संस्कृत टीका—साक्षतपात्रहस्ता=अक्षतपात्रं हस्ते गृहीत्वा, सुदक्षिणा=राज्ञःदिलीपस्य धर्मपत्नी । पयस्विनीम्=उत्तमदुग्धाम्, ताम्=नन्दिनीम्, प्रदक्षिणीकृत्य=परिक्रम्य, प्रणम्य च=नमस्कृत्य, च, अस्याः=नन्दिन्याः । विशालम्=विस्तीर्णम् । श्रृंगान्तरम्=विषाणमध्यम्, । अर्थसिद्धेः=सन्ततिप्राप्तिरूपप्रयोजनपूर्तेः । द्वारम्=कारणम्, इव=यथा, आनर्च=पूजयामास ॥२१॥

संस्कृत भावार्थ—राज्ञा दिलीपेन युक्ता नन्दिनी तपोवनात् यदा वशिष्ठाश्रमं प्रत्यागता तदा सुदक्षिणा अक्षतयुक्तं पात्रं हस्तयोर्गृहीत्वा उत्तमदुग्धप्रदायिनीम् तां प्रदक्षिणीकृत्य तथा प्रणम्य च तस्याः विस्तृतं श्रृंगयोर्मध्यभागं स्वसन्तानप्राप्तिरूपकार्यसिद्धेः द्वारम् इव पूजयामास ॥२१॥

शब्दार्थ—साक्षतपात्रहस्ता=चावलयुक्त पात्र हाथ में ली हुई । पयस्विनीम्=प्रशस्त दूध देने वाली । प्रदक्षिणीकृत्य=परिक्रमा करके । प्रणम्य=प्रणाम करके । अर्थसिद्धेः=कार्यसिद्धि के । द्वारमिव=प्रवेश द्वार के समान । शृंगान्तरम्=सीगों के बीच मस्तक की । आनर्च=पूजा की ॥२१॥

हिन्दी—अक्षत युक्त पात्र को हाथ में ग्रहण किये हुये रानी सुदक्षिणा ने उत्तम दुग्ध देने वाली उस नन्दिनी की परिक्रमा की और प्रणाम करके पुनः नन्दिनी के विशाल सीगों के मध्य भाग को अपने लिये पुत्रप्राप्ति का द्वार मान कर पूजन किया ॥२१॥

समास—श्रृंगान्तरम्=श्रृंगयोः अन्तरम् (षष्ठीतत्पुरुष) । अर्थसिद्धेः=अर्थस्य सिद्धेः (षष्ठीतत्पुरुष) । साक्षतपात्रहस्ता=अक्षतैः सह (अव्ययीभाव) साक्षतं पात्रं हस्ते यस्या सः (वहुव्रीहि) ॥२१॥

व्याकरण=प्रदक्षिणीकृत्य=प्रदक्षिणा+च्वि+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। पयस्विनीम्=पयस्+विनि+ङीप्। प्रणम्य=प्र+नम्+क्त्वा (ल्यप्)। आनर्च=अर्च्+लिट्—प्र० पु० ए० वच० ॥२१॥

विशेष—तपोवन से नन्दिनी के वापिस आने पर सुदक्षिणा ने उस गाय की परिक्रमा तथा नमस्कार किया। तदुपरान्त उसके विशाल शृंगों के मध्य भाग अर्थात् मस्तक को यह मानकर पूजा की मानो यही उसकी सन्तान-प्राप्ति का मुख्य हेतु है।

प्रस्तुत श्लोक में सुदक्षिणा ने नन्दिनी के मस्तक की पूजा की जो कि मानो उसकी सन्तान प्राप्ति का कारण था। इस प्रकार ऋगान्तर में अर्थसिद्धि के द्वार की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥२१॥

प्रसंग—रानी सुदक्षिणा के उस नन्दिनी का पूजन करने के पश्चात् नन्दिनी के द्वारा पूजा को स्वीकार किये जाने का वर्णन करते हुए कहते हैं—

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यगृहीत्सेति ननन्दतुस्तौ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥२२॥

अन्वयः—सा वत्सोत्सुका अपि स्तिमिता सती सपर्यां प्रत्यग्रहीत् इति तौ ननन्दतुः। हि भक्त्या उपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिन्हानि पुरःफलानि ॥२२॥

वत्सोत्सुका अपि सा
सपर्या
स्वामि
सती
प्रत्यगृहीत्

संस्कृत टीका—सा=नन्दिनी। वत्सोत्सुकापि=वत्सोकण्ठितापि। स्तिमिता=निश्चला सती, सपर्या=पूजा, प्रत्यग्रहीत्=स्वीचकार। इति=अस्माद्धेतोः। तौ=सुदक्षिणादिलीपौ, ननन्दतुः=प्रसन्नौ बभूवतुः। हि=यतः भक्त्या=श्रद्धया, उपपन्नेषु=अनुरागयुक्तेषु, तद्विधानाम्=नन्दिनीसदृशानाम् प्रसादचिन्हानि=प्रसन्नतालक्षणानि, पुरःफलानि=अविलम्ब एव भक्तेभ्य शुभफलप्रदायकानिसन्ति ॥२२॥

संस्कृत भावार्थ—तपोवनात् प्रत्यागता वशिष्ठधेनुः यद्यपि स्वार्भकस्य कृते दर्शनोत्सुका आसीत् तथापि सुदक्षिणया कृता पूजा तया आनन्देन स्वीकृता। पूजां गृहीतायाम् सत्याम् सुदक्षिणादिलीपौ परमानन्दमयौ जातौ। पूजनीयेषु अनुरागयुक्तेषु जनेषु नन्दिनीसदृशानाम् प्रसन्नतायाः लक्षणानि अविलम्बसन्ततिरूपाभीष्टफलप्रदायकानि सन्ति ॥२२॥

शब्दार्थ—वत्सोत्सुकापि=बछड़े के लिए उत्सुक। स्तिमिता=निश्चल।

सपर्याम्=पूजा को। प्रत्यग्रहीत्=स्वीकार किया। ननन्दतुः=प्रसन्न हुए। भक्त्या=श्रद्धा से। उपपन्नेषु=युक्त। तद्विधानाम्=उस प्रकार के। प्रसाद-चिन्हानि=प्रसन्नता के चिह्न। पुरःफलानि=शीघ्र फल देने वाले हैं ॥२२॥

हिन्दी—बछड़े के लिये विशेष उत्कण्ठित होते हुए भी उस नन्दिनी ने रानी सुदक्षिणा की पूजा को शान्त एवं निश्चल भाव से स्वीकार किया। पूजा को ग्रहण करने के कारण राजा रानी दोनों प्रसन्न हुए। क्योंकि पूजनीयों के प्रति अनुरागपूर्ण जनों के विषय में नन्दिनी सदृश महात्माओं के प्रसन्नता के लक्षण शीघ्र ही सन्तानरूप फलप्राप्ति के सूचक होते हैं ॥२२॥

समास—वत्सोत्सुका=वत्से उत्सुका: (सप्तमीतत्पुरुष)। प्रसादचिन्हानि=प्रसादस्य चिन्हानि (षष्ठीतत्पुरुष)। पुरःफलानि=पुरोगतानि फलानि येषां तानि (बहुव्रीहि) ॥२२॥

व्याकरण—भक्त्या=भज्+क्तिन्। उपपन्न=उप+पद्+क्त। प्रसाद=प्र+सद्+घञ्। प्रत्यग्रहीत्=प्रति+ग्रह्+लुङ् प्र० पु० ए० वच०। ननन्दतुः=नन्द्+लिट् प्र० पु० द्वि० वच० ॥२२॥

विशेष—दिन भर तपोवन में रहने के पश्चात् घर को लौटने वाली नन्दिनी यद्यपि अपने बछड़े के लिये विशेष उत्कण्ठित थी। परन्तु उसने रानी सुदक्षिणा की पूजा को निश्चल भाव से स्वीकार किया। नन्दिनी द्वारा पूजा को शान्त भाव से स्वीकार कर लेने पर राजा रानी अत्यधिक प्रसन्न हुए क्योंकि राजा रानी ने यह समझ लिया कि नन्दिनी शीघ्र ही प्रसन्न होकर हमको पुत्र रूप वर प्रदान करेगी। यह भी एक तथ्य है कि कोई महान् विभूति यदि शीघ्र ही प्रजा को स्वीकार करे तो शीघ्र ही कल्याण होगा। अतः अपने से महान् में श्रद्धा रखना कल्याणकारी है।

प्रस्तुत श्लोक में भक्ति से प्रसन्न होने वाली नन्दिनी की कृपा शीघ्र ही सन्तानरूप फल की देने वाली होगी इस विशेष का समर्थन नन्दिनी जैसी महान् विभूतियों की कृपा शीघ्र ही मनोरथों को पूर्ण करती है इस सामान्य के द्वारा किये जाने के कारण "अर्थान्तरन्यास" अलंकार है ॥२२॥

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक में नन्दिनी की सेवा करने के पश्चात् सान्ध्यविधि एवं गुरु की सुश्रूषा के बाद पुनः नन्दिनी की सेवा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सान्ध्यं च विधिं दिलीपः ।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥२३॥

अन्वय—भुजोच्छिन्नरिपुः दिलीपः सदारस्य गुरोः पादौ निपीड्य सान्ध्यम् विधिं च समाप्य दोहावसाने निषण्णाम् दोग्ध्रीम् पुनः एव भेजे ॥२३॥

संस्कृतटीका—भुजोच्छिन्नरिपुः=बाहुभ्यां विनाशितशत्रुः, दिलीपः= पृथिवीपतिः । सदारस्य=भार्यासहितस्य, गुरोः=वशिष्ठस्य, पादौ=चरणौ, निपीड्य=सम्मर्द्य, सान्ध्यम्=सायकालिकम्, विधिम्=क्रियाम्, च, समाप्य= पूर्णं कृत्वा, दोहावसाने=दुग्धदोहनान्ते, निषण्णाम्=उपविष्टाम्, दोग्ध्रीम्= दोनशीलाम् नन्दिनीम्, पुनः=एव, भेजे=सेवितवान् ॥२३॥

संस्कृतभावार्थ—बाहुबलेन नाशितशत्रुसमूहः राजादिलीपः भार्ययायुक्तस्य- गुरोः वशिष्ठस्य पादौ निपीड्य, तत्पश्चात् स्वकीयंशास्त्रोदितं सायकालिकं कृत्यं दोहनक्रियायाः समाप्त्यनन्तरं सुखोपविष्टां तां नन्दिनीं पुनः सेवितवान् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—भुजोच्छिन्नरिपुः=भुजाओं से शत्रुओं का संहार करने वाले । सदारस्य=स्त्री के साथ । गुरोः=वसिष्ठ के । पादौ निपीड्य=चरणों को दबाकर अर्थात् चरण छूकर । सान्ध्य विधिम्=सायंकालीन विधि को । समाप्य=समाप्त करके । दोहावसाने=दुह लेने के बाद । निषण्णाम्=बैठी हुई । दोग्ध्रीम्=दूध देने वाली नन्दिनी को । भेजे=सेवा की ॥२३॥

हिन्दी—अपनी बाहुओं से शत्रुओं का नाश करने वाले राजा दिलीप ने पत्नी सहित गुरु वशिष्ठ के चरणों को दबाकर तत्पश्चात् अपने सन्ध्यावन्दनादि क्रियाओं को समाप्त कर दूध दुहने के पश्चात् सुखपूर्वक बैठी हुई अत्यधिक दूध देने वाली उस नन्दिनी की पुनः सेवा की ॥२३॥

समास—दोहावसाने=दोहस्य अवसाने (षष्ठीतत्पुरुष) । भुजोच्छिन्नरिपुः= भुजाभ्यां उच्छिन्ना रिपवः येन स (बहुव्रीहि) ॥३२॥

व्याकरण—निपीड्य=नि+पीड्+क्त्वा (ल्यप् । समाप्य=सम्+ आप्+क्त्वा+ल्यप् । विधिम्+वि+धा+कि । अवसान=अव+सो+ल्युट् (अन) । निषण्णाम्=नि+षद्+क्त+टाप् । भेजे=भज्+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥२३॥

विशेष—गाय की सेवा करने के पश्चात् राजा दिलीप ने गुरु एव गुरु पत्नी के चरणों को दबाया। उसके बाद सन्ध्यावन्दनादि अपने नित्य कृत्यों को किया। तदन्तर दुहने के पश्चात् बैठी हुई उस नन्दिनी की पुनः सेवा प्रारम्भ करदी। राजा किसी अन्य कार्य में नहीं लगे क्योंकि उस समय उन्हें केवल गोसेवा ही अच्छी लगती थी अन्य कार्यों से चित्त को उन्होंने हटा लिया था ॥२३॥

प्रसंग—राजा दिलीप गाय की सेवा में तत्पर हो गये इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तामन्तिकन्यस्तवलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥२४॥

अन्वय—गृहिणीसहायः गोप्ता अन्तिकन्यस्तवलिप्रदीपाम् ताम् अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनुसंविवेश, प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदतिष्ठत् ॥२४॥

संस्कृतटीका—गृहिणीसहायः=सपत्नीकः, गोप्ता=रक्षकः, अन्तिकन्यस्तवलिप्रदीपाम्=समीपस्थापितपूजादीपाम्, ताम्=नन्दिनीम् अन्वास्य=पश्चादुपविश्य, क्रमेण=अनुक्रमेण, सुप्ताम्=निद्रिताम्, अनु=पश्चात्, संविवेश=सुष्वाप, प्रातः=प्रभातकाले, सुप्तोत्थिाम्=शमितविनिद्रिताम्, अनु=पश्चात्, उदतिष्ठत्=उत्थितवान् ॥२४॥

संस्कृतभावार्थ—सुदक्षिणया सह राजा दिलीपः नन्दिन्या समीपे पूजासामग्रीस्वरूपदीपकं संस्थाप्य उपविष्टवान् । तत्पश्चात् नन्दिनींसुप्तायां राजाऽपि शयनं कृतवान् । प्रातःकाले नन्दिनी यदा सुप्त्वा उत्थितवती तदा दिलीपोऽपि उत्थितवान् । एवं राज्ञा तस्या सेवा कृता ॥२४॥

शब्दार्थ—गृहिणीमहायः=पत्नी के साथ। अन्वास्य=पीछे बैठ करके। सुप्ताम्=सो जाने पर। अनुसंविवेश=पीछे सोये। सुप्तोत्थिताम्=सोकर उठने के बाद ॥२४॥

हिन्दी—रानी सुदक्षिणा सहित प्रजारक्षक राजा दिलीप नन्दिनी के पास पूजा सामग्री दीपकादि को रख कर बैठ गये। गाय के सोने पर राजा सोये और प्रातःकाल गाय के जागने पर राजा जागे ॥२४॥

समास— अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपाम् = अन्तिके न्यस्ताः बलिप्रदीपाः यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि) गृहिणीसहायः = गृहिणी सहायः यस्य सः (बहुव्रीहि) ॥२४॥

व्याकरण—न्यस्त = नि + अस् + क्त । अन्वास्य = अनु + आस् + क्त्वा । (ल्यप्) । गोप्ता = गुप् + तृच् । सुप्ताम् = स्वप् + क्त + टाप् । उत्थिता = उद् + स्था + क्त + टाप् । संविवेश = सम् + विश् + लिट् प्र० पु० ए० वच० । उदतिष्ठत् = उद् + स्था + लङ् प्र० पु० ए० व० । ॥२४॥

विशेष— पत्नी के साथ राजा दिलीप ने गाय की सेवा की। वे गाय के पास पूजन की सामग्री तथा दीपक आदि रखकर स्वयम् उसके पास बैठ गये और गाय के सो जाने पर वे सो गये और जब वह सोकर उठी तब वे भी जाग गये। प्रस्तुत श्लोक में राजा द्वारा गाय की सेवा का वर्णन किया गया है ॥२४॥

प्रसंग—रानी सुदक्षिणा के साथ राजा दिलीप को उक्त प्रकार से सेवा करते हुए इक्कीस दिन व्यतीत हो गये इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः ।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥२५॥

अन्वयः—महिष्या समम् प्रजार्थम इत्थम् व्रतम् धारयतः महनीयकीर्तेः दीनोद्धरणोंचितस्य तस्य त्रिगुणानि सप्त दिनानि व्यतीयुः ॥२२॥

संस्कृतटीका—महिष्या = सुदक्षिणया, समम् = सह, प्रजार्थम् = सन्तानाय, इत्थम् = अनेन प्रकारेण, व्रतम् = नियमम्, धारयतः = आचरतः, महनीयकीर्तेः = अर्हणीयग्रयशसः, दीनोद्धरणोचितस्य = पीडितजनरक्षणतत्परस्य, तस्य = राज्ञः-दिलीपस्य, त्रिगुणानि = त्रिरावृत्तानि, सप्त = सप्तसंख्यकानि, दिनानि = दिवसानि, व्यतीयुः = व्यतीतानि ॥२५॥

संस्कृत भावार्थ—सुदक्षिणया साकं सन्तानप्राप्तये अनेन प्रकारेण व्रतमाचरतः सम्माननीयशसः पीडितजनरक्षणतत्परस्य तस्य राज्ञः दिलीपस्य एकविंशतिदिनानि व्यतीतानि ॥२५॥

शब्दार्थ—महिष्या समम् = रानी के साथ। प्रजार्थम् = सन्तान के लिए। महनीयकीर्त्तेः = महाकीर्तिशाली। दीनोद्धरणोचितस्य = दीनों के उद्धार करने में

रत । तस्य=राजा के । त्रिगुणानि सप्त=इक्कीस । व्यतीयुः=बीत गये ॥२५॥

हिन्दी—रानी सुदक्षिणा के साथ सन्तान प्राप्ति के लिये इस प्रकार व्रत को धारण किये हुये प्रशंसनीय यश वाले तथा दीनों का उद्धार करने में चित्त को लगाने वाले उस राजा दिलीप को गाय की सेवा करते हुये इक्कीस दिन व्यतीत हो गये ॥२५॥

समास—महनीयकीर्तेः=महनीया कीर्तिः यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि) । दीनोद्धरणोचितस्य दीनानाम् उद्धरणे उचितस्य (तत्पुरुष.) । त्रिगुणानि=त्रयः गुणाः येषाम् तानि (बहुव्रीहि) ।

व्याकरण—इत्थम्=इदम्+थमु । व्रतम्=वृ+अतच् । धारयतः=धृ+णिच्+शतृ । उद्धरण=उत्+हृ+ल्युट् (अन) । व्यतीयुः=वि+अति+इ+लिट् प्र० पु० वहुवच० ॥२५॥

विशेष=परमयशस्वी तथा दीनों का उद्धार करने में समर्थ राजा दिलीप को गाय की सेवा करते हुये इक्कीस दिन बीत गये ॥२५॥

प्रसंग—इसके बाद बाइसवें दिन राजा दिलीप की परीक्षा लेने के निमित्त उपाक्रम करती हुई नन्दिनी का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥२६॥

अन्वय—अन्येद्युः मुनिहोमधेनुः आत्मानुचरस्य भावम् जिज्ञासमाना गंगाप्रपातान्तविरुढशपम् गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश ॥२६॥

संस्कृत टीका—अन्येद्युः=अन्यस्मिन् दिने, **मुनिहोमधेनुः**=वशिष्ठस्य होमसाधनभूता गौः, आत्मानुचरस्य=स्वसेवकस्य, भावम्=अभिप्रायम्, जिज्ञासमाना=ज्ञातुमिच्छन्ती, गंगाप्रपान्तविरूढशष्पम्=भागीरथीप्रपान्ते समुत्पन्नघासम्, गौरीगुरोः=पर्वत्याः, जनकस्य=हिमालयस्य, गह्वरम्=गुहाम्, आविवेश=प्रविष्टा अभवत् ॥२६॥

संस्कृत भावार्थ—द्वाविंशतितमे दिवसे नन्दिनी राज्ञः दिलीपस्य सेवाभावं जिज्ञासमाना गंगायाः प्रवाहसमीपे समुत्पन्नघासयुतां हिमालस्य कन्दरां प्राविशत् ॥२६॥

शब्दार्थ—अन्येद्युः=दूसरे दिन। मुनिहोमधेनुः=मुनि वसिष्ठ की गाय नन्दिनी। आत्मानुचरस्य=अपने अनुचर दिलीप के। भावम्=अभिप्राय को। जिज्ञासमाना=जानने की इच्छा रखती हुई। गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम्=गङ्गा के प्रपात के समीप उगी हुई छोटी-छोटी घासों से युक्त। गौरीगुरोः=हिमालय पर्वत को। गह्वरम्=गुफा में। आविवेश=प्रवेश कर गई ॥२६॥

हिन्दी—बाइसवें दिन वशिष्ठ के यज्ञादि कार्यों को सम्पादन करने वाली नन्दिनी राजा दिलीप के सेवाभाव को जानने की इच्छा से गङ्गा के प्रवाह के समीप उगी हुई घास युक्त हिमालय की गुफा में प्रविष्ट हो गई ॥२६॥

विशेष—राजा को जब नन्दिनी की सेवा करते हुए इक्कीस दिन बीत गये तब बाइसवें दिन राजा की सेवाभाव की परीक्षा लेने के विचार से नन्दिनी हिमालय पर्वत की गुफा में प्रवेश कर गई। प्रस्तुत श्लोक में अनुप्रास अलंकार है ॥२६॥

समास—मुनिहोमधेनुः=मुनेः होमस्य धेनुः (षष्ठीतत्पुरुष)। आत्मानुचरस्य=आत्मनः अनुचरस्य (षष्ठीतत्पुरुष)। गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम्==गङ्गायाः प्रपातान्तस्य अन्ते विरूढानि शष्पाणि यत्र तत् (बहुव्रीहि)। गौरीगुरोः=गौर्याः गुरोः (षष्ठीतत्पुरुष) ॥२६॥

व्याकरण—अन्य+एद्युस्। अनुचर=अनु+चर्+ट प्रत्यय। भावम्=भू+घञ्। जिज्ञासमाना=ज्ञा+सन्+शानच्+टाप्। प्रपात=प्र+पत्+घञ्। गह्वरम्=गह्+वरच्। आविवेश=आ+विश्+लिट् प्र० पु० एकवचन ॥२६॥

प्रसंग—इसके बाद नन्दिनी के गुफा में प्रवेश करने पर एक सिंह ने उस पर आक्रमण किया इसका वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥२७॥

अन्वय—सा हिंस्रैः मनसापि दुष्प्रधर्षा इति अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन नृपेण अलक्षिताभ्युत्पतनः सिंहः ताम् प्रसह्य चकर्ष किल ॥२७॥

संस्कृत टीका—सा=नन्दिनी। हिंस्रैः=वनजन्तुभिः। मनसापि=चित्तेनापि। दुष्प्रधर्षा=आक्रमितुमशक्या। इति=अस्मात् करणात्। अद्रि-

शोभाप्रहितेक्षणेन = पर्वतसौन्दर्यदत्तदृष्टिना । नृपेण = राज्ञा दिलीपेन । अलक्षिताभ्युत्पतनः = अदृष्टाभिमुखाक्रमणः । सिंहः = मृगराजः । ताम् = नन्दिनीम् । प्रसह्य = हठात् । चकर्ष = आकृष्टवान् । किल = निश्चयेन ॥२७॥

संस्कृत भावार्थ— नन्दिनी हिंसकजन्तुभिः मनसापि दुर्दमनीया इति चित्ते निश्चित्य राजा दिलीपः हिमालयपर्वतसौन्दर्यं विलोकयितुं तत्परोऽभवत् पर्वतशोभायां दत्तदृष्टिः राजा दिलीपः सिंहे नाक्रान्तां नन्दिनीमवलोकितवान् ॥

शब्दार्थ— हिंस्रैः = हिंसक पशुओं से । मनसा = मन से । दुष्प्रधर्षा = कठिनता से दमन के योग्य । आद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन = पर्वत की शोभा देखने में दृष्टि लगाये हुए । अलक्षिताभ्युत्पतनः = जिसका आक्रमण देखा नहीं गया । प्रसह्य = बलपूर्वक । चकर्ष = आक्रमण किया ॥२७॥

हिन्दी— नन्दिनी जंगली हिंसक सिंहादि के द्वारा अनतिक्रमणीय है यह विचारकर राजा दिलीप ने पर्वत की शोभा देखने में दृष्टि को लगाये हुए जिसका सामने आक्रमण नही देखा जा सका, ऐसे सिंह ने बलपूर्वक नन्दिनी पर आक्रमण किया ॥२७॥

विशेष— पर्वत की गुफा में नन्दिनी के प्रवेश करने पर राजा ने विचार किया कि नन्दिनी पर कोई भी हिंसक जन्तु आक्रमण करने की बात सोच भी नहीं सकता । यह विचार कर निश्चिन्त होकर वह पर्वत की शोभा को देखने लगा । तभी सिंह ने नन्दिनी पर आक्रमण किया और उसको बलपूर्वक मारने के लिए खींचने लगा । राजा पर्वत की शोभा को देखने में इतना व्यस्त रहा कि वह सिंह के आक्रमण को नहीं देख पाया ॥२७॥

समास— अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन = अद्रेः शोभायां प्रहिते ईक्षणे येनतत्तेन (बहुव्रीहि) । अलक्षिताभ्युत्पतनः = न लक्षितम् अलक्षितम्, अलक्षितम अभ्युत्पतनं यस्य सः (बहुव्रीहिः) ॥(२७)॥

व्याकरण— दुष्प्रधर्षा = दुष् + प्र + धृष् + खल् + टाप् । हिंस्रैः = हिंस् + रक्) । प्रहितः = प्र + धा + क्त । लक्षित = लक्ष् + क्त) अभ्युत्पतनः = अभि + उत् + पत् + ल्युट् (अन) । प्रसह्य = प्र + सह् + क्त्वा (ल्यप्) चकर्ष = कृष् + लिट् प्र० पु० ए० व० ॥२७॥

प्रसंग—इसके बाद नन्दिनी के उस सिंह से आक्रान्त होने पर उसके आर्तनाद से राजा का ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया—

तदीयमाक्रन्दितमार्त्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्त्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥२८॥

अन्वय—गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् तदीयम् आक्रन्दितम् आर्त्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्ताम् दृष्टिम् रश्मिषु आदाय इव निवर्त्तयामास ॥२८॥

व्याख्या— गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् = कन्दरासमुत्पन्नप्रतिध्वनिप्रवृद्धम्, तदीयम् = नन्दिन्याः, आक्रन्दितम् = आक्रन्दनम् । आर्तसाधोः = सज्जनहितकारिणः । नृपस्य = महाराजदिलीपस्य । नगेन्द्रसक्ताम् = पर्वतराजहिमालये संलग्नाम् । दृष्टिम् = ईक्षणम् । रश्मिषु इव = प्रग्रहेषु यथा । आदाय = गृहीत्वा, निवर्तयामास = प्रत्यावर्तयामास ॥२८॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः पर्वतशोभावलोकनतत्पर आसीत्, नन्दिनी च गुहायाँ प्रविष्टा आसीत् । सा सिंहस्य आक्रमणकाले आर्तशब्दं कृतवती । नन्दिन्या आर्तस्वरमाकर्ण्यं राजा झटिति स्वकीयां दृष्टिं पर्वतविलोकनात् प्रत्यावर्त्य नान्दिनीं प्रति प्रेरयामास ॥२८॥

शब्दार्थ—गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् = कन्दरा में व्याप्त प्रतिध्वनि से बढ़े हुए । तदीयम् = नन्दिनी के । आक्रन्दितम् = आर्तनाद को । आर्तसाधोः = पीड़ितों (दुःखियों) के रक्षक । नगेन्द्रसक्ताम् = पर्वत पर लगी हुई । दृष्टिम् = नेत्र को । रश्मिषु = लगामों से । आदाय = ग्रहणकर । निवर्तयमास = लौटा लिया ॥२८॥

हिन्दी—हिमालय की गुहा में टकराई हुई प्रतिध्वनि के कारण और अधिक उच्च हुए नन्दिनी के आर्तनाद से दुःखित जनों का हित करने वाले राजा दिलीप की हिमालय की शोभा को देखने में लगी दृष्टि को लगाम के समान खींचकर आकृष्ट कर लिया ॥२८॥

विशेष—परीक्षा लेने के कारण जब सिंह ने गाय को पकड़ लिया और ले चला तब नन्दिनी के आर्तनाद के कारण राजा का चित्त हिमालय की शोभा को छोड़कर एकदम नन्दिनी की ओर चला, मानो रस्सी से पकड़कर खींच ली गई हो ।

प्रस्तुत श्लोक में सम्भावना की गई है कि मानो राजा की दृष्टि को रस्सियों से बाँध कर लौटा लिया हो अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥२८॥

प्रसंग—इसके बाद राजा ने नन्दिनी के ऊपर आक्रमण किये हुए सिंह को देखा—

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥ २९ ॥

अन्वय—धनुर्धरः स पाटलायाम् गवि तस्थिवांसम् केसरिणम् सानुमतः धातुमय्याम् अधित्यकायाम् प्रफुल्लम् लोध्रद्रुमम् इव ददर्श ॥२९॥

संस्कृत टीका—धनुर्धरः=धनुर्धारकः । सः=महाराजः दिलीपः । पाटलायाम्=रक्तवर्णायाम्, गवि=नन्दिन्याम् । तस्थिवांसम् । केशरिणम्=सिंहम् । सानुमतः=पर्वतस्य, धातुमय्याम्=गौरिकादिधातुमय्याम्, अधित्यकायाम्=उच्चभूमौ । प्रफुल्लम्=विकसितम्, लोध्रद्रुमम्=विल्ववृक्षम्, इव=यथा । ददर्श=दृष्टवान् ॥२९॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः अद्रिशोभावलोकने संलग्नां स्वकीयां दृष्टिं झटिति गां प्रति प्रेरयामास । तेनावलोकितम्—यत् रक्तवर्णायां नन्दिन्यां सिंहः एवं प्रकारेण स्थितोऽस्ति । यथा पर्वतस्य धातुयुतायां अधित्यकायां विकसितं विल्ववृक्षः स्यात् ॥२९॥

शब्दार्थ—धनुर्धरः=धनुर्धारी राजा । पाटलायाम्=लाल रंग की । तस्थिवांसम्=बैठे हुये । केसरिणम्=शेर को । सानुमतः=पर्वत की । धातुमय्याम्=गौरिकादि धातुमयी । अधित्यकायाम्=उच्च भूमि पर । प्रफुल्लम्=फूले हुये । लोध्रद्रुमम्=लोध के वृक्ष को ॥२९॥ गाय

हिन्दी—धनुषधारी राजा दिलीप ने लाल रंग वाली नन्दिनी पर स्थित उस सिंह को गेरु आदि अनेक धातुओं से युक्त अधित्यका में विकसित विल्व-वृक्ष के समान देखा ॥२९॥ पर्वत की (उच्च भूमि पर)

विशेष—नन्दिनी के द्वारा परीक्षा हेतु किये जाने वाले आर्तस्वर को सुनकर राजा का ध्यान शीघ्र ही नन्दिनी की ओर गया तो उसने रक्तवर्ण वाली नन्दिनी के ऊपर सिंह को देखा । रक्तवर्ण वाली गाय के ऊपर बैठा हुआ वह केशरी ऐसा लग रहा था जैसे गेरु आदि धातुओं से युक्त अधित्यका भूमि पर खिला हुआ विल्ववृक्ष हो ।प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है ॥२९॥

व्याकरण—तस्थिवांसम् = स्था + क्वसु । केसरिणम् = केसर + इनि । अधित्यकायाम् = अधि + त्यकन् + टाप् । धातुमय्याम् = धातु + मयट् + ङीप् । प्रफुल्लम् = प्र + फुल्ल + अच् ॥२९॥

प्रसंग—उसके बाद नन्दिनी पर आक्रमण किये हुये सिंह को देखकर महाराज दिलीप अत्यन्त दुःखी हुये और उसके वध करने का उपाय सोचने लगे—

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः ॥ ३० ॥

अन्वय—ततः मृगेन्द्रगामी शरण्यः प्रसभोद्धृतारिः नृपतिः जाताभिषङ्गः सन् वध्यस्य मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात् शरम् उद्धर्तुम् ऐच्छत् ॥३०॥

संस्कृत टीका—ततः = तदनन्तरम्, मृगेन्द्रगामी = सिंहवत् गतिशीलः, शरण्यः = आर्त्तरक्षेण साधुः, प्रसभोद्धृतारिः = हठात् विनाशितशत्रुः । नृपतिः = राजा दिलीपः । जाताभिषङ्गः = अपमानेन जातखेदः, (सन्) वध्यस्य = हननयोग्यस्य । मृगेन्द्रस्य = केसरिणः । वधाय = मारणाय । निषंगात् = तूणीरात्, शरम् = बाणम् । उद्धर्तुम् = निस्सारयितुम्, ऐच्छत् = अभिलाषां कृतवान् ॥३०॥

संस्कृत भावार्थ—नन्दियामाक्रान्त सिंहं विलोक्य राजा दिलीपः क्रुद्धो भूत्वा तस्य सिंहस्य वधाय स्वनिषंगात् शरं निःसारयितुम् ऐच्छत् । राजा-दिलीपः शरणागतवत्सलः आसीत् । अतः आक्रान्तां ज्ञात्वा तत्काल एव खिन्नः जातः । सिंहस्य वधः दिलीपस्य कृते दुष्कर आसीत् ॥३०॥

शब्दार्थ—मृगेन्द्रगामी = सिंह के समान गमन करने वाला । प्रसभोद्धृतारिः = बलपूर्वक शत्रुओं का नाश करने वाला । शरण्यः = शरणागतरक्षक । जाताभिषङ्गः = अपमान का अनुभव करते हुए । वध्यस्य = मारने के योग्य । वधाय = मारने के लिये । निषङ्गात् = तूणवीर से । शरम् = बाण को । उद्धर्तुम् = निकालने के लिये । ऐच्छत् = इच्छा की ॥३०॥

हिन्दी—आक्रमण करते हुए सिंह को देखकर सिंह के समान गति वाला तथा शरणागतों की रक्षा करने में निपुण एवं बलपूर्वक शत्रुओं का नाश करने वाला राजा दिलीप गाय के ऊपर आक्रमण करने वाले सिंह के वध के लिए तरकस से बाण निकालने लगा ॥३०॥

विशेष—राजा दिलीप स्वयं की देखभाल में चरने वाली गाय के ऊपर सिंह का आक्रमण देखकर क्रुद्ध हो गया; क्योंकि वह शरणगतों के रक्षण में तत्पर था। अतः उसने गाय की रक्षा के निमित्त सिंह को मारने के लिये तरकस से बाण निकालना चाहा।

प्रस्तुत श्लोक में अभिप्राय से गर्भित विशेषणों का प्रयोग किया जाने के कारण परिकर अलंकार है। राजा को "मृगेन्द्रगामी" कहे जाने के कारण गाय पर आक्रमण करने वाले सिंह का वध करने में समर्थ है। इस प्रकार राजा का, शरण्यः, प्रसभोद्धृतारिः, और 'जाताभिषङ्गः' विशेषण भी अभिप्राय से गर्भित है। इसके अतिरिक्त यमक अलंकार भी है ॥३०॥

समास—मृगेन्द्रस्य = मृगाणाम् इन्द्रस्य (षष्ठीतत्पुरुषसमास)। मृगेन्द्रगामी = मृगेन्द्र इव गन्तुं शीलमस्य (बहुव्रीहि समास)। जाताभिषङ्गः = जातः अभिषङ्गः यस्य सः (बहुव्रीहि) ॥३०॥

व्याकरण—तद् + तसिल्। वधस्य = वध + यत ष. ए. व.। शरण्यः = शरण + यत्। उद्धर्तुम् = उत् + हृ + तुमुन्। ऐच्छत् = इष् + लङ् प्र० पु० ए० व० ॥३०॥

प्रसंग—उसके बाद आक्रमण करने वाले सिंह का वध करने की इच्छा से जब राजा ने तरकस से बाण निकालने की चेष्टा की तो राजा का हाथ ही चिपक गया। उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥३१॥

अन्वय - प्रहर्तुः तस्य वामेतरः करः नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे सायकपुङ्खे एव सक्तांगुलिः चित्रार्पितारम्भः इव अवतस्थे ॥३१॥

संस्कृत टीका - प्रहर्तुः = प्रहारं कर्तुमुद्यतस्य। तस्य = राज्ञः दिलीपस्य, वामेतरः = दक्षिणः। करः = हस्तः। नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे = करोरुहकान्तिभिरलंकृतकंकनामकपक्षिविशेषपत्रे। सायकपुंखे = वाणस्य पक्षयुक्ते प्रदेशे, एव = अवधारणे, सक्तांगुलिः = दृढ़लग्नकराग्रः। चित्रार्पितारम्भः = आलेख्य लिखितगोरक्षोद्योगः, इव = यथा, अवतस्थे = स्थितोऽभूत् ॥३१॥

संस्कृत भावार्थ—गामुपरि प्रहरणशीलं सिंहं दृष्ट्वा प्रतीकारं कर्त्तु-मुद्यतस्य राज्ञः दिलीपस्य दक्षिणहस्तः बाणस्य मूलप्रदेशे एव संलग्नो भवेत्। तदा सः चित्रलिखित इव स्थित आसीत् ॥३१॥

शब्दार्थ—प्रहर्तुः=प्रहार करने वाले। वामेतरः=बायें से भिन्न, दाहिना। करः=हाथ। नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे=नख की कान्ति से सुशोभित काक पंख वाले। सायकपुङ्खे=बाण के मूल प्रदेश में। सक्ताङ्गुलिः=चिपकी हुई अङ्गुलियों वाला। चित्रार्पितारम्भ=चित्र में लिखित बाण निकालने का प्रयास। अवतस्थे=स्थिर हो गया ॥३१॥

हिन्दी—प्रहार करने वाले महाराज दिलीप का दहिना हाथ नाखून की शोभा से सुशोभित कंङ्क पक्षी के पंख जिसमें लगे हुए हैं, ऐसे बाण के पंख से युक्त स्थान पर अंगुलियाँ लग गई हैं। इस प्रकार वह चित्र में लिखित बाण निकालने की क्रिया में संलग्न के समान हो गया था ॥३१॥

विशेष—नन्दिनी के वध में प्रवृत्त सिंह को मारने के लिये राजा ने तरकस से बाण निकालना चाहा। बाण को पकड़ने के लिये जैसे ही दाहिना हाथ डाला तो जिन बाणों पर कङ्क पक्षी के पंख लगे हुए थे, वे राजा के हाथ की अंगुलियों से शोभित हो उठे। परन्तु राजा की अंगुलियाँ वहीं पर चिपक गई। इस दशा में राजा हाथ को भी नहीं हिला सका इस कारण उस समय वह ऐसा लग रहा था। मानो किसी चित्र में बाण निकालने का उद्योग कर रहा हो।

प्रस्तुत श्लोक में राजा की अंगुलियों के बाण के मूल प्रदेश पर चिपक जाने के कारण इस उपमेय की सम्भावना की गई है कि मानो वह चित्रलिखित हो। इस कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥३१॥

समास—नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे—नखानां प्रभया भूषितम् कङ्कस्य पत्रं यस्य सः तस्मिन् (बहुव्रीहि)। सक्ताङ्गुलिः=सक्ताः अंगुलयः यस्य सः (बहुव्रीहि) सायकपुङ्खे=सायकस्य पुङ्खे (षष्ठी तत्पुरुष)। चित्रार्पितः आरम्भः यस्य सः (बहुव्रीहि) ॥३१॥

व्याकरण—करः=कृ+अप्। भूषितः=भूषा+इतच्। पत्रम्=पत्+ष्ट्रन्। सक्ताः=सञ्ज्+क्त+टाप्। सायक==सो+ण्वुल्। आरम्भ=आ+रभ्+घञ्। अवतस्थे=अव+स्था+लिट् प्र॰ पु॰ ए॰ व॰ ॥३१॥

प्रसंग—इसके बाद राजा का हाथ बाण पर चिपक जाने से स्तम्भित और क्रुद्ध स्थिति का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥३२॥

अन्वय—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः राजा मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः भोगी इव अभ्यर्णम् आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः स्वतेजोभिः अन्तः अदह्यत ॥३२॥

संस्कृत टीका—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः = दक्षिणहस्तस्य बन्धनेन विवृद्धक्रोधः । राजा = दिलीपः । मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः = विषनाशकगारुडमन्त्रौषधिभ्यां निरुद्धतेजः, भोगी इव = सर्प इव, अभ्यर्णम् = समीपस्थितम्, आगस्कृतम् = अपराधिनम्, अस्पृशद्भिः = न स्पृशद्भिः, स्वतेजोभिः = आत्मनः प्रभावैः, अन्तः = हृदयस्य मध्ये, अदह्यत = अतप्यत ॥३२॥

संस्कृत भावार्थ—तस्य राज्ञः दिलीपस्य दक्षिणहस्तः यदा बाणस्य पुङ्खप्रदेशे संलग्नो जातः, तदा सः अत्यन्तक्रुद्धोऽभवत् । यथा मन्त्रौषधिप्रभावेन निरुद्धतेजः सर्पः तप्यते, तथैव यत् अन्तिकस्थं अपराधिनं तं सिंहं व्यापादयितुमसमर्थः राजा स्वतेजोभिः स्वयमेव अतप्यत ॥३२॥

शब्दार्थ—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः = बाहुओं के रुक जाने से बढ़े हुये क्रोध वाले । मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः = मन्त्र और औषधि के द्वारा रुके हुये शक्ति वाले । भोगी इव = सांप के समान । अभ्यर्णम् = समीप में । आगस्कृतम् = अपराधी को । अस्पृशद्भिः = स्पर्श न कर सकने वाले । स्वतेजोभिः = अपने तेज से । अन्तः = भीतर ही भीतर । अदह्यत = जलने लगे ॥३२॥

हिन्दी—भुजाओं के बंध जाने के कारण और भी अधिक क्रोधित होता हुआ राजा दिलीप मन्त्र और औषधियों से जिसका तेज रोक दिया गया है ऐसे सर्प की तरह समीप में ही अपराध करने वाले और स्पर्श तक भी न किये जाने वाले इस सिंह पर क्रोध करने के कारण अन्दर ही अन्दर जलने लगे ॥३२॥ से अपने तेज के कारण

विशेष—जब राजा ने तरकस से बाण निकलना चाहा और हाथ वहीं पर चिपक गया तो राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ, क्योंकि राजा में सिंह का वध करने की सामर्थ्य तो था पर हाथ चिपक जाने के कारण कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं था । अतः विशेष क्रोध आना स्वाभाविक है । इस

पर भी अपराधी सिंह पास ही था। फिर भी उसका वध तो दूर था पर छू सकने की भी सामर्थ्य उसमें नहीं थी। इस कारण स्वयम् ही क्रोध में ऐसे जलने लगा, जैसे कोई अत्यन्त विषैला सांप जब मन्त्र और औषधि से जिसके विष को दवा दिया जाता है तब वह जलता है।

प्रस्तुत श्लोक में राजा उपमेय, भोगी उपमान, पराक्रम के रुक जाने से अन्दर ही अन्दर जलना साधरण धर्म और इव उपमा का वाचक होने के कारण पूर्णोपमा है ॥३२॥

समास—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः=बाहोः प्रतिष्टम्भेन विवृद्धः मन्युः यस्य सः (बहुब्रीहि)। मंत्रौषधिरुद्धवीर्यः=मन्त्राश्च ओषधयश्च (द्वन्द्व स०) ताभ्यां रुद्धं वीर्यं यस्य सः (बहुब्रीहि) ॥२२॥

व्याकरण—प्रति+स्तम्भ+अच्। विवृद्ध=वि+वृध्+क्त। आगस्कृतम्=आगस्+कृ+क्त। स्पृशत्=स्पृश्+शतृ। भोगी=भोग+इनि। रुद्धः=रुध्+क्त ॥३२॥

प्रसंग—इसके बाद जब राजा का उद्योग में असफल हो गया और क्रोध में जलने लगा तो तब सिंह मनुष्य की वाणी में बोला—

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुः, मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्माययन् विस्मितमात्मवृत्तौ, सिंहोरुसत्वं निजगाद सिंहः ॥३३॥

अन्वय—निगृहीतधेनुः सिंहः आर्यगृह्यम् मनुवंशकेतुम् सिंहोरुसत्त्व आत्मवृत्तौ विस्मितम् तम् मनुष्यवाचा विस्माययन निजगाद ॥३३॥

संस्कृत टीका—निगृहीतधेनुः=सम्पीड़ितनन्दिनीकः, सिंहः=केशरी आर्यगृह्यम्=श्रेष्ठपुरुषैः आदरणीयम्, मनुवंशकेतुम्=मनोः कुलस्य ध्वजाभूतम्, सिंहोरुसत्त्वम्=केशरीवमहत्त्वशालिनम्। आत्मवृत्तौ विस्मितम्=स्वस्य विषये आश्चर्यान्वितम्, तम्=राजानं दिलीपम्, विस्माययन्=आश्चर्यान्वितं कुर्वन्। मनुष्यवाचा=मानवानां वाचा, निजगाद=उवाच ॥३३॥

संस्कृत भावार्थ—यदा राजा स्वोद्योगेऽसफलः क्रोधे ज्वलन्नासीत्, तदा पीडितनन्दिनीकः सिंहः सज्जनपुरुषैः आदरणीयं मनुवंशस्य श्रेष्ठपुरुषं

सिंह इव बलशालिनम् तथा स्वबाहोः प्रतिस्तब्धेन आश्चर्यजनकं मनुष्यवाण्या प्रवचनेन पुनरपि विस्माययन् उवाच ॥३३॥

शब्दार्थ—निगृहीतधेनुः=गाय को पीड़ित करने वाले। आर्यगृह्यम्=सज्जनों द्वारा सम्माननीय। मनुवंशकेतुम्=मनुकुल की ध्वजा के समान शक्तिशाली। आत्मवृत्तौ=अपने विषय में। विस्मितम्=आश्चर्य युक्त। मनुष्यवाचा=मनुष्य की वाणी द्वारा। विस्माययन्=विस्मित करते हुए॥३३॥

हिन्दी—नन्दिनी को कष्ट पहुँचाता हुआ वह सिंह सज्जनों से सम्माननीय मनुवंश की पताका के समान, बल में सिंह के समान, अपनी भुजा के चिपक जाने के कारण विस्मय की दशा में वर्तमान राजा दिलीप को मनुष्य वाणी के उच्चारण द्वारा और भी आश्चर्य चकित करता हुआ बोला ॥३३॥

विशेष—राजा दिलीप सज्जनों द्वारा आदरणीय, मनुवंश के पताका के समान सिंह के समान बलशाली होते हुए भी अपने हाथ के बाण के अग्रभाग पर चिपक जाने के कारण पहले से ही आश्चर्य चकित थे। इस पर सिंह ने मनुष्य की वाणी में बोलकर राजा को और भी आश्चर्य में डाल दिया।

प्रस्तुत श्लोक में 'सिंहोरुसत्त्वम्' में सिंह उपमान राजा उपमेय और उरुसत्त्व साधारण धर्म होने के कारण उपमा अलंकार है। इसके अतिरिक्त यमक अलंकार भी है ॥३३॥

समास—आर्यगृह्यम्=आर्यैः गृह्यम् (तत्पुरुष)। निगृहीतधेनुः=निगृहीता धेनुः येन सः (बहुव्रीहि)। मनुष्यवाचा=मनुष्याणाम् वाचा (षष्ठीतत्पुरुष)। मनुवंशकेतुम्=मनोः वंशस्य केतुम् (षष्ठीतत्पुरुष)। आत्मवृत्तौ=आत्मनः वृत्तौ (षष्ठीतत्पुरुष.)। सिंहोरुसत्त्वम्=सिंह इव उरुः सत्त्वः यस्य सः (बहुव्रीहि) ॥३३॥

व्याकरण--गृह्यम्=गृह+क्यप्। निगृहीत=नि=ग्रह्=क्त। विस्माययन्=वि+स्मि+णिच्+शतृ। विस्मित=वि+स्मि+क्त। वृत्तिः==वृ+क्तन्। निजगाद=नि+गद्+लिट् प्र० पु० एक० ॥३३॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह मनुष्य की वाणी में राजा से उद्योग की निष्फलता बताते हुए कह रहा है—

अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ ३४॥

अन्वय—हे महीपाल ! तव श्रमेण अलम् इतः प्रयुक्तम् अपि अस्त्रम् वृथा स्यात् । (हि) पादपोन्मूलनशक्ति मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—हे महीपाल = हे राजन्! दिलीप ! तव = भवतः, श्रमेण = परिश्रमेण, अलम् = व्यर्थम् । इतः = अस्मिन् स्थानेऽपि, प्रयुक्तम् = प्रक्षिप्तम्, अपि = सम्भावनायाम् । अस्त्रम् = आयुधम्, वृथा = निरर्थकम् स्यात् = भवतु । पादपोन्मूलनशक्ति = वृक्षानां उन्मूलने शक्तिमत् मारुतस्य = पवनस्य । रंहः = वेगः । शिलोच्चये = पर्वते, न = नहि, मूर्च्छति = प्रभवति ॥ ३४ ॥

संकृत भावार्थ—मनुष्यवाण्या राजानं विस्मापयन् सिंहः अकथयत् = यत् हे राजन्! मम वधाय त्वया कृतं प्रयत्नं व्यर्थं भविष्यति । मयि प्रयुक्तं अस्त्रम् अपि व्यर्थं भविष्यति । यतः वृक्षाणाम् उन्मूलने एव सामर्थ्यवान् पवनः उच्चपर्वतशिखरम् उत्पाटयितुं समर्थो न भवति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—महीपाल = पृथ्वी के स्वामी । पादपोन्मूलशक्ति = वृक्षों को उखाड़ने की शक्ति से युक्त । मारुतस्य = वायु का । रंहः = वेग । शिलोच्चये = पर्वत पर । न मूर्च्छति = प्रभाव नहीं करता ॥ ३४ ॥

हिन्दी—हे पृथ्वीपालक, ! आपका श्रम करना बेकार है । मेरे ऊपर प्रयोग किया जाने वाला अस्त्र भी बेकार हो जायेगा । क्यों कि वृक्षों को उखाड़ कर फेंकने वाले वायु का वेग ऊँचे पर्वत को उखाड़ने में समर्थ नहीं होता है ॥ ३४ ॥

विशेष—सिंह ने राजा से कहा कि हे राजन्? तुम व्यर्थ में श्रम मत करो । यदि तुम्हारा हाथ छूट भी जाय तो भी तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ होगा । क्योंकि वृक्षों को उखाड़ फेंकने वाला वायु पर्वत के चट्टानों को नहीं उखाड़ सकता है ।

प्रस्तुत श्लोक में दो वाक्य है—श्रम मत करो, तुम्हारा श्रम व्यर्थ जायेगा तथा पेड़ों को उखाड़ने वाली वायु पर्वत को उखाड़ने में व्यर्थ है। यहाँ वायु पेड़ों को ही उखाड़ सकती है पर्वतों को नहीं इस कथन के द्वारा 'अतः तुम श्रम मत करो तुम्हारे द्वारा प्रयुक्त अस्त्र व्यर्थ जायेगा', इसका समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।। ३४।।

समास—पादपोन्मूलनशक्ति=पादपानाम् उन्मूलने शक्तिः यस्य तत् (बहुव्रीहि.) शिलोच्चये=शिलानां उच्चयः तस्मिन् (षष्ठीतत्पुरुष.) ।। ३४।।

व्याकरण—अलम्=अव्यय शब्द है। प्रयुक्तम्=प्र+युज्+क्त। उन्मूलनम्—उत्+मूल+ल्युट् (अन)। इतः=इदम्+तसिल्। स्यात्=अस्+लिङ् प्र० पु० एक व०।। ३४।।

प्रसंग—हे राजन्? तुम मुझे कोई साधारण सिंह मत समझो। इस प्रकार अपना परिचय देते हुए सिंह कहता है—

> **कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।**
> **अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ।। ३४।।**

अन्वय—कैलासगौरम् वृषम् आरुरुक्षोः अष्टमूर्तेः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् निकुम्भमित्रम् कुम्भोदरम् नाम किङ्करम् (माम्) अवेहि।। ३५।।

संस्कृत टीका—माम्=पुरः उपस्थितम् सिंहम्, कैलाशगौरम्=कैलाशपर्वत इव शुभ्रवर्णम्। वृषम्=वृषभम्। आरुरुक्षोः=आरोहणम् कर्तुमिच्छोः। अष्टमूर्तेः=शिवस्य। पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्=चरणयोः न्यासेन पवित्र-पृष्ठभागम्। निकुम्भमित्रम्=निकुम्भाख्यस्य शिवानुचरस्य सुहृदम्, कुम्भोदरनामानाम्, अवेहि=जानीहि।। ३५।।

संस्कृत भावार्थ—स्वस्थितौ विस्मितं राजानं सिंहः प्रोवाच—हे राजन्। अहं साधारणः सिंहो नास्मि। किन्तु अष्टमूर्तेः शंकरस्य किंकरोऽस्मि। कैलाश इव धवलवर्णं वृषभं यदा शिवः आरोहति तदा मम पृष्ठभागे चरणौ निधाय एव आरोहति, अतः शंकरस्य पादयोः स्पर्शेन मम पृष्ठभागं पवित्रं जातमस्ति। अहं शिवस्य परमसेवकः तथा निकुम्भनामकस्य शिवानुचरस्य मित्रम् अस्मि।।। ३५।।

शब्दार्थ—कैलाशगौरम् = कैलाशपर्वत के समान गौरवर्ण। वृषम् = बैल पर। आरुरुक्षोः = चढ़ने की इच्छा वाले। अष्टमूर्तेः = भगवान् शंकर के। पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् = पैरो को रखने से पवित्र पीठ वाले। निकुम्भमित्रम् = निकुम्भ का मित्र। कुम्भोदरम् = कुम्भोदर नामक। किङ्करम् = सेवक ॥ ३५ ॥

हिन्दी—हे राजन् ? मुझको कैलाश नामक पर्वत के समान शुभ्र वर्ण वाले बैल पर चढ़ने की इच्छा से शंकर जी के पादस्पर्श से पवित्र पृष्ठभाग वाला मुझे निकुम्भ का मित्र कुम्भोदर नामक शिव का सेवक जानो ॥ ३५ ॥

विशेष—सिंह ने राजा से कहा कि मैं कोई साधारण सिंह नहीं हूँ। मैं भगवान् शंकर का सेवक हूँ जब भगवान् शंकर कैलाश के समान सफेद वर्ण के बैल पर चढ़ते है तब मेरी पीठ पर पैर देकर चढ़ते है। अतः मेरी पीठ उनके चरणस्पर्श से पवित्र हो गई है। इसके अतिरिक्त मैं शंकर के सेवक निकुम्भ का मित्र हूँ। यहाँ शिव जी की अष्टमूर्तियों का उल्लेख है। इसलिये यहाँ पर उपमा अलंकार है ॥ ३५ ॥

समास—कैलाशगौरम् = कैलाश इव गौरम् (उपमितकर्मधारय) पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् = पादयोः अर्पणम् एव अनुग्रहः तेन पूतं पृष्ठं यस्य सः (बहुव्रीहि.)। अष्टमूर्तेः = अष्ट मूर्तयः यस्य सः (बहुव्रीहि.) कुम्भोदरम् = कुम्भ इव उदरम् यस्य सः (बहुव्रीहि)। निकुम्भमित्रम् = निकुम्भस्य मित्रम् (षष्ठीतत्पुरुष) ॥ ३५ ॥

व्याकरण—आरुरुक्षोः. आ + रुह् + सन् + उ। अनुग्रह = अनु + ग्रह् + अप्। पूत = पू + क्त। पृष्ठ = पृष् + थक्। अवेहि = अव् + इण् + लोट म० पु० ए० व० ॥ ३५ ॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह वहाँ पर अपनी नियुक्ति का कारण बताते हुये कहता है—

> अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
> यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥ ३६ ॥

अन्वय–पुरः अमुम् देवदारुम् पश्यसि, असौ वृषभध्वजेन पुत्रीकृतः यः स्कन्दस्य मातुः हेमकुम्भस्तननिःसृतानाम् पयसाम् रसज्ञः ।। ३६ ।।

संस्कृत टीका—पुरः=अग्रतः । अमुम्=एनम् । देवदारुम्=देवदारु नामकं वृक्षम्, पश्यसि=विलोकयसि, असौ=अयम् देवदारुवृक्षः। वृषभध्वजेन=बलीवर्दपताकेन । पुत्रीकृतः=पुत्रत्वेन स्वीकृतः । यः=देवदारुः स्कन्दस्य=कार्तिकेयस्य । मातुः=जनन्याः पार्वत्याः, । हेमकुम्भस्तननिःसृतानाम् =सुवर्णसदृशघटस्तननिर्गतानाम्, पयसाम्=दुग्धानाम् जलानाम् । रसज्ञः= रसास्वादकः अस्ति ।। ३६ ।।

संस्कृत भावार्थ–सिंहः राजानम् कथयति–यत् अहम् अत्र पुरः स्थितम् देवदारुं रक्षितुं शिवेन नियुक्तोऽस्मि । असौ देवदारुः शिवेन पुत्रत्वेन स्वीकृतोऽस्ति । अयम् वृक्षः पर्वत्या सुवर्णकुम्भसदृशस्तननिर्गतैः जलैः स्वामि-कार्तिकेयतुल्यः पोषितोऽस्ति । अतएव अहम् अस्य रक्षणे नियुक्तोऽस्मि ।। ३६ ।।

शब्दार्थ—वृषभध्वजेन=भगवान् शंकर के द्वारा । पुत्रीकृतः=पुत्र के रूप में स्वीकार किया गया । स्कन्दस्य मातुः=पार्वती के । हेमकुम्भस्तननिः-सृतानाम्=सोने के घट रूप स्तनों से निकले हुये । पयसाम्=दूध के । रसज्ञः =रस (स्वाद) का ज्ञाता ।। ३६ ।।

हिन्दी—हे राजन् ! सामने तुम जिस देवदारु वृक्ष को देखते हो यह वृक्ष भगवान् शिव ने पुत्र के समान स्वीकार किया है। (यह देवदारु का वृक्ष) स्वामि-कार्तिकेय की माता पार्वती के स्तन स्वरूप सुवर्ण कुम्भों से निकले हुये जलो के रस को जानने वाला है। ।। ३६ ।।

विशेष—सिंह ने राजा से कहा--हे राजन् ! सामने जो देवदारु का वृक्ष दिखाई देता है उसे शिव जी ने पुत्र के रूप में मान लिया है । यह पार्वती जी के द्वारा सींचा और बढ़ाया गया है । स्वामिकार्तिकेय ने जिस प्रकार सुवर्ण के सदृश पार्वती के स्तनों का दूध पिया है । उसी प्रकार इस वृक्ष ने भी सुवर्ण सदृश घटों के जलों से सिंचन किया गया है। प्रस्तुत श्लोक में रूपक अलंकार है ।। ३६ ।।

समास—वृषभध्वजेन=वृषभध्वजे यस्य स तेन (बहुव्रीहि स०) हेमकुम्भस्तननि:सृतानाम्=हेम्नः कुम्भः (षष्ठीतत्पुरुष स०) हेमकुम्भ एव स्तनः (कर्मधारय स०) हेमकुम्भस्तनात् नि:सृतानाम् (पंचमीतत्पुरुष) ॥३६॥

व्याकरण—पुत्रीकृतः=पुत्र+च्वि+कृ+क्त। रसज्ञः=रस+ज्ञा+क। नि:सृतानाम्=निर्+सृ+क्त ॥३६॥

प्रसंग—इसके बाद वृक्ष की रक्षा में क्यों नियुक्त किया गया! इसका कारण बताते हुये सिंह कहता है—

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्, वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥३७॥

अन्वय—कदाचिद् कटम् कण्डूयमानेन वन्यद्विपेन अस्य त्वक् उन्मथिता, अथ अद्रेः तनया (एनम्) असुरास्त्रैः आलीढम् सेनान्यम् इव शुशोच ॥३७॥

संस्कृत टीका—कदाचित्=कस्मिश्चिद् समये, कटम्=गण्डस्थलम्, कण्डूयमानेन=घर्षणम् कुर्वता, वन्यद्विपेन=आरण्यकगजेन, अस्य=पुरः स्थितस्य देवदारोः, त्वक्=वल्कलम्, उन्मथिता=उत्पाटिता, अथ=पश्चात्, अद्रेः=पर्वतस्य, तनया=पुत्री पार्वती, एनम्=देवदारुम् असुरास्त्रैः=राक्षसायुधैः, आलीढम्=क्षतम्, सेनान्यम्=स्वामिकार्तिकेयम्, इव=यथा, शुशोच=दुखिता बभूव ॥३७॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः कथयति यत् एकदा कश्चिद् वनगजः कण्डूयनव्याजेन अस्य वल्कलम् उत्पाटितवान्। उत्पाटितवल्कलम् अमुम् विलोक्य पार्वती एवम् दुखिता आसीत् यथा राक्षसायुधैः पीड़ितं स्वामिकार्तिकेयं दृष्ट्वा दुःखिता आसीत् ॥३७॥

शब्दार्थ—कदाचित्=कभी। कटम्=गण्डस्थल को। कण्डूयमानेन=खुजलाते हुये। वन्यद्विपेन=जंगली हाथी के द्वारा। त्वक्=वल्कल छाल। उन्मथिता=उखाड़ दी। अद्रेः तनया=पार्वती। असुरास्त्रैः राक्षसों के अस्त्रों से। आलीढम्=घायल। सेनान्यम्=स्वामिकार्तिकेय के समान। शुशोच=शोक किया था ॥३७॥

हिन्दी—किसी समय अपने (कपोल) को खुजलाते हुये किसी जंगली हाथी ने इस देवदारु वृक्ष की छाल उखाड़ दी थी। तदनन्तर उसे देखकर पार्वती

जी को दैत्यों के अस्त्रों से घायल हुये अपने पुत्र स्वामिकार्तिकेय के समान दुःख हुआ था ॥३७॥

विशेष—सिंह ने कहा कि हे राजन् ! किसी समय किसी जंगली हाथी ने इस वृक्ष से अपनी कपोल को खुजलाया और इसकी छाल को उखाड़ दिया। इससे माता पार्वती को इतना दुःख हुआ जितना राक्षसों से युद्ध के समय स्वामिकार्तिकेय के घायल हो जाने पर हुआ था। प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार हैं ॥३७॥

समास—वन्यद्विपेन = वन्यश्चासौ द्विपः तेन (कर्मधारय स०)। असुरास्त्रैः = असुराणाम् अस्त्रैः (षष्ठीतत्पुरुष) ॥३७॥

व्याकरण—कण्डूयमानेन = कण्डू + यक् + शानच्। वन्यः = वन + यत्। द्विपः = द्वि + पा + क। उन्मथिता = उत् + मथ + क्त + टाप्। सेनान्यम् = सेना + नी + क्विप्। आलीढ = आ + लिह् + क्त। शुशोच = शुच + लिट् लकार प्र० पु० ए० व० ॥३७॥

प्रसंग—उस दिन से भगवान् शंकर ने मुझे उसकी रक्षा में नियुक्त कर दिया है, इसी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

तदा प्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्कागतसत्ववृत्ति ॥३८॥

अन्वय—तदा प्रभृति एव वनद्विपानाम् त्रासार्थम् शूलभृता अङ्कागतसत्ववृत्ति सिंहत्वम् विधाय अस्मिन् अद्रिकुक्षौ अहम् व्यापारितः ॥३८॥

संस्कृत टीका—तदाप्रभृति = तत्कालादारभ्य, एव = अवधारणे, वनद्विपानाम् = आरण्यकगजानाम्, त्रासार्थम् = भयार्थम्, शूलभृता = शंकरेण, अङ्कागतसत्ववृत्ति = स्वाङ्कागतजन्तुजीवनम्, सिंहत्वम् = मृगेन्द्रत्वम्, विधाय = कृत्वा, अस्मिन् = पुरो दृश्यमाने, अद्रिकुक्षौ = पर्वतोदरे, अहम् = केशरी, व्यापारितः = नियुक्तः ॥३८॥

संस्कृत भावार्थ—वृक्षस्य वल्कलोत्पाटनावसरादेव वृषभध्वजेन अहम् अत्र वनगजानाम् त्रासार्थमेव नियुक्तः तथा शिवेनादिष्टोऽहमत्र यदि कोऽपि जन्तुः समागच्छेत् तत्त्वया भक्षितव्यः। अतोऽहम् तस्य रक्षार्थं निवसामि ॥३८॥

शब्दार्थ—तदाप्रभृत्येव=उसी दिन से लेकर। वनद्विपानाम्=जंगली हाथियों को। त्रासार्थम्=डराने के लिये। शूलभृता=भगवान् शंकर ने। अङ्कागतसत्ववृत्तिः=अङ्क (समीप) में आये हुये जन्तुओं से जीविका चलाने वाला। विधाय=बनाकर। अद्रिकुक्षौ=पर्वत की कन्दरा में। व्यापारितः=नियुक्त किया है ॥३८॥

हिन्दी—तभी से लेकर त्रिशूल धारण करने वाले शिवजी ने जंगली हाथियों को भयभीत करने के लिये मुझे उस पर्वत की कन्दरा में आये हुये जीवों के भक्षण से जीवन निर्वाह करने वाला सिंह बनाकर मुझे नियुक्त किया है ॥३८॥

विशेष—मृगेन्द्र ने कहा कि जब से वृक्ष की छाल को वनगजों ने उपाट दिया था तभी से शंकरजी ने मुझे इसकी रक्षा में सिंह का स्वरूप देकर नियुक्त कर दिया है। साथ ही समीप में आये हुये जीवों का मैं भक्षण करता रहता हूँ। प्रस्तुत श्लोक में जंगली हाथियों के डराने के लिये इस हेतु से सिंह का नियुक्त किया जाना कार्य होने के कारण हेतु अलंकार है।

समास—वनद्विपानाम्=वने: भवा: द्विपा: तेषाम् (कर्मधारय)। अद्रिकुक्षौ =अद्रे: कुक्षौ (षष्ठीतत्पुरुष स०)। अङ्कागतसत्ववृत्ति=अङ्कम् आगता: सत्त्वा: वृत्तय: यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि स०) ॥३८॥

व्याकरण—प्रभृति=प्र+भृ+क्तिन्। त्रास=त्रस्+घञ्। व्यापारितः =वि+आ+पृ+णिच्+क्त। शूलभृता=शूल+भृ+क्विप्। विधाय= वि+धा+क्त्वा (ल्यप्)। सिंहत्वम्=सिंह+त्वल्। वृत्+क्तिन् ॥३८॥

प्रसंग—उसके बाद सिंह ने कहा कि 'यहाँ आने वाला प्राणी मेरा भक्ष्य है' अत: यह गाय परमेश्वर ने भेजी है—

> तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै, प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
> उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥३९॥

अन्वय—परमेश्वरेण प्रदिष्टकाला उपस्थिता एषा शोणितपारणा सुरद्विषः चान्द्रमसी सुधा इव क्षुधितस्य तस्य मे तृप्त्यै अलम् ॥३९॥

संस्कृत टीका—क्षुधितस्य=बुभुक्षायुक्तस्य, तस्य=शिवसेवकस्य, मे=मम, परमेश्वरेण=महादेवेन, प्रदिष्टकाला=निर्दिष्टमृत्युसमया, उपस्थिता=अत्र संप्राप्ता, एषा=नन्दिनी, शोणितपारणा=रुधिरस्य उपवासान्तभोजनम्, सुरद्विषः=दैत्यस्य राहोः, चान्द्रमसी=इन्दुसम्बन्धिनी, सुधा=अमृतम्, इव=यथा, तृप्त्यै=परितृप्त्यै, अलम्=पर्याप्तम् ॥३९॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः कथयति यदियं धेनुः बुभुक्षितस्य मे तृप्त्यर्थम् स्वयमेव उपस्थिता। अतः इयं मे तृप्त्यर्थं पर्याप्ता विद्यते यथा चान्द्रमसी सुधा राहोः तृप्त्यर्थं भवति ॥३९॥

शब्दार्थ—परमेश्वरेण=भगवान् शंकर के द्वारा। प्रदिष्टकाला=निर्दिष्ट भोजन का समय। शोणितपारणा=खून का पारण (व्रत का भोजन)। सुरुद्विषः=राहु के। चान्द्रमसी=चन्द्रसम्बन्धिनी। सुधा इव=अमृत के समान। क्षुधितस्य=भूखे। तृप्त्यै=तृप्ति के लिये। अलम्=पर्याप्त है ॥३९॥

हिन्दी—सिंह कहता है इसलिये यह गाय बुभुक्षायुक्त मेरे लिये भगवान् शिव ने उचित समय पर भेजी है। यह मेरे व्रत-पारण अर्थात् भोजन के लिये पर्याप्त है। जिस प्रकार चन्द्रमा का अमृत राहु के लिये पर्याप्त है ॥३९॥

विशेष—सिंह ने कहा कि यह ईश्वर की इच्छा है, कि इस समय मैं भूखा हूँ और मेरे व्रत का समय है। अतः व्रत करने वाले मेरे लिये इसका रुधिर ही व्रतान्त भोजन है। इसके रुधिर से मैं इस प्रकार तृप्त हो जाऊँगा जिस प्रकार राहु चन्द्र के अमृत का पान करके तृप्त होता है। यहाँ पर व्यक्त किया गया है कि जब समय आ जाता है तब राहु चन्द्रमा को अवश्य ग्रसित कर लेता है उसी प्रकार इस नन्दिनी का भी समय आ गया है। अतः इसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता। प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है ॥३९॥

समास—प्रदिष्टकाला=प्रदिष्टः कालः यस्याः सा (बहुव्रीहि स०)। परमेश्वरेण=परमश्चासौ ईश्वरः तेन (कर्मधारयसमास), शोणितपारणा=शोणितस्य पारणा (षष्ठीतत्पुरुष स०) ॥३९॥

व्याकरण—क्षुधितस्य=क्षुधा + इतच्। प्रदिष्ट=प्र + दिश् + क्त। ईश्वरेण=ईश् + वरच्। उपस्थिता=उप + स्था + क्त + टाप्। सुरद्विषः=सुर + द्विष् + क्विप् ॥३९॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह राजा को गुरु के आश्रम लौटने की सलाह देता हुआ कहता है—

स त्वं निवर्त्तस्व विहाय, लज्जां गुरोर्भवान् दर्शितशिष्यभक्तिः ।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्ष्यं न तद् यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥४०॥

अन्वय—स त्वं लज्जाम् विहाय निर्वतस्व, भवान् गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिः यद् रक्ष्यं शस्त्रेण अशक्यरक्ष्यम् तद् शस्त्रभृताम् यशः न क्षिणोति ॥४०॥

संस्कृत टीका—सः=बाहुप्रतिष्टम्भेन किंकर्तव्यविमूढ़ः । त्वं=राजा दिलीपः । लज्जां=मनसिविद्यमानां ग्लानिम्, विहाय=त्यक्त्वा । निर्वतस्व=प्रतिगच्छ, भवान्=त्वम्, गुरोः=वशिष्ठस्य, दर्शितशिष्यभक्तिः=प्रकाशीकृत-श्रद्धः, यद्=किञ्चित्, रक्ष्यं=रक्षितुंयोग्यम् वस्तु । शस्त्रेण=आयुधेन, अशक्य-रक्ष्यम्=असम्भवपरित्राणम्, तत्=रक्ष्यं, शस्त्रभृताम्=आयुधधारिणाम्, यशः=कीर्तिः, न=नहि, क्षिणोति=हिनस्ति ॥४०॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः कथयति—त्वं लज्जां त्यक्त्वा गुरोराश्रमं प्रति निर्वतस्व । गुरुं प्रति शिष्यभक्तिः प्रदर्शिता त्वया । यद् रक्षणीयम् वस्तु केनापि कारणेन शस्त्रधारिणा न रक्ष्यते, तत्र आयुधशालिनां कीर्तिः न नष्टा भवति ॥४०॥

शब्दार्थ—लज्जाम्=लज्जा को । विहाय=छोड़कर । निर्वतस्व=लौट जाओ । दर्शितशिष्यभक्तिः=शिष्यभक्ति दिखा दी है । रक्ष्यम्=रक्षा के योग्य । अशक्यरक्ष्यम्=रक्षा करने में असमर्थ । शस्त्रभृताम्=शस्त्रधारियों का । न क्षिणोति=क्षीण नहीं होता ॥४०॥

हिन्दी– इस प्रकार बाहु के बन्ध जाने के कारण तुम अपने मन की ग्लानि को छोड़कर लौट जाओ । तुमने अपने गुरु के प्रति भक्ति दिखा दी है । जो रक्षा के योग्य वस्तु शस्त्र से रक्षा नहीं की जा सकती है उसके नष्ट होने पर भी शस्त्रधारियों का यश नष्ट नहीं होता है ॥४०॥

विशेष—'आप इस गाय की रक्षा में नियुक्त थे, परन्तु इसको नहीं बचा सके' । इस ग्लानि को मन से निकाल कर वापस लौट जाओ । आपने अनेक प्रकार से गाय का अनुकरण कर गुरु के प्रति शिष्य की श्रद्धा प्रकट कर दी है । आपने इतनी सेवा की है कि आपके गुरु का कोई अपमान नहीं है ।

इस गाय की रक्षा न कर सकने के कारण आपका यश क्षीण नहीं होगा, क्योंकि आप शस्त्रों के प्रयोग से ही इसकी रक्षा करने में समर्थ है, परन्तु शिव जी की कृपा से कोई हथियार काम नहीं देगा। अत: आप नि:संकोच लौट जाइये। प्रस्तुत श्लोक में 'आपको लज्जा नहीं करनी चाहिये' इस सामान्य का समर्थन, 'शस्त्रों द्वारा जिसकी रक्षा नहीं की जा सकती उसके विनाश से शस्त्रधारियों के यश को क्षीण नहीं होता' इस विशेष से किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है ॥४०॥

समास—दर्शितशिष्यभक्ति:=दर्शिता शिष्यस्य भक्ति: येन स: (बहुव्रीहि समास) ॥४०॥

व्याकरण—लज्जाम्=विहाय=वि+हा+क्त्वा (ल्यप्)। निर्वतस्व=नि+वृत्+लोट् म० पु० ए० व०। भक्ति:=भज्+क्तिन्। शस्त्रेण=शस्+ष्ट्रन्। रक्ष्यम्=रक्ष+यत्। शस्त्रभृताम्=शस्त्र+भृ+क्विप् षष्ठी०। क्षिणोति=क्षि+लट् प्र०पु०ए०व० ॥४०॥

प्रसंग—इस प्रकार के सिंह के वचन को सुनकर राजा की दशा का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य ।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥४१॥

अन्वय—पुरुषाधिराज: मृगाधिराजस्य इति प्रगल्भं वच: निशम्य गिरिश-प्रभावात् प्रत्याहतास्त्र: सन् आत्मनि अवज्ञाम् शिथिलीचकार ॥४१॥

संस्कृत टीका—पुरुषाधिराज:=नराणाम् अधिपति: महाराज: दिलीप:, मृगाधिराजस्य=मृगाणाम् ईश्वरस्य सिंहस्य, इति=पूर्वोक्तप्रकारम्, प्रगल्भम्=धृष्टम्, वच:=वचनम्, निशम्य=श्रुत्वा, गिरिशप्रभावात्=भगवत: शंकरस्य सामर्थ्यात्, प्रत्याहतास्त्र:=कुण्ठितायुध:, आत्मनि=स्वस्मिन्, अवज्ञाम=अपमानम्, शिथिलीचकार=शिथिलाम् कृतवान् ॥४१॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहस्य वचनं श्रुत्वा राजा दिलीप: निश्चितम् कृतवान्, यत् मम बाहो: प्रतिस्तब्धे शिवस्य प्रताप एव कारणम् कापि शक्ति-रन्या ममास्त्रम् प्रतिरोद्धुं न समर्था अस्ति। अत: सिंहवधेऽशक्त: राजा स्वकीयामवज्ञां तत्याज ॥४१॥

शब्दार्थ—पुरुषाधिराज:=राजा दिलीप। मृगाधिराजस्य=मृगराज सिंह

के। प्रगल्भम्=धृष्ट। वचः=वचन को। निशम्य=सुनकर। गिरिशप्रभावात्=भगवान् शिव के प्रभाव से। प्रत्याहतास्त्रः=अवरुद्ध अस्त्र वाले। अवज्ञाम्=अपमान को। शिथिलीचकार=शिथिल कर दिया, भूल गया ॥४१॥

हिन्दी—राजा दिलीप पूर्वोक्त प्रकार के सिंह के धृष्ट वचनों को सुनकर शंकर के प्रभाव से मेरा अस्त्र कुण्ठित हो गया है, ऐसा निश्चय कर अपने अपमान को कम समझा ॥४१॥

विशेष—राजा दिलीप ने सिंह के पूर्वप्रकार से कहे गये धृष्ट वचनों को सुनकर यह समझ लिया कि मेरे हथियार रुकने का कारण शिवजी का प्रभाव है न कि मेरी कमजोरी। अतः राजा ने उसको अपमान नहीं समझा। क्योंकि क्षत्रियों के हथियार बराबर वालों के ऊपर प्रभाव दिखाते हैं न कि ईश्वरीय शक्तियों पर। अतः राजा ने अपने अपमान को कम कर दिया। प्रस्तुत श्लोक में राजा ने अपने प्रति किये जाने वाले अपमान को शिथिल कर दिया इस कार्य का हेतु शिव का उत्कृष्ट प्रभाव प्रस्तुत किये जाने के कारण यहाँ हेतु अलंकार है ॥४१॥

समास—पुरुषाधिराजः=पुरुषाणाम् अधिराजः (षष्ठीतत्पुरुष स०)। प्रत्याहतास्त्रः=प्रत्याहतम् अस्त्रं यस्य सः (बहुव्रीहि स०) ॥४१॥

व्याकरण—प्रगल्भम्=प्र+गल्भ+अच्। अधि+राजन्+टच्। निशम्य=नि+शम्+क्त्वा (ल्यप्) प्रत्याहतः=प्रति+आ+हन्+क्त। अस्त्र=अस्+ष्ट्रन्। प्रभावः=प्र+भू+घञ्। अवज्ञाम्=अव+ज्ञ+क+टाप्। चकार=कृ+लिट् प्र०पु०ए०व० ॥४१॥

प्रसंग—सिंह के पूर्वोक्त धृष्ट वचनों को सुनकर राजा दिलीप सिंह से कहते हैं—

> प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे, तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
> जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः ॥४२॥

अन्वय—तत्पूर्वभगे इषुप्रयोगे वितथप्रयत्नः वज्रं मुमुक्षन् त्र्यम्बकवीक्षणेन जडीकृतः वज्रपाणिः इव एनम् प्रत्यब्रवीत् ॥४२॥

संस्कृत टीका—तत्पूर्वभङ्गे=प्रथमपराजये, इषुप्रयोगे=बाणस्य प्रहारे, वितथप्रयत्नः=विफलप्रयासः, वज्रम्=कुलिशम्, मुमुक्षन्=प्रहातुमिच्छन्,

त्र्यम्बकवीक्षणेन=शिवस्य अवलोकनेन, जडीकृतः=निष्पन्दीकृतः, वज्रपाणिः=इन्द्र इव, नृपः=राजा दिलीपः, एनम्=सिंहम्, प्रत्यब्रवीत्=अवदत् ॥४२॥

संस्कृत भावार्थ—बाणप्रहारेऽसफलप्रयत्नः वज्रं मोक्तुमिच्छन् किन्तु शिवस्य दृष्ट्या निष्पन्दीकृतः, सः वज्रपाणि इन्द्र इव स्थितः राजा दिलीपः सिंहम् उक्तवान् ॥४२॥

शब्दार्थ—तत्पूर्वभङ्गे=प्रथम बार भंग हुये। इषुप्रयोगे=बाण के प्रयोग में। वितथप्रयत्नः=निष्फल प्रयत्न वाले। मुमुक्षन्=छोड़ने की इच्छा करते हुये। त्र्यम्बकवीक्षणेन=भगवान् शिव के देखने से। जड़ीकृतः=निश्चेष्ट किये गये। वज्रपाणिः=इन्द्र। प्रत्यब्रवीत्=कहा ॥४२॥

हिन्दी—सर्वप्रथम बाण चलाने में निष्फल प्रयत्न वाले वज्र को छोड़ने की इच्छा रखते हुये, किन्तु शंकर के अवलोकन मात्र से जड़ीभूत इन्द्र के समान राजा दिलीप सिंह से कहने लगे ॥४२॥

विशेष—प्रथम बार ही सिंह पर ही बाण चलाने में असफल राजा दिलीप शिवजी द्वारा निश्चेष्ट बनाये गये वज्रपाणि इन्द्र के समान स्थित रहे राजा दिलीप का बाण जीवन में प्रथम बार ही किसी पर प्रयोग किये जाने के समय असफल हुआ था और किसी पर नहीं। जैसे वज्र के कुण्ठित हो जाने पर इन्द्र की जो दशा थी वह दशा राजा की हो गई थी। महाभारत में भी ऐसा वृत्त आया है कि "बाहुम् सवज्रम् शक्रस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत्प्रभुः"। प्रस्तुत श्लोक में राजा उपमेय, इन्द्र उपमान, हाथ का जड़ होना साधारण धर्म, और इव उपमा का वाचक होने से उपमा अलंकार है।

समास—इषुप्रयोगे=इषोः प्रयोगे (षष्ठीतत्पुरुष स०) तत्पूर्वभङ्गे=स एव पूर्वभंगः यस्य सः (बहुव्रीहि स०), त्र्यम्बकवीक्षणेन=त्र्यम्बकस्य वीक्षणेन (षष्ठीतत्पुरुष) वज्रपाणिः=वज्रं पाणौ यस्य सः (बहुव्रीहि स०) ॥४२॥

व्याकरण—प्रयोगे=प्र+युज्+घञ्। जड़ीकृतः=जड+च्वि+कृ+क्त। वीक्षण=वि+ईक्ष्+(अन)। मुमुक्षन्=मुच्+सन्+शतृ। प्रत्यब्रवीत्=प्रति+ब्रू+लङ् प्र० पु० ए० व० ॥४२॥

प्रसंग—दिलीप सिंह से कहते हैं—

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र ! कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः ।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान् भावमतोऽभिधास्ये ॥४३॥

अन्वय—मृगेन्द्र ! संरुद्धचेष्टस्य तद् वचः कामं हास्यम् यत् अहम् विवक्षुः हि भवान् प्राणभृताम् अन्तर्गतं सर्वम् भावम् वेद, अतः अभिधास्ये ॥४३॥

संस्कृत टीका—हे मृगेन्द्र ?= मृगराज ! संरुद्धचेष्टस्य = प्रतिबद्धव्यापारस्य । मम=राज्ञः दिलीपस्य, तद्वचः=अग्रे वक्ष्यमाणा वाणी, काम्=निश्चयेन, हास्यम्=परिहसनीयम्, यद्=वचः, अहं=राजा दिलीपः, विवक्षुः=कथयितुमिच्छुः, हि=यतः, भवान्=त्वम्, प्राणभृताम्=जीवानाम्, अन्तर्गतं=हृदयस्थं, सर्वं=सम्पूर्णम्,भावं=अभिप्रायं वेद=जानाति, अतः= अस्मात् कारणात्, अभिधास्ये=कथयिष्यामि ॥४३॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः=सिंहं कथयति यत् हे मृगेन्द्र ! सम्प्रति बाहोः प्रतिस्तब्धेन मदीया चेष्टा संरुद्धा जाता अस्ति । अहं किञ्चिदपि कर्तुं न समर्थोऽस्मि । यत्किञ्चिदपि भवतः अग्रे वक्ष्यामि तद् अवश्यमेव उपहसनीयं स्यात् । परन्तु अहं अवश्यमेव कथयिष्यामि यत् भवान् प्राणिनाम् अन्तंगतं सर्वं भाव जानाति । अत्र सिंहस्य दैवत्वं सूचितमस्ति ॥४३॥

शब्दार्थ—मृगेन्द्र=मृगराज । संरुद्धचेष्टस्य=अवरुद्ध चेष्टा वाले । वचः =वचन (कथन) । हास्यम्=उपहास के योग्य । विवक्षुः=कहने का इच्छुक । भवान्=आप । प्राणभृताम्=प्राणियों के । अन्तर्गतम्=भीतर की । वेद= जानते हैं । अतः=इसलिये । अभिधास्ये=कहूँगा ॥४३॥

हिन्दी—हे मृगराज । अवरुद्ध चेष्टा वाला मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह मेरा वचन अवश्य ही उपहास के योग्य है । फिर भी मैं अवश्य कहना चाहता हूँ क्योंकि आप [illegible] जीवों के हृदयगत भाव को जानते हैं ॥४३॥

विशेष—राजा ने कहा कि मैं शिवजी के प्रभाव से चेष्टारहित हो गया हूँ । इसलिये इस समय मेरे मुंह से निकले हुये वाक्य अवश्य ही उपहास के योग्य होंगे । परन्तु फिर भी मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, अवश्य कहूँगा; क्योंकि आप देवस्वरूप है और सबके हृदय की बात को जानते हैं ॥४३॥

समास—संरुद्धचेटस्य=संरुद्धा चेष्टा यस्य सः (बहुव्रीहि)। मृगेन्द्रः=मृगाणाम् इन्द्रः (षष्ठीतत्पुरुष) ॥४३॥

व्याकरण—वचः=वच्+असुन्। हास्यम्=हस्+ण्यत्। विवक्षुः=वच्+सन्+उ। प्राणभृताम्=प्राण+भृ+क्विप्। वेद=विद्+लिट्+प्र० पु० ए० व०। अभिधास्ये=अभि+धा+लृट् उ० पु० ए० व० ॥४३॥

प्रसंग—यद्यपि मेरा वचन उपहासास्पद है फिर भी सामने नष्ट होते हुये गुरु के धन की उपेक्षा नहीं की जा सकती, इस प्रकार राजा कहते हैं—

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत् पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥४४॥

अन्वय—स्थावरजङ्गमानाम् सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः स मे मान्यः, पुरस्तात् नश्यत् अहिताग्नेः गुरोः अपि इदम् धनम् अनुपेक्षणीयम् ॥४४॥

संस्कृत टीका—स्थावरजङ्गमानाम्=चराचराणाम्, सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः=सृष्टिपालनविनाशकर्त्ता, सः=शिवः, मे=मम, मान्यः=पूजनीयः, आहिताग्नेः=स्थापिताग्नित्रयस्य, गुरोः=वशिष्ठस्य, अपि=समुच्चये, इदंधनम्=नन्दिनीरूपगोधनम्, पुरस्तात्=मम सम्मुख एव, नश्यत्=विनश्यत्, अनुपेक्षणीयम्=उपेक्षितुम् नास्ति ॥४४॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः सिंहं प्रति कथयति यत् यद्यपि सर्वेषाम् चराचराणां सृष्टिस्थितिप्रलयकारकस्य तस्याज्ञा शिरोधार्या वर्तते, परन्तु मम सम्मुख एव गुरोः वशिष्ठस्य पुरो नश्यन्ती धेनुरियं अनुपेक्षणीया वर्तते ॥४४॥

शब्दार्थ—स्थावरजङ्गमानाम्=चर और अचर पदार्थों के। सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः=सृष्टि, रक्षा और प्रलय के कारण। मान्यः=पूज्य। पुरस्तात्=सामने। नश्यत्=नष्ट होता हुआ। अहिताग्नेः=अग्निहोत्र करने वाले। गुरोः=वशिष्ठ का। इदं धनम्=गोरूप यह धन। अनुपेक्षणीयम्=उपेक्षा के योग्य नहीं है ॥४४॥

हिन्दी—चर और अचर, समस्त सृष्टि के उत्पत्ति पालन और नाश को करने वाले शिवजी की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। परन्तु तीन अग्नियों की

स्थापना करने वाले गुरु वशिष्ठ के इस गो-धन की जो मेरे सम्मुख ही नष्ट हो रहा है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ॥४४॥

विशेष—राजा ने कहा कि हे सिंह ? आपका पूर्व कथन सत्य है। सृष्टि की रचना, पालन और संहार करने वाले शिव की आज्ञा मुझे परमादरणीय है, परन्तु मेरे गुरु के अग्निहोत्र यज्ञों को पूर्ण करने वाली यह गाय सुरक्षा में आयी है। इसको अपनी आखों के सामने नष्ट होते हुये भी मैं नहीं देख सकता। यहाँ राजा के सामने दोनों ओर से ही कठिन समस्या का उल्लेख किया गया है ॥४४॥

समास—स्थावरजङ्गमानाम्=स्थावराश्च जंगमाश्च तेषाम् (द्वन्द्व स०) सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः=सर्गश्च स्थितिश्च प्रत्यवहारश्च (द्वन्द्व) तेषाम् हेतुः (षष्ठीतत्पुरुष)। अनुपेक्षणीयम्=न उपेक्षणीयम् (नञ् तत्पुरुष)। आहिताग्नेः =आहिताः अग्नयः येन स तस्य (बहुव्रीहि स०) ॥४४॥

व्याकरण—सर्ग=सृज्+घञ्। स्थिति=स्था+क्तिन्। प्रत्यवहार= प्रति+अव+हृ+घञ्। नश्यत्=नश्+शतृ। उपेक्षणीयम्=उप+ईक्ष्+ अनीयर् ॥४४॥

प्रसंग—इसके बाद राजा अपना शरीर सिंह को अर्पित कर गाय को छुड़ाने के लिये प्रार्थना करता है—

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥४५॥

अन्वय—स त्वम् मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिम् निर्वर्तयितुम् प्रसीद दिनावसानोत्सुकबालवत्सा महर्षेः इयम् धेनुः विसृज्यताम् ॥४५॥

संस्कृत टीका—सः=अङ्कागतसत्त्ववृत्तिः। त्वम्=सिंहः, मदीयेन=मामकेन देहेन=शरीरेण, शरीरवृत्तिम्=शरीरजीविकाम्, निर्वर्तयितुम्=सम्पादयितुम्, प्रसीद=प्रसन्नो भव। दिनावसानोत्सुकबालवत्सा=दिनान्ते उत्कण्ठितबालवत्सा, महर्षेः=वशिष्ठस्य, इयम्=पुरोदृश्यमाना, धेनुः=गौः, विसृज्यताम्= मुच्यताम् ॥४५॥

संस्कृत भावार्थ—राजा सिंहं प्रति कथयति—हे मृगेन्द्र ! त्वं मदीयेन शरीरेण जीवनवृत्तिं सम्पादय। किन्तु सांयकाले समुत्सुकवत्सा महर्षेः वशिष्ठस्य इयं धेनुः विमुच्यताम् ॥४५॥

शब्दार्थ—मदीयेन=मेरे। देहेन=शरीर से। शरीरवृत्तिम्=शरीर-निर्वाह। निर्वर्तयितुम्=पूर्ण करने के लिये। प्रसीद=प्रसन्न हो। दिनावसानोत्सुकबालवत्सा=संध्या के समय बछड़े के लिये उत्सुक। इयं धेनुः=इस गाय को। विसृज्यताम्=छोड़ दो ॥४५॥

हिन्दी—हे मृगराज ! तुम मेरे शरीर से अपने जीवन का निर्वाह करलो। किन्तु दिन की समाप्ति पर उत्कण्ठित बछड़े वाली महर्षि वशिष्ठ की इस गाय को छोड़ दो ॥ ४५ ॥

विशेष—भाव यह कि गोरक्षक राजा सिंह से कहता है कि आप अपनी भूख की शान्ति मेरे शरीर के द्वारा करें। क्योंकि आपका यह नियम है कि यहाँ आये हुये जीव का भक्षण करते हैं अतः इस गाय के बदले मुझे खा लीजिए। और इस गाय को छोड़ दीजिये। क्योंकि यह महर्षि वशिष्ठ की गाय है और संध्या के समय इसका बछड़ा अपनी माँ के लिये उत्सुक होगा। प्रस्तुत श्लोक में सिंह के हृदय में करुणा जागृत करने हेतु "दिनावसानोत्सुकबालवत्सा" गाय का विशेषण साभिप्राय प्रयुक्त होने का कारण परिकर अलंकार है। ४५।

समास—दिनावसानोत्सुकबालवत्सा=दिनस्य अवसाने उत्सुकः बालवत्सः यस्याः सा (बहुव्रीहि स०)

व्याकरण—मदीयेन=अस्मद्+छ (ईय वृत्तिम्=वृत्+क्तिन्। निर्वर्तयितुम्=नि+वृत्+णिच्+तुमुन्। प्रसीद=प्र+षद्+लोट् म० पु० ए० व०। विसृज्यताम्=वि+सृज्+लोट् प्र० पु० ए० व० ॥४५॥

प्रसंग—जब राजा दिलीप गाय के बदले अपने शरीर को अर्पित करने को तैयार हो जाते हैं तब सिंह हँसते हुये कहता है—

> अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन्।
> भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किञ्चिद् विहस्यार्थपतिं बभाषे ॥४६॥

अन्वय—अथ भूतेश्वरपार्श्ववर्ती सः गिरिगह्वराणाम् अन्धकारम् दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् किञ्चिद् विहस्य अर्थपतिम् भूयः बभाषे ॥४६॥

संस्कृत टीका—अथ=राज्ञः वचनश्रवणानन्तरम्, भूतेश्वरपार्श्ववर्ती=शंकरस्य निकटवर्त्ती, सः=सिंहः। गिरिगह्वराणाम्=पर्वतकन्दराणाम्,

अन्धकारम्=तिमिरम्, दंष्ट्रामयूखैः=दन्तानां किरणैः। शकलानि=खण्डानि, कुर्वन्=विदधत्, किञ्चिद्=स्वल्पम्, विहस्य=हास्यं कृत्वा, भूयः=पुनः अर्थपतिम्=राजानम्, बभाषे=उक्तवान् ॥४६॥

संस्कृत भावार्थ—राज्ञः वचनश्रवणनन्तरं सिंहः स्वकीयदन्तकिरणैः गिरिगह्वराणाम् अन्धकारम् खण्डयन् तस्योपरिविहसन् राजा दिलीप पुनः प्रावोचत्।

शब्दार्थ—भूतेश्वरपार्श्ववर्त्ती=भगवान् शिव के समीवर्त्ती अनुचर। गिरिगह्वरणाम्=पर्वत के कन्दराओं के। दंष्ट्रामयूखैः=दाढ़ की किरणों से। शकलानि कुर्वन्=टुकड़े-टुकड़े करते हुये। किञ्चित्=कुछ। विहस्य=हँसकर। अर्थपतिम्=राजा से। बभाषे=बोला ॥४६॥

हिन्दी—इसके पश्चात् भगवान् शंकर के समीप रहने वाला वह सिंह अपने दाँतों की चमक से पर्वत के गुफाओं के अन्धकार के टुकड़े-टुकड़े करता हुआ कुछ हँसी के साथ राजा दिलीप से पुनः कहने लगा ॥४६॥

विशेष—गाय को अपने शरीर का अर्पण करने वाले राजा की बात को सुनकर सिंह कुछ हँसा। जब हँसने के लिये सिंह ने मुँह खोला तो उसके दाँत ऐसे चमके कि जिनकी चमक से गुफाओं का अन्धेरा नष्ट हो गया ॥४६॥

समास—गिरिगह्वराणाम्=गिरेः गह्वराणाम् (षष्ठीतत्पुरुष)। दंष्ट्रामयूखैः=दंष्ट्राणाम् मयूखैः (षष्ठी तत्पुरुष)। भूतेश्वरपार्श्ववर्ती=भूतानाम् ईश्वरस्य पार्श्ववर्त्ती (षष्ठीतत्पुरुष)। अर्थपतिम्=अर्थस्य पतिम् (षष्ठीतत्पुरुष) ॥४६॥

व्याकरण—अन्धकार=अन्ध+कृ+घञ्। गह्वराणाम्=गह्+वरच्। दंष्ट्रा=दश्+ष्ट्रन+टाप्। कुर्वन्=कृ+शतृ। पार्श्ववर्त्ती=पार्श्व+वृत्+इनि। विहस्य=वि+हस्+क्त्वा (ल्यप्) बभाषे=भाष्+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥४६॥

प्रसंग—सिंह राजा के उक्त प्रस्ताव का उपहास करते हुये कहता है—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥४७॥

अन्वय—एकातपत्रम् जगतः प्रभुत्वम् नवम् वयः इदम् कान्तिम् वपुः च, अल्पस्य हेतोः बहु हातुम् इच्छन् त्वम् मे विचारमूढ़ः प्रतिभासि ॥४७॥

संस्कृत टीका—एकातपत्रम्=एकछत्रम्, जगतः=संसारस्य, प्रभुत्वम्=स्वामित्वम्, नवम्,=नवीनम्, वयः=आयुः, कान्तम्=सुन्दरम्। इदम्=पुरोदृश्यमानम्, वपुः=शरीरम्, अल्पस्य=स्वल्पस्य, हेतोः=कारणात्, बहु=अत्यधिकम्, हातुम्=त्यक्तुम्, त्वम्=राजादिलीपः मे=मम, विचारमूढः=कर्तव्याकर्त्तव्ये मूर्खः। प्रतिभासि=प्रतीयसे ॥४७॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः राजानं प्रति कथयति—हे राजन्? तव एकच्छत्रं राज्यम् अवस्थापि नातिदीर्घा, शरीरमपि अत्यन्त सौम्यमस्ति। अतः त्वं अल्पमूल्यायाः धेनोः कृते स्वशरीरं समर्थयन् विमूढः प्रतिभासि ॥३७॥

शब्दार्थ—एकातपत्रम्=एक छत्र। जगतः=संसार का। प्रभुत्वम्=अधिकार, राज्य। नवं वयः=नयी अवस्था। कान्तम्=सुन्दर। वपुः=शरीर। अल्पस्य हेतोः=थोड़े के कारण। हातुम्=छोड़ने की। इच्छन्=इच्छा करते हुये। मे=मुझे। विचारमूढः=विवेकहीन। प्रतिभासि=मालूम पड़ते हो ॥४७॥

हिन्दी—संसार का एकछत्र स्वामित्व और नवीन आयु तथा सुन्दर शरीर इन सब को थोड़ी सी वस्तु की रक्षा के लिये नष्ट करने को तैयार तुम मुझे विचारों से मूर्ख प्रतीत होते हों ॥४७॥

विशेष—ससार में तुम्हारा एकछत्र राज्य है, उस पर भी तुम बुड्ढ़े या मृत्यु के निकट वय वाले नहीं हो, अपितु तुम्हारी नयी उम्र है, तुम्हारा शरीर भी अत्यन्त सुन्दर है। इन सब वैभवों को एक साधारण सी गाय के बदले त्यागने के लिये जो तुम उद्यत हो, इससे मुझे लगता है कि तुम बिलकुल ही विवेकहीन हो।

प्रस्तुत श्लोक में 'मुझे विचारमूढ लगते हो' इस कथन का समर्थन 'थोड़े के लिए बहुत का नाश करने के इच्छुक' इस कथन द्वारा किये जाने के कारण काव्यलिंग अलंकार है ॥४७॥

समास—एकातपत्रम्=एकम् आतपत्रम् यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि.)। विचारमूढ़ः=विचारे मूढः (सप्तमीतत्पुरुष, ॥४७॥

व्याकरण—आतप + त्रा + क =आतपत्र। प्रभुत्वम्=प्रभु+त्वल्। कान्त=कमु+क्त। अल्पस्य हेतोः (षष्ठी विभक्ति) हातुम्=हा+तुमुन्। इच्छन्=इष्+शतृ। प्रतिभासि=प्रति+भा+लट् प्र० पु० ए० व० ॥४७॥

प्रसंग—यदि तुम इतने सब वैभव को राजा होने के कारण प्राणियों पर दया भाव दिखाते हुये त्यागना चाहते हो तो यह भी उचित नहीं है—

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेकाभवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते ।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ॥४८॥

अन्वय—तव भूतानुकम्पा चेत्, त्वदन्ते इयम् एका गौः स्वस्तिमती भवेत् हे प्रजानाथ । जीवन् पुनः पिता इव प्रजाः उपप्लवेभ्यः शश्वत् पासि ॥४८॥

संस्कृत टीका:–चेत्=यदि, तव=भवतः, भूतानुकम्पा=प्राणिदया । त्वदन्ते =तव विनाशे सति, इयम्=एषा पुरो दृश्यमाना, एका=एकसंख्यामात्रा, गौः=धेनुः, स्वस्तिमती=कल्याणयुक्ता, भवेत्=स्यात्, प्रजनाथ?=हे राजन् ? दिलीपः, पुनः=मुहुः, जीवन्=प्राणम् धारयत्,पिता इव=जनक इव,प्रजाः= लोकाः । शश्वत्=निरन्तरम्, उपप्लवेभ्यः=उपद्रवेभ्यः । पासि=रक्षसि ।४८॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः कथयति—हे राजन् । धेनोः रक्षणार्थं स्वशरीरं एवं विचार्य समर्पयसि यत् प्राणिषु दया तव कर्त्तव्यमस्ति तदपि नोपयुक्तम यतः तव शरीरे नष्टे सति इयमेका नन्दिनी एव कल्याणवती भविष्यति यदि जीवन धारयसि तर्हि बहूनां प्रजानां विविधोपद्रवेभ्यः रक्षां करिष्यसि ॥४८॥

शब्दार्थ—भूतानुकम्पा=जीवों पर दया । त्वदन्ते=आपके न रहने पर। इयम्=यह। एका गौः=अकेली गाय । स्वस्तिमती=कल्याणयुक्ता । प्रजानाथ =प्रजापालक । जीवन=जीवित रहते हुये। पिता इव=पिता के समान। प्रजाः = प्रजाओं । उपप्लवेभ्यः=उपद्रवों से । शश्वत्=सदैव । पासि=रक्षा करोगे ॥४८॥

हिन्दी—यदि तुम्हारी जीवों पर दया है तो तुम्हारे समाप्त होने पर एक यही धेनु कल्याणमती होगी । परन्तु हे प्रजा के स्वामी प्राणों को धारण करते हुये तुम पिता के समान जनता की निरन्तर उपस्थित होने वाले उपद्रवों से रक्षा करते हो ॥४८॥

विशेष—सिंह ने कहा कि तुम अपने शरीर को यह विचार कर त्यागने के लिये उद्यत हो कि तुम प्राणियों पर दया-भाव रखते हो तब भी ठीक नहीं है । क्यों कि तुम्हारे शरीर का नाश होने पर केवल इस नन्दिनी गाय का भला होगा । परन्तु अन्य समस्त शरीर का जनता एवं जन्तुवर्ग को विशेष

दुःख पहुँचेगा। क्योंकि तुम उनकी हमेशा आने वाले उपद्रवों से रक्षा करते हो। तुम्हारे मर जाने पर उनकी रक्षा कौन करेगा? अतः इसके कारण तुम्हारा मरण उचित नहीं होगा। प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। पिता उपमान, प्रजानाथ उपमेय, उपद्रवों से रक्षा करना साधारण धर्म तथा इव उपमा का वाचक है ॥४८॥

समास—भूतानुकम्पा=भूतेषु अनुकम्पा (सप्तमी तत्पुरुष) प्रजानाथ ?=प्रजानां नाथः (षष्ठी तत्पुरुष) ॥४८॥

व्याकरण—अनुकम्पा=अनु+कम्प्+अच्+टाप्। भवेत्=भू+लिङ् प्र० पु० ए० व०। स्वस्तिमती=स्वस्ति+मतुप्+ङीप्। जीवन्=जीव+शतृ। उपप्लव=उप+प्लु+अच्। पासि=पा+लट् म० पु० ए० व० ॥४८॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह कहता है कि भूतों पर दयादृष्टि के विचार से तुम्हारा मरण उचित नहीं है। क्यों कि तुम करोड़ों गायें देकर गुरु को प्रसन्न कर सकते हो—

अथैकधेनोरपराधचण्डाद् गुरोः कृशानुप्रतिमाद् बिभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोध्नीः॥४९।

अन्वय—अथ एकधेनोः अपराधचण्डात् कृशानुप्रतिमाद् गुरोः बिभेषि, अस्य मन्युः कोटिशः घटोध्नीः गाः स्पर्शयता भवता विनेतुं शक्यः ॥४९॥

संस्कृत टीका—अथ=अथवा, एकधेनोः=केवलनन्दिन्या, अपराधचण्डात्=अरक्षणापराधेन अत्यन्तकुपितात्, कृशानुप्रतिमात्=वह्नितुल्यात्, गुरोः=वशिष्ठात्, बिभेषि=भयं करोषि, तर्हि अस्य=गुरोः वशिष्ठस्य, मन्युः=क्रोधः, कोटिशः=असँख्याः, घटोध्नीः=कुम्भतुल्यः विशालदुग्धाशयाः, गाः=धेनवः, स्पर्शयता=ददता, भवता=त्वया, विनेतुम्=दूरीकर्तुम्, शक्यः=सम्भवः ॥४९॥

संस्कृत भावार्थ—सिंहः कथयति—यत् हे राजन्? यदि त्वं नन्दिन्या अरक्षणात् अग्निसदृशात् गुरोः बिभेषि तदपि नोपयुक्तम्। यतः भवता कोटिशः गाः प्रदाय गुरुम् विनेतुं शक्यते ॥४९॥

शब्दार्थ—एकधेनोः=एकगाय के। अपराधचण्डात्=अपराध से क्रोधित।

कृशानुप्रतिमात्=अग्नि के समान तेजस्वी। बिभेषि=डरते हो। मन्युः=क्रोध। घटोध्नीः=घड़ो दूध देने वाली। कोटिशः=करोड़ो। गाः=गायों को। स्पर्शयता=देने से। विनेतुम्=दूर करने के लिये। शक्यः=समर्थ है ॥४९॥

हिन्दी—हे राजन्! इस एक गाय की रक्षा न करने के अपराध से अत्यन्त क्रुद्ध होने वाले अग्नि के समान गुरु वशिष्ठ के भय करते हो तो गुरु के क्रोध को घड़े के समान विशाल थन वाली करोड़ों गायों को देकर तुम दूर कर सकते हो ॥४९॥

विशेष—सिंह ने कहा यदि स्वयम् को मुझे इसलिए प्रस्तुत कर रहे हो कि इस गाय की रक्षा न कर सकने के कारण अग्नि के समान तेजस्वी गुरु वशिष्ठ अत्यन्त नाराज होकर शाप दे देंगे तो इसका भय तुम्हें नहीं करना चाहिये; क्योंकि आप एकच्छत्र राजा हैं और इस एक गाय के बदले में गुरु को अधिक दूध देने वाली असंख्य गायें देकर प्रसन्न कर सकते हैं। प्रस्तुत श्लोक में "कृशानुप्रतिमाद्" तथा 'घटोध्नीः' में उपमा अलंकार है।

समास—अपराधचण्डात्=अपराधे चण्डात् (सप्तमी तत्पुरुष)। एकधेनोः=एका धेनुः यस्य सः तस्मात् (बहुव्रीहि)। कृशानुप्रतिमात्=कृशानुः प्रतिमा यस्य सः तस्मात् (बहुव्रीहि)। घटोध्नीः=घटा इव ऊधांसि यासां ताः (बहुव्रीहि) ॥४९॥

व्याकरण—अपराध=अप+राध्+घञ् (अ)। बिभेषि=भी लट् म० पु० ए० व०। शक्यः=शक्+यत्। विनेतुम्=वि+नी+तुमुन्। स्पर्शयता=स्पर्श+णिच्+शतृ। 'गुरोः बिभेषि' इस उदाहरण में 'गुरोः' में "भीत्रार्थानां भयहेतुः" से पंचमी है ॥४९॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह राजा को अपने शरीर की रक्षा करने का उपदेश देते हुये कहता है—

> तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।
> महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥५०॥

अन्वय—तत् कल्याणपरम्पराणाम् भोक्तारम् ऊर्जस्वलम् आत्मदेहम् रक्ष। हि ऋद्धम् राज्यम् महीतलस्पर्शमात्रभिन्नम् ऐन्द्रम् पदम् आहुः ॥६०॥

संस्कृत टीका—तत्=तस्मात् कारणात् कल्याणपरम्पराणाम्=मंगलमयभोगसमूहानाम्, भोक्तारम्=अनुभवितारम्, ऊर्जस्वलम्=बलवत्, आत्मदेहम् = स्वकीयं शरीरम्, रक्ष = त्रायस्व। हि = यतः, ऋद्धम्=

राज्यम्=राजभावम्। महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्=भूतलस्य सम्बन्धमात्रेण भेदयुक्तम्, ऐन्द्रम्=इन्द्रसम्बन्धिनम्। पदम्=स्थानम्, आहुः=कथयन्ति ॥५०॥

संस्कृत भावार्थ—तस्मात् कारणात् हे राजन्! अनेकमंगलमयपरम्पराणां भोक्तारम् स्वकीयं शरीर त्रायस्व। यतः श्रेष्ठपुरुषाः समृद्धं राज्यम् इन्द्रस्य पद कथयन्ति। द्वयोःइदमेवान्तरं यत् भूतलराज्यम् पृथिव्यां भवति। ऐन्द्रं पद च स्वर्गे भवति ॥५०॥

शब्दार्थ–कल्याणपरम्पराणाम्=कल्याणमय परम्पराओं के। भोक्तारम्=भोग करने वाले। उर्जस्वलम्=बलयुक्त। आत्मदेहम्=अपने शरीर की। रक्ष=रक्षा करो। ऋद्धम्=समृद्धशाली। महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्=पृथ्वातल के सम्बन्ध मात्र से भिन्न। ऐन्द्रम्=इन्द्र सम्बन्धी। पदम्=स्थान। आहुः=कहते हैं ॥५०॥

हिन्दी—इसलिये हे राजन्? कल्याणों की परिपाटियों का उपभोग करने वाले तथा बलशाली अपने शरीर की रक्षा करो। क्योंकि समृद्ध राज्य को विद्वानों ने भूतल से सम्बन्ध होने के कारण पृथक् हुआ इन्द्र का पद कहते हैं ॥५०॥

विशेष—इस कारण हे राजन्! पहले तुम्हें अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि इस गाय के बदले तुम अपने शरीर को देकर स्वर्ग चाहते हो किन्तु तुम्हारा राज्य इन्द्रलोक से कम नहीं है। तुम्हारे राज्य और इन्द्रलोक में यही अन्तर है कि आपका राज्य पृथ्वीतल संस्पर्शी है जब कि इन्द्रलोक पृथ्वी के स्पर्श से रहित है। अतः स्वर्ग के समान राज्य के सुख को भोगो। प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है ॥५०॥

समास—कल्याणपराम्पराणाम्=कल्याणानाम् परास्परा: तासाम् (षष्ठी तत्पुरुष)। आत्मदेहम्=आत्मनः देहम् (षष्ठी तत्पुरुष स०)। महीतलस्पर्शमात्रभिन्नम्=महीतलस्य स्पर्शनम् (षष्ठी तत्पुरुष) तदेव महीतलस्पर्शनमात्रम्, तेन भिन्नम्=(तत्पुरुष) ॥५०॥

व्याकरण—रक्ष=रक्ष+लोट् म० पु० ए० व०। भोक्तारम्=भुज्+तृच्। उर्जस्वलम्=ऊर्जस्+वलच्। ऐन्द्रम्=इन्द्र+अण् ॥५०॥

प्रसंग—इसके बाद सिंह के चुप हो जाने के पर उसी बात का समर्थन मानो पर्वत ने भी किया इसका वर्णन करते हुये कहते है—

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ॥५१॥

अन्वय—एतावद् उक्त्वा मृगेन्द्रे विरते अस्य गुहागतेन प्रतिस्वनेन शिलोच्चयः अपि क्षितिपालम् प्रीत्या तम् एव अर्थम् उच्चैः अभाषत इव ॥५१॥

संस्कृत टीका—मृगेन्द्रे=सिंहे, एतावत्=एतन्मात्रम्, उक्त्वा=कथयित्वा, विरते सति=उपरते सति, गुहागतेन=कन्दरायां सम्प्राप्तेन, अस्य=सिंहस्य, प्रतिस्वनेन=ध्वनिना। शिलोच्चयः=पर्वतः अपि, प्रीत्या=स्नेहेन, तमेव-अर्थम्=पूर्व कथितमेव भावम्, शितिपालम्=राजानम्, उच्चैः=उच्चस्वरेण, अभाषत=अकथयत्, इव=यथा ॥५१॥

संस्कृत भावार्थ—एवं कथयित्वा सिंहे विरते सति गुहागतेन प्रतिध्वनिना पर्वतोऽपि मन्ये प्रेम्णा सिंहस्य तमेव वचनं समर्थयतिस्म ॥५१॥

शब्दार्थ—मृगेन्द्रे=शेर के,। एतावद्=इतना। उक्त्वा=कहकर। विरते=चुप हो जाने पर। गुहागतेन=कन्दरा मे व्याप्त। प्रतिस्वनेन=प्रतिध्वनि से। शिलोच्चयः अपि=पर्वत भी। प्रीत्या=प्रेमपूर्वक। तमेव अर्थम्=उसी बात को। क्षितिपालम्=राजा से। उच्चैः=ऊँचे स्वर से। अभाषत=कहा ॥५१॥

हिन्दी—सिंह के इतना कहकर चुप हो जाने पर कन्दरा से प्राप्त प्रतिध्वनि के द्वारा ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पर्वत भी प्रेम के कारण सिंह की बात का ही समर्थन कर रहा हो ॥५१॥

विशेष—सिंह के इतना कहकर चुप हो जाने पर उसका कथन पर्वत की कन्दराओं में व्याप्त होकर प्रतिध्वनित हो रहा था और ऐसा लग रहा था। मानो पर्वत भी सिंह के वचनों का समर्थन उच्च स्वर से कर रहा हो। प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥५१॥

समास—मृगेन्द्रे=मृगाणाम् इन्द्रे (षष्ठी तत्पुरुष)। गुहागतेन=गुहाम् गतः तेन (द्वितीया तत्पुरुष)। शिलोच्चयः=शिलानाम् उच्चयः (षष्ठी तत्पुरुष)। क्षितिपालम्=क्षितिं पालयतीति तम् (उपपद समास) ॥५१॥

व्याकरण—एतावत्=एतद्+मतुप्। उक्त्वा=वच्+क्त्वा। विरते=

वि + रम् + क्त । प्रतिस्वनेन = प्रति + स्वन् + अप् । उच्चयः = उत् + चि + अच् । अभाषत = भाष् + लुङ् प्र० पु० ए० व० ॥५१॥

प्रसंग—सिंह के इस प्रकार कहे हुये वचनों को सुनकर राजा अत्यन्त दुःखी होकर सिंह से पुनः कहने लगा—

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच ।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥५२॥

अन्वय—देवानुचरस्य वाचम् निशम्य तदध्यासितकातराक्ष्या धेन्वा निरीक्ष्यमाणः सुतराम् दयालुः मनुष्यदेवः पुनः अपि उवाच ॥५२॥

संस्कृत टीका—देवानुचरस्य = शिवसेवकस्य कुम्भोदरस्य, वाचम् = उच्चरितम्, निशम्य = श्रुत्वा, मनुष्यदेवः = राजा दिलीपः, तदध्यासितकातराक्ष्या = सिंहस्य आक्रमणेन भयाकुलनेत्रयाः, धेन्वा = नन्दिन्या, निरीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, सुतराम् = अत्यन्तम् । दयालुः = करुणायुक्तः । पुनरपि उवाच = अकथयत् ॥५१॥

संस्कृत भावार्थ—महादेवानुचरस्य सिंहस्य पूर्वोक्तप्रकारं वचनं श्रुत्वा राजा दिलीपः सिंहस्य आक्रमणेन व्याकुललोचनया नन्दिन्या यदा अवलोकितः, तदा दयालुः राजा पुनरपि सिंहं प्रत्युवाच ॥५२॥

शब्दार्थ—देवानुचरस्य = भगवान् शिव के अनुचर के । वाचः = वाणी को । निशम्य = सुनकर । मनुष्यदेवः = राजा दिलीप । तदध्यासितकातराक्ष्या = सिंह से आक्रान्त होने से कातर नेत्रों वाली । धेन्वा = गाय के द्वारा । निरीक्ष्यमाणः = देखे जाते हुये । सुतराम् = अत्यन्त । दयालुः = दयायुक्त । उवाच = बोले ॥५२॥

हिन्दी—भगवान् शंकर के सेवक शिव के वचनों को सुनकर मनुष्यों के स्वामी राजा दिलीप सिंह के द्वारा दबाये जाने के कारण अत्यन्त व्याकुल नेत्रों से देखने वाली नन्दिनी को देखकर अत्यन्त दयालु राजा ने फिर सिंह से कहा ॥५२॥

विशेष—सिंह ने राजा को कई युक्तियों से समझाया फिर भी राजा अपना विचार बदलने को तैयार नहीं था । इसके अतिरिक्त सिंह के द्वारा दबाई हुई नन्दिनी ने जब कातर नेत्रों से रक्षा की भीख मांगती हुई के समान

देखा तो उसका हृदय और भी करुणा से भर गया। प्रस्तुत श्लोक में 'तदाध्यासितकातराक्ष्या' और 'दयालुः' ये दोनों ही विशेषण सारगर्भित है क्योंकि गाय की इस दशा को देखकर राजा अपने मन्तव्य पर और दृढ़ हो जाता है। क्योंकि दया विशेष बढ़ जाती है। अतः यहाँ परिकर अलंकार है ॥५२॥

समास—देवानुचरस्य=देवस्य अनुचरः तस्य (षष्ठी तत्पुरुष)। मनुष्यदेवः =मनुष्येषु देवः (सप्तमी तत्पुरुष)। तदाध्यासितकातराक्ष्या=तस्य अध्यासितेन कातरे अक्षिणी यस्याः सा तया (बहु०) ॥५२॥

व्याकरण—निशम्य=नि+शम्+क्त्वा (ल्यप्)। अनुचर=अनु+चर्+ट। उवाच=वच्+लिट् प्र०पु०ए०व०। निरीक्ष्यमाणः=निर्+ईक्ष्+यक्+शानच्। दयालुः=दय्+आलुच् ॥५२॥

प्रसंग—सिंह के अनेक प्रकार से समझाये जाने पर भी राजा दिलीप अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता है, इसका वर्णन करते हुये कहते हैं—

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥५३॥

अन्वय—क्षतात् किल त्रायते इति उदग्रः क्षत्रस्य शब्दः भुवनेषु रूढ़ः। तद्विपरीतवृत्तेः राज्येन किम् वा उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किम् ॥५३॥

संस्कृत टीका—क्षतात्=नाशात्, किल=निश्चयेन, त्रायते=रक्षति, इति अस्माद्धेतोः, उदग्रः=उन्नतः, क्षत्रस्य=क्षत्रियवर्णसूचकस्य शब्दः=वाचकः, भुवनेषु=लोकेषु रूढ़ः=प्रसिद्धः, तद्विपरीतवृत्तेः=क्षत्रशब्दविरुद्धव्यवहारस्य, राज्येन=शासनेन, किम्=को लाभः? वा=अथवा, उपक्रोशमलीमसैः=निन्दया मलिनैः, प्राणैः=जीवनैः, किम्=किं प्रयोजनम् ॥५३॥

संस्कृत भावार्थ—राजा कथयति—यत् देवानुचर? क्षतात् नाशात् त्रायते रक्षति इति अस्मिन् भावे क्षत्रियशब्दः संसारे प्रसिद्धः। अहमपि क्षत्रियोऽस्मि अतः ममापि कर्तव्यमस्ति नन्दिन्याः रक्षणम्। यदि कोऽपि क्षत्रियः नाशार्थिनं न त्रायते, न सः क्षत्रियः। तस्य राज्येन को लाभः? अथवा अस्यां मृतायां अहं लोकनिन्दां प्राप्स्यामि। निन्दायुक्तेन जीवनेन किं प्रयोजनमस्ति ॥५३॥

शब्दार्थ—उदग्रः=उन्नत। क्षतात्=विनाश से। त्रायते=रक्षा करता

है। भुवनेषु=लोको में। रूढ़:=प्रसिद्ध है। तद्विपरीतवृत्त:=उसके विपरीत आचरण वाले। राज्येन=राज्य से। उपक्रोशमलीमसै:=निन्दा से मलिन। प्राणै:=प्राणों से। किम्=क्या लाभ है? ॥५३॥

हिन्दी—'विनाश से जो रक्षा करता है' इस प्रकार की व्युत्पत्ति वाला 'क्षत्र' शब्द संसार में विख्यात है। उससे विपरीत चलने वाले मुझे राज्य से क्या लाभ है? अथवा निन्दा से मलिन हुये प्राणों को धारण करने से क्या लाभ? ॥५३॥

विशेष—राजा ने सिंह से कहा कि क्षत्रिय शब्द का अर्थ क्षत अर्थात् नाश से रक्षा करना है। जो दूसरों को नष्ट होने से बचाता है वही वास्तविक क्षत्रिय है। मैं भी क्षत्रिय हूँ और मेरा भी कर्तव्य है कि मैं गाय की रक्षा करूँ। यदि मैं इस गाय को अपने प्राण के लोभ में मर जाने देता हूँ, तो फिर राज्य करने से क्या लाभ? क्योंकि राज्य भी इन्हीं की रक्षा हेतु किया जाता है। जब मैं इसकी रक्षा नहीं कर सकता तो संसार में मेरी निन्दा हो जायेगी। निन्दित प्राणों को धारण कर क्या करूँगा? ॥५३॥

समास—तद्विपरीतवृत्त:=तस्य विपरीता वृत्ति: यस्य स: तस्य (बहुव्रीहि)। उपक्रोशमलीमसै:=उपक्रोशेन मलीमसै: तृतीया तत्पुरुष)। उदग्र:=उद्गतं अग्रं यस्य स: (बहुव्रीहि) ॥५३॥

व्याकरण—त्रायते=त्रै+लट् प्र० पु० ए० व०। वृत्ति: = वृत्+क्तिन् ॥५३॥

प्रसंग—राजा सिंह से नन्दिनी को असामान्य गाय बताते हुये कहता है—

> कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षे: विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।
> इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयाऽस्याम् ॥५४॥

अन्वय—अन्यपयस्विनीनाम् च विश्राणनात् महर्षे: अनुनय: कथं नु शक्य:? इमाम् सुरभे: अनूनाम् अवेहि। त्वया तु अस्याम् रुद्रौजसा प्रहृतम् ॥५४॥

संस्कृत टीका—अन्यपयस्विनीनाम्=अन्यप्रशस्तदुग्धानाम्। विश्राणनात्=दानात्। महर्षे:=गुरो: वशिष्ठस्य। अनुनय:=क्रोधस्योपशम:। कथ नु=केन प्रकारेण। शक्य:=सम्भव:। इमाम्=नन्दिनीम्। सुरभे:=कामधेनो:।

अनूनाम्=अधिकाम्। अवेहि=जानीहि। त्वया=भवता। तु अस्याम्=धेन्वाम्। रुद्रौजसा=शिवस्य बलेन। प्रहृतम्=प्राहारो विहितः ॥५४॥

संस्कृत भावार्थ—राजा सिंह प्रति कथयति—हे सिंह ? त्वया प्रोक्तं यत् असंख्याः बहुक्षीराः गाः दत्वा गुरोः क्रोधापनयं कर्तुं शक्यते तन्नोपयुक्तम्, यत् त्वया आक्रान्ता इयम् धेनुः काचित् सामान्या गौः नास्ति, अपितु कामधेनु-तुल्या अस्ति। त्वया यदस्याम् आक्रमणं कृतं। तत्तु शिवप्रभावो, न तावकीनं बलम् ॥५४॥

शब्दार्थ—अन्यपयस्विनीनां=अन्य गायों के। विश्राणनात्=दान से। महर्षेः=वशिष्ठ के। अनुनयः=शान्ति, क्रोध की शान्ति। कथं नु=कैसे। शक्यः=किया जा सकता ? इमाम्=नन्दिनी को। सुरभेः=कामधेनु से। अनूनाम्=कम नहीं। अवेहि=समझो। रुद्रौजसा=रुद्रभगवान् शिव के प्रभाव से। प्रहृतम्=प्रहार किया है ॥५४॥

हिन्दी—दूसरी अधिक दुग्ध देने वाली गायों के दान से महर्षि वशिष्ठ का क्रोध कैसे शान्त किया जा सकता है ? क्यों कि इस गाय को कामधेनु से कम मत समझिए। आप ने भगवान् शिव के प्रभाव से इस पर आक्रमण किया है ॥५४॥

विशेष—राजा सिंह से कहता है—हे सिंह ! तुम इस गाय को इतना सामान्य समझकर कहते हो कि गुरु को अन्य असंख्य गाये देकर प्रसन्न कर सकते हो यह ठीक नहीं हैं। क्योंकि यह कोई सामान्य गाय नहीं है। यह कामधेनु के तुल्य है। अतः इसके बदले में करोड़ों गायें देने पर भी गुरु वशिष्ठ को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है ? और जो तुमने इस पर आक्रमण कर दिया है वह तुम्हारा बल नहीं, अपितु शिव का प्रभाव है ॥५४॥

समास—रुद्रस्य ओजसा (षष्ठी तत्पुरुष स०)। महान् चासौ ऋषिः महर्षिः (कर्मधारय) ॥५४॥

व्याकरण—कथम्=किम्+थमु। शक्यः=शक्+यत्। अनुनयः=अनु+नी+अच्। विश्राणनात्=वि+श्रण्+णिच्+ल्युट् (अन)। पयस्विनी=पयस्+विनि+ङीप्। प्रहृतम्=प्र+हृ+क्त। अवेहि=अव+इ+लोट् म० पु० ए० व० ॥५४॥

प्रसंग—राजा सिंह से कहता है कि 'इस गाय के बदले मेरे शरीर से अपना भोजन कर लो'—

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥५५॥

अन्वय—सा इयम् मया स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण भवत्तः मोचयितुम् न्याय्या । एवम् तव पारणा विहता न स्यात्, मुनेः क्रियार्थः च अलुप्तः भवेत् ॥५५॥

संस्कृत टीका—सा इयम्=एवंविधा गौः नन्दिनी, मया=दिलीपेन, स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण=आत्मनः शरीरस्य प्रदानमूल्येन, भवत्तः=त्वत्तः, मोचयितुम् । न्याय्या=न्याययुक्ता । एवम्=अनेन प्रकारेण । तव=भवतः, पारणा=उपवासान्तभोजनम्, विहता=विनष्टा । न स्यात्=न भवेत्, मुनेः=वशिष्ठस्य, क्रियार्थश्च=होमादिक्रियाणां प्रयोजनम्, अलुप्तः न भवेत्=विनष्टः न स्यात् ॥५५॥

संस्कृत भावार्थ—राजादिलीपेनोक्तम्—यदेवंविधा कामधेनुतुल्या नन्दिनी मया स्वदेहदानेन रक्षणीया अस्ति । अतः भवान् मम देहं भक्षयित्वा स्वव्रतपारणां करोतु । एवं प्रकारेण भवतः अग्रागतस्य जीवस्य भक्षणात् व्रतपारणाऽपि भविष्यति । गुरोश्च होमादिकार्याणां प्रयोजनमपि न नंक्ष्यति ॥५५॥

शब्दार्थ—स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण=अपने शरीर के प्रदान रूप मूल्य के द्वारा । भवत्तः=आप से । मोचयितुम्=छुड़ाना । न्याय्या=उचित है । पारणा=व्रत के अन्त का भोजन । विहता=नष्ट । न स्यात्=नहीं होगा । मुनेः=वशिष्ठ की । क्रियार्थः=होमादि क्रियाओं का । अलुप्तः=विनष्ट न स्यात्=नहीं होगा ॥५५॥

हिन्दी—इस प्रकार की नन्दिनी को अपने शरीर को अर्पित कर आपसे छुड़ाना न्याययुक्त है । इस प्रकार आपके व्रत का पारण भी हो जायेगा और मुनि के हवन इत्यादि कार्यों का नाश भी नहीं होगा ॥५५॥

विशेष—राजा ने सिंह से कहा कि यह नन्दिनी कामधेनु के समान है । इसलिये इसकी रक्षा करना मेरा धर्म है । अतः इसके बदले में आप मेरे शरीर का भक्षण करलो । इससे आपके नियम का पालन हो जायेगा । साथ ही मेरे

गुरु की भी हवन इत्यादि कार्यों का प्रयोजनभूत यह नन्दिनी नष्ट होने से बच जायेगी ॥५५॥

समास –स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण=स्वस्य देहस्य अर्पणम् एव निष्क्रयः तेन (कर्मधारय)

व्याकरण—अर्पणः=ऋ+णिच्+पुक्+ल्युट् (अन)। निष्क्रय=निस्+क्री+अच्। न्याय्या=न्याय+यत्। मोचयितुम्=मुच्+णिच्+तुमुन्। भवत्तः=भवत्+तसिल्। विहता=वि+हन्+क्त+टाप् ॥५५॥

प्रसंग—इस प्रकार नन्दिनी का विनाश कर गुरु के सामने किस प्रकार उपास्थित होऊँगा? राजा इस बात का वर्णन करते हुये कहता है—

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ।
स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥५६॥

अन्वय—भवान् अपि परवान् इदम् अवैति हि देवदारौ तव महान् यत्नः, रक्ष्यम् विनाश्य स्वयमक्षतेन नियोक्तुः अग्रे स्थातुम् न शक्यम् ॥५६॥

संस्कृत टीका—भवान्=त्वम्, अपि=समुच्चये, परवान्=परतन्त्रः। इदम्=एतत्। अवैति=जानाति। हि=यतः। देवदारौ=देवदारुनामके वृक्षे। तव=सिंहस्य। महान्=अत्यधिकः। यत्नः=प्रयासः। रक्ष्यम्=रक्षायोग्यम्। विनाश्य=नाशयित्वा। स्वयमक्षतेन=स्वयम् क्षतरहितेन। नियोक्तुः=नियोजनस्य। अग्रे=संमुखे। स्थातुम्=अधिष्ठातुम्। न शक्यम्=न समर्थम् ॥५६॥

संस्कृत भावार्थ—राजा कथयति—यत् भवानपि शिवस्य सेवकोऽस्ति। अतः एतज्जानाति यत् सेवकः सर्वदा पराधीनवृत्तिः भवति। भवानपि पुरोदृश्यमानस्य देवदारोः वृक्षस्य रक्षणार्थं प्रयत्नं करोति। अतः अहमपि त्वमिव पराधीनवृत्तिः अस्मि। कोऽपि सेवकः स्वामिनः अग्रे रक्षणीयम् वस्तु विनाश्य कथं गन्तुं समर्थोऽस्ति। अतः मया एकः प्रयत्नः करणीयः, येन नन्दिनी रक्षिता भवेत् ॥५६॥

शब्दार्थ—भवान्=आप। परवान्=परतन्त्र। इदम्=यह बात। अवैति=जानते हैं। देवदारौ=देवदारु की पेड़ की रक्षा में। महान् प्रयत्नः=महान प्रयास है। रक्ष्यम्=रक्षा के योग्य। विनाश्य=विनाश कराकर।

स्वयमक्षतेन=स्वयं बिना घायल हुये। नियोक्तु:=नियोजक स्वामी के। अग्रे = सामने। स्थातुम्=ठहरने में। न शक्यम् = समर्थ नहीं हो सकते ॥५६॥

हिन्दी—आप भी पराधीन हैं और इस बात को भी जानते हैं कि आप देवदारु की रक्षा करने का महान् प्रयत्न करते हैं; क्योंकि रक्षा करने योग्य वस्तु का विनाश करके स्वयं बिना किसी चोट खाये स्वामी के सम्मुख सेवक कैसे खड़ा रह सकता है? ॥५६॥

विशेष—राजा ने सिंह से कहा—कि आप भी मेरी तरह परतन्त्र है। आपको भी शिवजी ने इस वृक्ष की रक्षा करने के लिये नियुक्त किया है। आप इस वृक्ष की रक्षा पूर्ण प्रयत्न से करते हैं। इस प्रकार यह निश्चित है कि सेवक को स्वामी द्वारा सम्हलाये गये रक्षणीय पदार्थ की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। यदि किसी कारणवश वह रक्षणीय वस्तु नष्ट हो जाती है। तो सेवक स्वामी के सम्मुख कैसे जा सकता है? जब कि रक्षक के कोई चोट भी नहीं आई है। अतः मैं स्वयम् नष्ट हुये बिना इस नन्दिनी को नष्ट नहीं होने दूँगा ॥५६॥

व्याकरण—परवान्=पर+मतुप्। अवैति=अव+इ+लट् प्र० पु० ए० व०। यत्न:=यत्+नङ्। स्थातुम्=स्था+तुमुन्। नियोक्तु:=नि+युज्+तृच्। शक्यम्=शक+यत्। रक्ष्यम्=रक्ष+यत्। विनाश्य=वि+नश्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) ॥५६॥

प्रसंग—इस भौतिक शरीर की अपेक्षा यश रूपी शरीर श्रेष्ठ है। इस बात का वर्णन करते हुये राजा कहता है—

> **किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।**
> **एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥५७॥**

अन्वय—किमपि अहम् तव अहिंस्यः मतः चेत् मे यशःशरीरे दयालुः भव। एकान्तविध्वंसिषु भौतिकेषु पिण्डेषु मद्विधानाम् अनास्था खलु ॥५७॥

संस्कृत टीका—किमपि=किं वा यदि, अहम्=दिलीपः, तव=भवतः, अहिंस्यः=अवध्यः, मतः=सम्मतः, चेत्=तर्हि, मे=मम, यशःशरीरे=कीर्तिकलेवरे, दयालुः=कृपालुः, भव=भवेः, एकान्तविध्वंसिषु=अनिवार्य-

रूपेण विनाशशीलेषु, भौतिकेषु=पृथिव्यादि महाभूतविकारेषु, पिण्डेषु=शरीरेषु, मद्विधानाम् = मादृशानाम्, अनास्था = अविश्वासः, खलु = निश्चयेन ॥५७॥

संस्कृत भावार्थ—राजा कथयति—यत् हे शिवगण ? केनापि कारणेन तव विचारे अहम् अवध्योऽस्मि, तर्हि मम यशःशरीरस्य रक्षां कुरु। यतश्च केनापि प्रकारेण पृथिव्यादिपञ्चभूतविनिर्मितम् इदं शरीरं अवश्यमेव नष्टं भविष्यति, किन्तु चिरस्थायि भवति। अतः क्षणविध्वंसिषु भौतिकशरीरेषु मम कापि आस्था न विद्या ॥५७॥

शब्दार्थ—किमपि=किसी कारण। अहम्=मैं। अहिंस्यः=अवध्य। मे=मेरे। यशःशरीरे=यश रूपी शरीर पर। दयालुः भव=दया कीजिये। मद्विधानाम्=मेरे समान व्यक्तियों की। एकान्तविध्वंसिषु=निश्चित नश्वर। भौतिकेषु=पांच भूतों से निर्मित। पिण्डेषु=शरीर के प्रति। अनास्था=अविश्वास ॥५७।

हिन्दी—यदि किसी कारणवश मैं आपके द्वारा अवध्य हूँ तो मेरे यशरूपी शरीर पर दया करो। क्योंकि मेरे जैसे लोगों की अवश्य नष्ट होने वाले पृथिव्यादि पाँच महाभूतों से बने शरीर में आस्था नहीं होती है ॥५७॥

विशेष—राजा ने कहा—हे सिंह ! किसी कारणवश आप मुझे मारना उचित नहीं समझते हैं तो मेरे कीर्तिरूपी शरीर पर दया कीजिये। क्योंकि मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यह पाँच महाभूतों से बना यह शरीर एक दिन अवश्य नष्ट होगा और मैं इस शरीर से श्रेष्ठ कीर्ति को मानता हूँ। इस नन्दिनी के कष्ट होने पर मेरा यश रूपी शरीर नष्ट हो जायेगा। अतः आप मेरे इस भौतिक शरीर के रक्षा को छोड़कर कीर्ति रूपी शरीर के प्रति रक्षा के प्रति दयाभाव दिखाइये ॥५७॥

समास—अहिंस्यः=न हिंस्यः (नञ् तत्पुरुष)। एकान्तविध्वंसिषु=एकान्तः विध्वंसः येषां ते तेषु (बहुव्रीहि) ॥५७॥

व्याकरण–अहिंस्यः=न+हिंस्+यत्। दयालुः=दय्+आलुच्। भौतिक=भूत+ठक् ॥५७॥

प्रसंग—अब राजा दिलीप सिंह से अपनी प्रार्थना को स्वीकार करने के लिये समर्थन करते हुए कहते हैं—

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते ।
तद् भूतनाथानुग नार्हसि त्वां सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥५८॥

अन्वय—सम्बन्धम् आभाषणपूर्वम् आहुः, सः वनान्ते संगतयोः नौ वृत्तः । तत् भूतनाथानुग ! त्वम् सम्बन्धिनः मे प्रणयम् विहन्तुम् न अर्हसि । ५८॥

संस्कृत टीका—सम्बन्धम्,=सख्यम्, अभाषणपूर्वम्=पारस्परिकवार्तालापपूर्वम्, आहुः=कथयन्ति, सः=सख्यसम्बन्धः, वनान्ते=वनप्रदेशे, संगतयोः=मिलितयोः, नौ=आवयोः, वृत्तः=सजातः, तद्=तस्मात्कारणात्, भूतनाथानुग !=शिव सेवक !, त्वम्=भवान्, सम्बन्धिनः=सख्युः, मे=मम, प्रणयम् = स्नेहम्, विहन्तुम् = नाशयितुम्, न अर्हसि = न योग्योऽसि ॥५८॥

संस्कृत-भावार्थः—राजा कथयति—हे सिंह ! एवं मित्रता परस्परवार्तालापेन वनप्रदेशेऽस्मिन् आवयोः वार्तालापो जातः । अतः आवाम् परस्परं मित्रभावं संप्राप्तौ । अतः हे शिवानुचर ? अहं आशासे यद् भवान् मित्रतासम्बन्धं विनाशयितुं मे प्रार्थनां विहन्तुं च नार्हसि । अतः स्वमित्रस्य मम प्रार्थनां स्वीकुरु ॥५८॥

शब्दार्थ—सम्बन्धम्=मित्रता । आभाषणपूर्वम्=वार्तालाप के द्वारा वनान्ते=जंगल में । संगतयोः=मिले हुये । नौ=हम दोनों का । वृत्तः=हो गया । भूतनाथानुग !=भगवान् शिव के गण ? सम्बन्धिनः मे=मुझ मित्र की । प्रणयम्=प्रार्थना । विहन्तुम्=विनष्ट करने के लिये, अस्वीकार करने के लिये । नार्हसि=नहीं हो ॥५८॥

हिन्दी—मित्रता परस्पर बातचीत करने से होती है ऐसा लोक में प्रसिद्ध है । वनप्रदेश में हम दोनों के मिलने से वह मित्रता हो चुकी है । इसलिये हे शिव के अनुचर ! आपको मुझ मित्र की प्रार्थना का नष्ट नहीं करनी चाहिये ॥५८॥

विशेष—राजा सिंह से कहता है—हम और आप दोनों मित्र हैं। क्योंकि कहा जाता है कि पारस्परिक वार्तालाप से मित्रता हो जाती है । इस वन में हम तुम दोनों का वार्तालाप करते बहुत समय व्यतीत हो गया है । अतः मित्र होने के कारण तुम्हें मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये । इस कारण इस गौ को छोड़ दीजिए । बदले में मुझे खा लीजिए ॥५८॥

समास—आभाषणपूर्वम्=आभाषणं पूर्वम् यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)। भूतनाथानुग !=भूतानां नाथः तस्य अनुगः तत्सम्बुद्धौ हे भूतनाथानुग ? (तत्पुरुष) ॥५८॥

व्याकरण—आभषण=आ+भाष्+ल्युट् (अन)। वृत्तः=वृत्+क्त। संगतः=सम्+गम्+क्त। अनुगः=अनु+गम्+ड। प्रणयम्=प्र+णी+अच्। विहन्तुम्=वि+हन्+तुमुन् ॥५८॥

प्रसंग—इस प्रकार प्रार्थना स्वीकार कर लेने पर राजा दिलीप ने अपने शरीर को सिंह के सामने समर्पित कर दिया इसका वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

तथेति गामुक्तवते दिलीपे सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहम् उपानयद् पिण्डमिवामिषस्य ॥५९॥

अन्वय—तथा इति गाम् उक्तवते हरये सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः न्यस्तशस्त्रः स दिलीपः स्वदेहम् आमिषस्य पिण्डम् इव उपानयत् ॥५९॥

संस्कृत टीका—तथा=एवमस्तु, इति=अनेन प्रकारेण, गाम्=वाणीम्, उक्तवते=कथितवते, हरये=सिंहाय, सद्यः=झटिति, प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः=बन्धनात् विमुक्तभुजः, न्यस्तशस्त्रः=त्यक्तायुधः, सः=राजा दिलीपः, स्वदेहम्=आत्मनः शरीरम्, आमिषस्य=मांसस्य, पिण्डम्=कवलम्, इव=यथा, उपानयत्=अर्पितवान् ॥५९॥

संस्कृत भावार्थ—राज्ञः अनुनयानन्तरं सिंहनोक्तम्—एवमस्तु सिंहस्य कथनानन्तरमेव राज्ञः बाह्वोः बन्धनात् विमुक्तोऽभवत्। राजा क्षत्रियोचित-सहायकानि आयुधानि त्यक्त्वा स्वशरीरं मांसस्य पिण्डमिव सिंहाय समर्पित-वान् ॥५९॥

शब्दार्थ—तथेति=एवम् इस प्रकार। गाम्=वाणी के। उक्तवते=कहने पर। हरये=शेर के लिये। सद्यः=तुरन्त। प्रतिष्टम्भविबृद्धबाहुः=बन्धन से मुक्त भुजा वाले। न्यस्तशस्त्रः=शस्त्र छोड़कर। स्वदेहम्=अपने शरीर को। आमिषस्य=मांस के। पिण्डमिव=पिण्ड के समान। उपानयत्=अर्पित कर दिया ॥५९॥

हिन्दी—"ऐसा ही हो" इस प्रकार कहने वाले सिंह के लिये तत्काल

बन्धन छूटी हुई भुजा वाले तथा आयुधों को त्याग करने वाले राजा दिलीप ने अपने शरीर को मांस के पिण्ड के समान समर्पित कर दिया ॥५९॥

विशेष—दिलीप की प्रार्थना को सुनकर 'ऐसा ही हो' सिंह के ऐसा कहने पर राजा की भुजा छूट गई। राजा ने आयुधों को एक ओर रखकर अपने शरीर को सिंह के सामने मांस के पिण्ड के समान समर्पित कर दिया। प्रस्तुत श्लोक में नन्दिनी द्वारा राजा की परीक्षा की अन्तिम सीमा और राजा का उसमें सफल होना अभिव्यक्त किया गया है ॥५९।

समास—प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः=प्रतिष्टम्भात् विमुक्तः बाहुः यस्य सः (बहुव्राहि)। न्यस्तशास्त्रः=न्यस्तानि शस्त्राणि येन सः(बहुव्रीहि)। स्वदेहम्=स्वस्य देहम् (षष्ठी तत्पुरुष) ॥५९॥

व्याकरण—तथा=तद्+थाल्। उक्तवते=वच्+क्तवतु (च० ए० व०) विमुक्त=वि+मुच्+क्त। न्यस्त=नि+अस्+क्त। शस्त्र=शस्+ष्ट्रन्। उपानयत्=उप+नी+लङ् अ० पु० ए० व० ॥५९॥

प्रसंग—इसके बाद राजा के परीक्षा में सफल होने तथा विद्याधरों द्वारा राजा के ऊपर पुष्पवृष्टि किया जाने का वर्णन करते हुये महाकवि कहते हैं—

तस्मिन् क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम्।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ॥६०॥

अन्वय–तस्मिन् क्षणे अवाङ्मुखस्य उग्रम् सिंहनिपातम् उत्पश्यतः प्रजानाम् पालयितुः उपरि विद्याधरहस्तमुक्ता पुष्पवृष्टिः पपात ॥६०।

संस्कृत टीका—तस्मिन्क्षणे=तस्मिन्नवसरे, अवाङ्मुखस्य=अधोमुखस्य, उग्रम्=घोरम्, सिंहनिपातम्=केसरिणः आक्रमणम्, उत्पश्यतः=प्रतीक्षमाणस्य प्रजानाम्=जनानाम्, पालयितुः=रक्षकस्य। उपरि=उपरिष्टात्, विद्याधर-हस्तमुक्ता=देवयोनिविशेषाणां करैः मुक्ता, पुष्पवृष्टिः=कुसुमानां वर्षा। पपात=अपतत् ॥६०॥

संस्कृत भावार्थ—यदा राजा अस्त्रं परित्यज्य आत्मनः शरीरं मांसपिण्डवत् निहाय समर्प्य तस्याक्रमणं प्रतीक्षमाणः आसीत्, तदा तत्काल एव राज्ञः उपरि विद्याधराणाम् हस्तैः मुक्ता पुष्पवृष्टिः अभवत् ॥६०॥

शब्दार्थ—तस्मिन् क्षणे=उस समय। उग्रम्=भयानक। सिंहनिपातम्=

सिंह के आक्रमण की। उत्पश्यतः=प्रतीक्षा करते हुये। प्रजानां पालयितुः=प्रजा के पालक दिलीप के। अवाङ्मुखस्य=नीचे मुख किये हुये। उपरि=ऊपर। विद्याधरहस्तमुक्ता=विद्याधरों के हाथों से की गई। पुष्पवृष्टिः=फूल की वर्षा। पपात=हुई ॥६०॥

हिन्दी—उस समय सिर को नीचे झुकाये हुये तथा सिंह के भयानक आक्रमण की प्रतीक्षा करने वाले प्रजापालक राजा दिलीप के ऊपर विद्याधरों के हाथों से छोड़े गये पुष्पों की वर्षा हुई ॥६०॥

विशेष—राजा दिलीप शस्त्रों का त्यागकर सिंह के भक्षणार्थ नीचे को सिर करके बैठ गये। बैठे हुये थे सिंह के आक्रमण की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि सिंह के आक्रमण के स्थान पर उनके ऊपर फूल की वर्षा होने लगी ॥६०॥

समास—सिंहनिपातम्=सिंहस्य निपातम् (षष्ठी तत्पुरुष)। विद्याधर-हस्तमुक्ता=विद्याधराणां हस्तेभ्यः विमुक्ता (तत्पुरुष)। पुष्पवृष्टिः=पुष्पाणां वृष्टिः (षष्ठी तत्पुरुष) ॥६०॥

व्याकरण—पालयितुः=पाल्+णिच्+तृच्। प्रजा=प्र+जन्+ड+टाप्। उत्पश्यतः—उत्+दृश्+शतृ। निपात=नि+पत्+घञ्। वृष्टिः=वृष्+क्तिन्। पपात=पत्+लिट्+प्र० पु० ए० व० ॥६०॥

प्रसंग—राजा की परीक्षा पूर्ण हो जाने पर नन्दिनी प्रसन्न होकर 'हे वत्स उठो' इस प्रकार कहते हुये बोली—

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम् ॥६१॥

अन्वय—राजा "वत्स उत्तिष्ठ" इति अमृतायमानम् उत्थितम् वचः निशम्य उत्थितः सन् अग्रतः प्रस्रविणीम् गाम् स्वाम् जननीम् इव ददर्श, सिंहम् न (ददर्श) ॥६१॥

संस्कृत टीका—राजा=दिलीपः, वत्स ? उतिष्ठ=हे पुत्र ? उत्तिष्ठ। इति=एवम्, अमृतायमानम्=अमृततुल्यम्, उत्थितम्=प्रकटीभूतम्। वचः=वचनम्, निशम्य=श्रुत्वा, उत्थितः सन्=ऊर्ध्वस्थितः सन्, अग्रतः=सम्मुखे, प्रस्रविणीम्=दुग्धस्रविणीम्, गाम्=नन्दिनीम्, स्वाम्=आत्मीयाम्, जननीम्

=मातरम्, इव=यथा, ददर्श=विलोकितवान्, सिंहम्=केसारिणम्, न=नहिं (ददर्श) ॥६१॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः अमृतसदृशं वचनमाकर्ण्य 'हे वत्स उत्तिष्ठ ?' इति अमृतसदृशं मधुरं वचनं निशम्य उत्थितः सन् अग्रे दुग्धप्रस्रविणीम् नन्दिनीम् स्वकीयाम् जननीम् इव ददर्श, सिंहं तु न ददर्श ॥६१॥

शब्दार्थ—अमृतायमानम्=अमृत के समान। उत्थितम्=उत्पन्न। वचः=वचन को। निशम्य=सुनकर। उत्थितः सन्=उठे हुये। अग्रतः=सामने। स्वजननीमिव=अपनी माँ के समान। प्रस्रविणीम्=दुग्ध बहाती हुई। गाम्=नन्दिनी को। ददर्श=देखा ॥६१॥

हिन्दी—राजा दिलीप ने "हे वत्स उठो" इस प्रकार के अमृत के समान प्रिय वचनों को सुनकर उठते हुये आगे दूध का क्षरण करती हुई नन्दिनी को अपनी माता के समान देखा। सिंह को नहीं देखा ॥६१॥

विशेष—राजा के ऊपर सिंह का आक्रमण होने वाला था। परन्तु उसके स्थान पर पुष्प वृद्धि हुई। बाद में 'हे बालक उठो' इस प्रकार अमृत के समान प्रिय वचनों को सुनकर फिर उठते हुये उसने देखा तो सामने दूध को बहाती हुई नन्दिनी खड़ी है और सिंह नहीं दिखाई दे रहा है। गाय में जननी की सम्भावना होने से प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥६१॥

प्रसंग—उसके बाद अपने सम्बन्ध में आश्चर्य चकित राजा को देखकर उसको दूर करती हुई नन्दिनी बोली—

> **तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो। मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि।**
> **ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः ॥६२॥**

अन्वय—विस्मितम् तम् धेनुः उवाच साधो! मया मायाम् उद्भाव्य परीक्षितः असि। ऋषिप्रभावात् मयि अन्तकः अपि प्रहर्तुम् न प्रभुः, अन्यहिंस्राः किमुत ॥६२॥

संस्कृत टीका—विस्मितम्=आश्चर्यान्वितम्, तम्=राजानं दिलीपम् धेनुः=नन्दिनी, उवाच=अकथयत्, साधो! मया=नन्दिन्या मायाम्=कपटजालम्, उद्भाव्य=प्रकटीकृत्य, परीक्षितोऽसि=परीक्षां कृतवानसि, ऋषिप्रभावात् = वशिष्ठस्य सामर्थ्यात्, मयि = नन्दिन्याम्, अन्तकः =

यमराजोऽपि । प्रहर्तुम्=आक्रमितुम्, न=नहिं, प्रभुः=समर्थः, अन्यहिंस्राः=सिंहादयः, किमुत=न किमपि ॥६२॥

संस्कृत भावार्थ—आक्रमणस्य स्थाने पुष्पवृष्ट्या आश्चर्यान्वितं राजानं दिलीपं प्रत्युवाच—हे पुत्र ? मया एव कपटजालम् प्रकटीकृत्य तव परीक्षा कृता इदानीं त्वं सफलपरीक्षितः असि । वशिष्ठस्य प्रभावात् मयि यमराजोऽपि आक्रमणं कर्तुं न समर्थः । अन्येषाम् सामान्यहिंस्राणां सिंहादीनां आक्रमणस्य तु का कथा ? ॥६२॥

शब्दार्थ—विस्मितम्=आश्चर्य युक्त । तम्=राजा से । धेनुः=नन्दिनी, उवाच=बोली । हे साधो ?=हे सज्जन ? मया=मैंने, मायाम्=माया को । उद्भाव्य=उत्पन्न करके । परीक्षितोऽसि=परीक्षा ली गई है । ऋषिप्रभावात्=ऋषि वशिष्ठ के प्रभाव से । अन्तकः=यमराज भी । प्रहर्तुम्=प्रहार के लिए । नहि प्रभुः=समर्थ नहीं है । अन्यहिंस्राः=अन्य हिंसक जीव । किमुत=क्या कहना ॥६२॥

हिन्दी—आश्चर्य से चकित राजा दिलीप से नन्दिनी ने कहा कि हे—सज्जन ! माया के सिंह को दिखाकर मैंने तुम्हारी परीक्षा की है। ऋषि वशिष्ठ के प्रभाव से मुझ पर यमराज भी आक्रमण नहीं कर सकता अन्य सिंहादि जीवों का तो कहना ही क्या ? ॥६२॥

विशेष—सिंह के आक्रमण के बदले आकाश से पुष्पवृष्टि होना तथा सिंह के गुप्त हो जाने के कारण विशेष आश्चर्य चकित राजा दिलीप से नन्दिनी ने कहा—हे धर्मात्मन् ! यह सब तुम्हारी परीक्षा के लिये किया गया था । यह सब मेरी ही माया थी । ऋषि वशिष्ठ के प्रभाव के कारण मेरे ऊपर यमराज भी आक्रमण नहीं कर सकता । साधारण सिंह आदि हिंसक जीव तो मेरे ऊपर क्या आक्रमण करेंगे ? यहाँ नन्दिनी गुरु वशिष्ठ के अतिशय प्रभाव का प्रदर्शन किया है । अतः उदात्त अलंकार है । इसके अतरिक्त 'किमुतान्यहिंस्राः' इस शब्द के प्रयोग के कारण अर्थापत्ति अलंकार भी है ॥६२॥

समास—ऋषिप्रभावात्=ऋषेः प्रभावात् (षष्ठी पुरुष) । अन्यहिंस्राः=अन्ये च ते हिंस्राः (कर्मधारय) ॥६२॥

व्याकरण—विस्मितम्=वि + स्मि + क्त । उद्भाव्य=उत् + भू + णिच् + क्त्वा (ल्यप्) । परीक्षितः=परि + ईक्ष् + क्त । प्रभाव=प्र + भू +

घञ् । प्रहर्तुम्=प्र+हृ+तुमुन् । हिंस्राः=हिस्+रक् । उवाच=वच्+लिट् प्र० पु० ए० व० । असि=अस्+लट् म० पु० ए० व० ॥६२॥

प्रसंग—ऋषि का तथा अपना प्रभाव प्रदर्शित करने के पश्चात् नन्दिनी प्रसन्न होकर राजा को वर माँगने के लिए कहती है—

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीताऽस्मि ते पुत्र ! वरं वृणीष्व ।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ॥६३॥

अन्वय—हे पुत्र ! गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया च ते प्रीता अस्मि, वरं वृणीष्व । माम् केवलानाम् पयसाम् प्रसूतिम् न अवेहि । प्रसन्नाम् कामदुघाम् अवेहि ॥६३॥

संस्कृत टीका—हे पुत्र ?=हे राजन् दिलीप ? गुरौ=वशिष्ठे । भक्त्या=श्रद्धया । मयि=नन्दिन्याम् । अनुकम्पया=कृपाभावेन । च, ते=तुभ्यम् । प्रीता=प्रसन्ना । अस्मि=भवामि । वरम्=यथोप्सितं वस्तु, वृणीष्व=याचय । माम्=नन्दिनीम् । केवलानां पयसाम्=एकमात्रदुग्धानाम् । प्रसूतिम्=उत्पादयित्रीम् । न=नहि । अवेहि=जानीहि । प्रसन्नाम्=प्रीताम् माम् । कामदुघाम्=अभिलाषा पूरयित्रीम् अवेहि=जानीहि ॥६३॥

संस्कृत गद्यार्थ—परीक्षायां सफलं राजानं प्रति नन्दिनी प्रत्यवदत्—हे राजन् ! त्वया आचार्ये वशिष्ठे महती श्रद्धा प्रदर्शिता । यतः तस्य कथनादेव त्वया मम सेवा कृता । त्वया मयि एवम् अनुकम्पा कृता यत् स्वप्राणानपि त्यक्तुं उद्यतो जातः । अतः अहम् त्वयि प्रीतास्मि । सम्प्रति वरं याचय । अहं तुभ्यं सर्वाधिकं प्रियं वस्तु दास्यामि । अहम् केवलं दुग्धप्रदायिनी धेनुः नास्मि । अपितु मां सर्वार्थप्रदायिनीं कामदुघां जानीहि ॥६३॥

शब्दार्थ—भक्त्या=भक्ति से । अनुकम्पया=दया से । प्रीतास्मि=प्रसन्न हूँ । वरम्=वरदान । वृणीष्व=मांगो । पयसां प्रसूतिम्=दूध देने वाली । न अवेहि=न समझो । प्रसन्नाम्=प्रसन्न । कामदुघाम्=कामधेनु । अवेहि=जानो ॥६३॥

हिन्दी—हे पुत्र ? आचार्य वशिष्ठ में श्रद्धाभाव रखने एवम् मेरे ऊपर दयाभाव रखने वाले तुमसे मैं प्रसन्न हूँ । अतः वर मांगो । मुझको केवल दूध

देने वाली साधारण गाय मत जानो। अपितु समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने वाली जानो। ६३॥

विशेष—दिलीप की परीक्षा लिये जाने पर जब वह सफल रहा तो नन्दिनी ने कहा—हे पुत्र! तुमने आचार्य वशिष्ठ के वचनों को मानकर जो मेरी सेवा की है। इससे प्रकट होता है कि तुम्हारी उनमें विशेष श्रद्धा है। इसके अतरिक्त मेरी रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगाकर की है। इस कारण मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वर मांगों। मुझे दूध देने वाली अन्य सामान्य गायों के समान मत समझो। अपितु सेवकों की समस्त कामनाओं को पूरी करने वाली हूँ। प्रस्तुत श्लोक में नन्दिनी के विशेष प्रभाव के वर्णन किये जाने के कारण उदात्त अलंकार है॥६३॥

व्याकरण—भक्त्या = भज् + क्तिन् + तृतीया। अनुकम्पया = अनु + कम्प् + अच् + टाप् (तृतीया)। प्रीता = प्रीञ् + क्त + टाप्। वरम् = वृ + अप्। प्रसूतिम् = प्र + सू + क्तिन्। कामदुघाम् = काम + दुह् + कप् + टाप्। प्रसन्नाम् = प्र + सद् + क्त + टाप्। वृणीष्व = वृ + लोट् म० पु० ए० व०। अवेहि = अव + ई + लोट् म० पु० ए० व०॥६३।

प्रसंग—नन्दिनी के वर माँगने के लिए कहे जाने पर राजा दिलीप ने सुदक्षिणा के गर्भ से पुत्र-प्राप्ति का वर मांगा। इसका वर्णन करते हुये महाकवि कहते है—

> **ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।**
> **वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे॥६४॥**

अन्वय—ततः मानितार्थी स्वहस्तार्जितवीरशब्दः स हस्तौ समानीय सुदक्षिणायाम् वंशस्य कर्तारम् अनन्तकीर्तिम् तनयम् ययाचे॥६४॥

संस्कृत टीका—ततः = तदनन्तरम्, मानितार्थी = सन्तोषितयाचकः, स्वहस्तार्जितवीरशब्दः = आत्मनः कराभ्यामुपार्जितवीरपदवीकः, सः = राजा दिलीपः, हस्तौ = करौ। समानीय = संयोज्य, सुदक्षिणायाम् = स्वपत्न्याम्, वशंस्य = कुलस्य, कर्तारम् = प्रवर्तकम् अनन्तकीर्तिम् = अपारयशसम्, तनयम् = पुत्रम् ययाचे = प्रार्थितवान्॥६४॥

संस्कृत भावार्थ—नन्दिन्या प्रोक्तम् हे पुत्र! वरं याचय।तदा स्वकराभ्यां

उपार्जिता वीरपदवी येन सः राजा दिलीपः हस्तौ सन्धाय सुदक्षिणायां वंशस्य प्रवर्तकम् अपारयशसं पुत्रं याचितवान् ।।६४।।

शब्दार्थ—ततः=उसके बाद। मानितार्थी=याचकों का सम्मान करने वाले। स्वहस्तार्जितवीरशब्दः=अपनी भुजाओं से 'वीर' शब्द को अर्जित करने वाले। हस्तौ समानीय=दोनों हाथ जोड़कर। अनन्तकीर्तिम्=अखण्ड कीर्ति वाले। तनयम्=पुत्र को। ययाचे=मांगा ।।६४।।

हिन्दी—इसके पश्चात् याचकों का सम्मान करने वाले तथा अपनी भुजाओं के बल से पदवी को प्राप्त करने वाले राजा दिलीप ने हाथ जोड़कर सुदक्षिणा से अपने वंश को चलाने वाले और अनन्तकीर्ति वाले पुत्र को माँगा ।।६४।।

विशेष—राजा याचकों का सम्मान करता था तथा स्वयं अपने पराक्रम के कारण 'वीर' कहा जाता था। राजा से नन्दिनी ने जब वर माँगने को कहा तो उसने सुन्दर कीर्ति वाला पुत्र माँगा। प्रस्तुत श्लोक में 'मानितार्थी' विशेषण का प्रयोग इस भाव में किया गया है कि जो दूसरे याचकों का सम्मान करता है, उसका भी मान होगा। इस कारण यहाँ परिकर अलकार है ।।६४।।

समास—मानितार्थी=मानिताः अर्थिनः येन सः (बहुव्रीहि)। स्वहस्तार्जितवीरशब्दः—स्व एव हस्तेन अर्जितः वीरशब्दः येन सः (बहुव्रीहि)। अनन्तकीर्तिम्=अनन्ता कीर्तिः यस्य सः तम् (बहुव्रीहि) ।।६४।

व्याकरण—ततः=तद्+तसिल्। समानीय=सम्+आ+नी+क्त्वा (ल्यप्)। अर्जितः=अर्ज=क्त। कर्तारम्=कृ+तृच्। कीर्तिः=कृ+क्तिन्। ययाचे=याच्+लिट् प्र० पु० ए० व० ।।६४।।

प्रसंग—राजा के सुदक्षिणा के गर्भ से पुत्र-प्राप्ति का वर माँगने पर नन्दिनी राजा से 'एवमस्तु' कहकर अपना दूध पीने के लिए कहती है—

> सन्तानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
> दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ।।६५।।

अन्वय—पयस्विनी सा सन्तानकामाय राज्ञे 'तथा इति' कामम् प्रतिश्रुत्य 'हे पुत्र ! मदीयम् पयः पत्रपुटे दुग्ध्वा उपभुङ्क्ष्व' इति तम् आदिदेश ।।६५।।

संस्कृत टीका—पयस्विनी=प्रशस्त क्षीरा। सा=नन्दिनी, सन्तानकामाय=

पुत्रेच्छुकामाय। राज्ञे=दिलीपाय, तथेति='एवमेवास्तु' इति कामम्=अभिलाषितवरम्। प्रतिश्रुत्य=प्रतिज्ञाय। हे पुत्र ?=हे वत्स, मदीयम्=मामकं पयः=दुग्धम्, पत्रपुटे=पत्रनिर्मितेसंपुटे, दुग्ध्वा=दोहनं कृत्वा। उपभुंक्ष्व=पिब, इति=एवम् तम्=राजानं दिलीपम्, आदिदेश=आज्ञां दत्तवती ॥६५॥

संस्कृत भावार्थ—यदा: दिलीप: वंशप्रवर्तकम् कीतियुक्तं पुत्रं याचितवान् तदा नन्दिनी पुत्र-प्राप्तिवरं दत्तवती तथा दिलीपम् आदिष्टवती च, यत् हे पुत्र! पत्रसम्पुटे मदीयं दुग्धं दुग्ध्वा पिब। तव मनोकामना पूर्णा भविष्यति ॥६५॥

शब्दार्थ—पयस्विनी=दूध देने वाली। सा=वह नन्दिनी। सन्तानकामाय=सन्तान की कामना वाले। प्रतिश्रुत्य=वचन देकर। मदीयं पयः=मेरे दूध को पत्रपुटे=दोने में। दुग्ध्वा=दुहकर। उपभुङ्क्ष्व=पीं लो। इति=इस प्रकार। तम्=राजा का। आदिदेश=आदेश दिया ॥६५॥

हिन्दी—सन्तान की इच्छा करने वाले राजा दिलीप से नन्दिनी ने 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार का वर देकर (कहा)—हे पुत्र ? पत्ते का दोना बनाकर उसमें मेरा दूध दुहकर पी लो ॥६५॥

समास—सन्तानकामाय=सन्तानं कामयते इति तस्मै (उपपद समास)। पत्रपुटे=पत्राणां पुटे (षष्ठी तत्पुरुष)।

व्याकरण—प्रतिश्रुत्य=प्रति+श्रु+क्त्वा (ल्यप्)। पयस्विनी=पयस्+विनि+ङीप्। दुग्ध्वा=दुह्+क्त्वा, मदीयम्=अस्मद्+छ (ईय)। उपभुङ्क्ष्व+उप+भुज्+लोट् प्र० पु० ए० व०। आदिदेश=आ+दिश्+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥६५॥

प्रसंग—इस प्रकार नन्दिनी के दूध पीने का आदेश देने पर राजा गुरु की आज्ञा से होम से बचे हुए दूध पीने के लिए कहता है—

> वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः।
> औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः ॥६६॥

अन्वय—हे मातः! वत्सस्य होमार्थविधेः, च शेषम् तव औधस्यम् रक्षितायाः उर्व्याः षष्ठांशम् इव ऋषेः अनुज्ञाम् अधिगम्य, उपभोक्तुम् इच्छामि ॥६६॥

संस्कृत टीका—हे मातः ?=हे जननि!, वत्सस्य=तव अर्भकस्य,

होमार्थविधेश्च=हवनप्रयोजनक्रियायाः, शेषम्=अवशिष्टम्, तव=भवत्याः नन्दिन्याः, औधस्यम्=ऊधसिजातं पयः, रक्षितायाः=पालितायाः, उर्व्याः= पृथिव्याः, षष्ठांशम्=षष्ठभागम्, इव=यथा, ऋषेः=आचार्यवशिष्ठस्य, अनुज्ञाम्=अनुमितिम्, अधिगम्य=प्राप्य, उपभोक्तुम्=उपभोग कर्तुम्, इच्छामि=अभिलषामि ॥६६॥

संस्कृत भावार्थ—नन्दिनी प्रत्युवाच—त्वं सम्प्रति पत्र-पुटे दुग्ध्वा मम दुग्धं पिब। तदा राजा दिलीपः अकथयत्—हे मातः! अहं वत्सस्य दुग्धपानानन्तरं तथा गुरोः होमानुष्ठनेन अवशिष्टं दुग्ध गुरोः वशिष्ठस्य आज्ञया तथैव पातुमिच्छामि यथा स्व-भुजाभ्यां रक्षितायाः पृथिव्याः षष्ठांशम् उपभोगम् करोमि ॥६६॥

शब्दार्थ—वत्सस्य=बछड़े के। होमार्थविधेः=होमार्थानुष्ठान से। शेषम्= बचे हुए। ऊधस्यम्=दूध। रक्षितायाः=रक्षित। ऊर्व्याः= पृथ्वी के। षष्ठांशम् इव=छठे भाग के समान। ऋषेः=मुनि की। अनुज्ञाम्=आज्ञा। अधिगम्य=प्राप्तकर। उपभोक्तुम्=उपभोग करने के लिए। इच्छामि= इच्छा करता हैं ॥६६॥

हिन्दी—हे माँ! आप के बछड़े के पीने के बाद बचे हुए तथा ऋषि के हवन आदि अनुष्ठान से पूर्ण होने पर बचे हुए तुम्हारे ऊधस् से निकलने वाले दुग्ध को ऋषि वशिष्ठ की आज्ञा से पालन की गयी पृथ्वी के छठे भाग के समान पीना चाहता हूँ ॥६६॥

विशेष—नन्दिनी के द्वारा दोनों में दुहकर दूध पिये जाने का आदेश दिये जाने पर राजा ने कहा—हे मातः! पहले चिरकाल से प्रतीक्षा करने वाला आपका बछड़ा दूध पिये। तत्पश्चात् गुरु वशिष्ठ की हवनादि क्रियायें पूर्ण की जावें, उसके बाद बचे हुए दूध को भी मैं तब पी सकता हूँ जब गुरु आज्ञा देंगे। वह भी केवल अपनी भुजाओं से रक्षित पृथ्वी के षष्ठ भाग के बराबर ग्रहण करना चाहता हूँ।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ गौ और पृथ्वी में उपमेय-उपमान भाव है। अवशिष्ट भाग का ग्रहण करना साधारण धर्म तथा इव उपमा का वाचक शब्द है ॥६६॥

समास—होमार्थविधेः=होमः एव अर्थः तस्य विधिः तस्य (तत्पुरुष)। षष्ठांशम्=षष्ठं अंशम् (कर्मधारय) ॥६६॥

व्याकरण—शेषम्=शिष्+घञ्। अधिगम्य=अधि+गम्+क्त्वा (ल्यप्)। औधस्यम्=उधस्+ण्यत्। उपभोक्तुम्=उप+भुज्+तुमुन्। इच्छामि=इष्+लट् उ० पु० ए० व० ॥६६॥

प्रसंग—राजा की इस प्रार्थना पर प्रसन्न होकर नन्दिनी वशिष्ठ के आश्रम को प्रस्थान करती है इसका वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

> इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव।
> तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण॥६७॥

अन्वय—इत्थम् क्षितीशेन विज्ञापिता वशिष्ठधेनुः प्रीततरा बभूव। तदन्विता च हैमवतात् कुक्षेः अश्रमेण आश्रमम् प्रत्याययौ ॥६७॥

संस्कृत टीका—इत्थम्=अनेन प्रकारेण, क्षितीशेन=राज्ञा दिलीपेन, विज्ञापिता=आवेदिता, वशिष्ठधेनुः=गुरोः गौः नन्दिनी, प्रीततरा=अतिशयेन प्रसन्ना, बभूव=अभवत्, तदन्विता च=राजा दिलीपेन युक्ता च, हैमवतात्=हिमालयपर्वतसम्बन्धिनः। कुक्षेः=गह्वरात्, अश्रमेण=बिना परिश्रमेण, आश्रमम्=वशिष्ठस्य तपोस्थानम्, प्रत्याययौ=समागतो ॥५६॥

संस्कृत भावार्थ—राजादिलीपेनोक्तम्-अहं वत्सस्य दुग्धपानानन्तरं तथा गुरो हवनादिक्रियायाः पूर्णे जाते च दुग्धं पातुमिच्छामि। एवं कथिते सति नन्दिनी अतिशयेन प्रसन्ना अभवत्। तथा दिलीपेन सह पर्वतराजहिमालयस्य गह्वरात् निर्गत्य अश्रमेणैव वाशिष्ठस्याश्रमम् अगात् ॥६७॥

शब्दार्थ—इत्थम्=इस प्रकार,। क्षितीशेन=राजा के द्वारा। विज्ञापिता =निवेदन किये जाने पर। वशिष्ठधेनुः=नन्दिनी। प्रीततरा=अत्यन्त प्रसन्न। बभूव=हुई। तदन्विता=दिलीप से युक्त। हैमवतात्=हिमालय की। कुक्षेः =कन्दरा से। अश्रमेण=बिना श्रम से। आश्रमम्=आश्रम को। प्रत्याययौ =लौटी ॥६७॥

हिन्दी—इस प्रकार राजा दिलीप से निवेदन किये जाने पर वशिष्ठ की गाय नन्दिनी और प्रसन्न हुई तथा राजा के साथ हिमालय की कन्दरा से बिना किसी थकावट के वशिष्ठ के आश्रम को लौटी ॥६७॥

विशेष—जब राजा दिलीप ने गुरु की आज्ञा से ही दूध पीने की इच्छा प्रकट की तो नन्दिनी और भी प्रसन्न हुई और राजा के साथ बिना किसी थकावट के हिमालय का गुफा से निकलकर वशिष्ठ के आश्रम में आ गई ॥६७॥

समास—वशिष्ठधेनु:=वशिष्ठस्य धेनु: (षष्ठी तत्पुरुष)। तदन्विता= तेन अन्विता (तृतीया तत्पुरुष) ॥६७॥

व्याकरण—इत्थम्=इदम्+थमु । विज्ञापिता=वि=ज्ञप्+णिच्+क्त+टाप्। प्रीततरा अतिशयेन प्रीता=प्रीत+तरप्+टाप्। हैमवतात्= हिम+मतुप्+अण् । प्रत्याययौ=प्रति+आ+या+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥६७॥

प्रसंग—राजा दिलीप आश्रम पर पहुँचकर पहले गुरु वशिष्ठ से बाद में रानी सुदक्षिणा से नन्दिनी के प्रसन्न होने का समाचार कहते हैं—

> **तस्या: प्रसन्नेन्दुमुख: प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।**
> **प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥६८॥**

अन्वय—प्रसन्नेन्दुमुख: नृपाणां गुरु: प्रहर्षचिह्नानुमितम् तस्या: प्रसादम् पुनरुक्तया इव वाचा गुरवे निवेद्य पश्चात् प्रियायै शशंस ॥६८॥

संस्कृत टीका—प्रसन्नेन्दुमुख:=हर्षेण विकसितचन्द्रवदन:। नृपाणाम्= राज्ञाम्, गुरु:=श्रेष्ठ: राजा दिलीप: प्रहर्षचिन्हानुमितम्=प्रसन्नताया: लक्षणै: अनुमीयमानम्, तस्या:=नन्दिन्या:, प्रसादम्=कृपाम्। पुनरुक्तया= मुहु: भाषितया, इव=यथा, वाचा=वाण्या। गुरवे=आचार्यवशिष्ठाय, निवेद्य=आवेद्य, प्रियायै=आर्यायै सुदक्षिणायै, शशंस=अकथयत् ॥६८॥

संस्कृत भावार्थ—नन्दिन्या साकं दिलीप: आश्रमम् आगत:। अभीष्टवर-प्रात्या तस्य मुखेन्दु: विकसितोऽभवत्। तस्य: प्रसन्नाननविलोकनेनैव सर्वं वृत्तान्तं स्फुटं जातम्, परन्तु भूय: तेन पुनरुक्तिवत् तद्वृत्तं पूर्वं गुरवे विनिवेद्य पश्चात् स्वधर्मपत्न्यै सुदक्षिणायै निवेदितम् ॥६८॥

शब्दार्थ—प्रसन्नेन्दुमुख:=निर्मल चन्द्रमा के समान मुख वाले। नृपाणां गुरु:=राजाओं में श्रेष्ठ राजा दिलीप। प्रहर्षचिह्नानुमितम्=प्रसन्नता के चिन्हों से सूचित। तस्या=नन्दिनी के। प्रसादम्=कृपा को। पुनरुक्तया

इव=पुनरुक्ति के समान। निवेद्य=निवेदन करके। पश्चात्=पीछे। प्रियायै=पत्नी से। शशंस=कहा ॥६८॥

हिन्दी—पूर्ण विकसित चन्द्रमा के समान मुख वाले राजाओं में श्रेष्ठ उस दिलीप ने हर्ष के द्योतक चिन्हों से अनुमीयमान उस नन्दिनी की वरदान रूपी कृपा को पुनरुक्ति के समान वाणी द्वारा गुरु जी से निवेदन कर अपनी प्रिया सुदक्षिणा से कहा ॥६८॥

विशेष—वरप्राप्ति के पश्चात् बिना किसी श्रम के नन्दिनी के साथ आये हुए राजा का मुख प्रसन्नता से चन्द्रमा के समान खिल रहा था। उस प्रसन्न-मुख को देखकर गुरु ने अनुमान लगा लिया कि आज नन्दिनी प्रसन्न हो गई है और राजा का पुत्र-प्राप्ति रूप कार्य पूर्ण हो गया। परन्तु गुरु को सब कुछ ज्ञात होने पर भी राजा दिलीप ने उनसे निवेदन किया। जैसे यह एक पुनरुक्ति ही हो। इसके पश्चात् अपनी रानी सुदक्षिणा से भी कहा। प्रस्तुत श्लोक में राजा द्वारा गुरु के वरदान के वृत्त को निवेदन करने में पुनरुक्ति की सम्भावना की गई है। अत: उत्प्रेक्षा अलंकार है। यद्यपि राजा ने तो प्रथम बार ही निवेदन किया था। परन्तु उसके प्रसन्न मुख के अवलोकन से पहले ही इसका निर्माण किये जाने के कारण राजा का कथन मानो पुनरुक्ति हो। इसके अतरिक्त 'प्रसन्नेन्दुमुख:' में उपमा अलंकार है ॥६८॥

समास—प्रसन्नेन्दुमुख:=प्रसन्नं इन्दु: इव मुखं यस्य स: (बहुव्रीहि)। प्रहर्षचिन्हानुमितम्=प्रहर्षस्य चिन्हानि प्रहर्षचिन्हानि प्रहर्षचिन्है: अनुमिताम् (तृतीया तत्पुरुष) ॥६८॥

व्याकरण—प्रसन्न=प्र+सद्+क्त। प्रसादम्=प्र+सद्+घञ्। निवेद्य=नि+विद्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्)। प्रहर्ष=प्र+हर्ष+घञ्। अनुमित=अनु+मा+क्त। शशंस=शंस्+लिट् प्र० पु० ए० ॥६८॥

प्रसंग—इसके बाद राजा दिलीप ने गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से बछड़े एवं हवनादि कर्म से बचे हुए दूध को पीते है। इसका वर्णन करते हुए कहते है—

> स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
> पपौ वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञ: शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्ण: ॥६९॥

अन्वय—अनिन्दितात्मा सद्वत्सल: वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञ: स:

वत्सहुतावशेषं नन्दिनीस्तन्यम् शुभ्रम् मूर्तम् यशः इव अतितृष्णः सन् पपौ ॥६६॥

संस्कृत टीका—अनिन्दितात्मा=अगर्हितान्तःकरणः, कृताभ्यनुज्ञः=प्राप्तानुमतिः, सद्वत्सलः=सज्जनेषु स्नेहयुक्तः, वशिष्ठेन=तन्नामकेन आचार्येण, सः=राजा दिलीपः, वत्सहुतावशेषम्=वत्सस्य दुग्धपानात् तथा हवनकार्याद् अवशिष्टम्, नन्दिनीस्तन्यम्=धेनोः दुग्धम्, शुभ्रम्=स्वच्छम्, मूर्तम्=शरीरधारिणम्, यशः=कीर्तिम्, इव=यथा, अतितृष्णः सन्=अत्यधिकपिपासुः सन्, पपौ=पीतवान् ।६६॥

संस्कृत भावार्थ—अगर्हितान्तकरणः सज्जनेषु स्नेहकर्त्ता च राजा दिलीपः आचार्यवशिष्ठेन दुग्धपानस्य अनुमतिं संप्राप्य वत्सस्य पानानन्तरं हवनकार्यादिना अवशिष्टम् च नन्दिन्याः दुग्ध शरीरधारी निर्मलयशः इव अतिपिपासितः सन् अपिबत् ॥६६॥

शब्दार्थ—अनिन्दितात्मा=अनिन्दित (उत्तमस्वभाव वाले) । सद्वत्सलः=सज्जनों से प्रेम करने वाले । वशिष्ठेन= वशिष्ठ के द्वारा, । कृताभ्यनुज्ञः=आज्ञा प्राप्त कर । नन्दिनीस्तन्यम्=नन्दिनी के दूध को । शुभ्रम्=उज्ज्वल । मूर्तम्=मूर्तिमान् । यशः इव=कीर्ति के समान । अतितृष्णः=अत्यन्त प्यासे । पपौ=पिया ॥६६॥

हिन्दी—प्रसंशनीय अन्तःकरण वाले, सज्जनों पर स्नेह करने वाले राजा दिलीप ने गुरु वशिष्ठ की आज्ञा प्राप्त कर बछड़े के पीने के बाद हवन आदि कार्यों से सम्पन्न होने से बचे हुए नन्दिनी के दूध को शरीरधारी निर्मल यश के समान पान किया ॥६६॥

विशेष—राजा की इच्छा बछड़ा के बाद, हवनादि क्रियाओं से पूर्ण हो जाने के पश्चात् दूध पीने की थी । अतः पहले बछड़े को दुग्धपान कराया गया बाद में हवन आदि कार्य पूर्ण किया गया तत्पश्चात् गुरु ने राजा दिलीप को दूध पीने की आज्ञा दी । तब राजा दिलीप ने नन्दिनी के दूध को ऐसे पिया जैसे न जाने कितना अधिक प्यासा हो । और धवल दुग्ध का ऐसा पान मानो शरीरधारी यश का पान हो ।

प्रस्तुत श्लोक में 'राजा ने नन्दिनी के स्तन्य का ऐसे पान किया जैसे वह उज्ज्वल मूर्तिमान् यश हो' यह कहा गया है । अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥६६॥

समास—अनिन्दितात्मा=न निन्दितः अनिन्दितः, अनिन्दितः आत्मा यस्य सः (बहुव्रीहि)। सद्वत्सलः=सत्सु वत्सलः (सप्तमी तत्पुरुष)। कृताभ्यनुज्ञः=कृता अभ्यनुज्ञा यस्मै सः (बहुव्रीहि)। अतितृष्णः=अत्याधिका तृष्णा यस्य सः (बहुव्रीहि)। वत्सहुतावशेषम्=वत्सस्य हुतस्य च अवशेषम् (बहुव्रीहि)। नन्दिनीस्तन्यम्=नन्दिन्याः स्तन्यम् (षष्ठी तत्पुरुष) ॥६९॥

व्याकरण—निन्दितः=निन्द्+क्त। वत्सलः=वत्स+लच्। हुतः=हु+क्त। अवशेषम्=अव+शिष्+घञ्। अभ्यनुज्ञः—अभि+अनु+ज्ञा+अङ्+टाप्। शुभ्रम्=शुभ+रक्। स्तन्यम्=स्तन्+यत् ॥६९॥

प्रसंग—गो-सेवा पूर्ण हो जाने पर तथा राजा के पुत्र-प्राप्ति वर प्राप्त हो जाने पर दूसरे दिन राजा रानी अयोध्या लौटे—

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रतिराजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः॥

अन्वय—वशी वशिष्ठः प्रातः यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकम् स्वस्त्ययनम् प्रयुज्य तौ दम्पती स्वां राजधानीं प्रति प्रस्थापयामास ॥७०॥

संस्कृत टीका—वशी=जितेन्द्रियः, वशिष्ठः=तन्नामकः आचार्यः, प्रातः=प्रभातकाले, यथोक्तव्रतपारणान्ते=पूर्वमुक्तस्य गो-सेवा-व्रतस्य भोजन समाप्तौ, प्रास्थानिकम्=गमनसमयोचितम्, स्वस्त्ययनम्=मांगलिकाशीर्वादविधिम्, प्रयुज्य=दत्वा, तौ=सुदक्षिणादिलीपौ, दम्पती=जायापती, स्वाम्=स्वकीयाम् राजधानीम्=अयोध्यानगरीम् प्रति। प्रस्थापयामास=प्रेषितवान् ॥७०॥

संस्कृत भावार्थ—यदा राज्ञः पुत्रप्राप्तिवरस्येच्छा पूर्णा जाता, तदा द्वितीयेऽह्नि जितेन्द्रियः वशिष्ठः प्रभातकाले पूर्वं कथितस्य गो-सेवा-व्रतस्य भोजनसमाप्तौ गमनसमयोचितं शुभाशीर्वादादिकं दत्वा सुदक्षिणा-दिलीपौ अयोध्यां प्रति प्रेषितवान् ॥७०॥

शब्दार्थ—वशी=जितेन्द्रियः। यथोक्तव्रतपारणान्ते=यथाविधि किये गये व्रत के पारण के अन्त में। प्रास्थानिकम्=यात्राकालिक। स्वस्त्ययनम्=मंगलाचरण। प्रयुज्य=करके। तौ दम्पती=पति पत्नी अर्थात् सुदक्षिणा और और राजा दिलीप। प्रस्थापयामास=भेज दिया ॥७०॥

हिन्दी—इन्द्रियों पर विजय करने वाले आचार्य वशिष्ठ ने प्रातःकाल पहले

कहे गये के अनुसार गो-सेवा रूप व्रत के पारणा के पश्चात् प्रातःकाल चलने के समय के उचित आशीर्वादादिकों को देकर राजा और रानी को उनकी राजधानी अयोध्या को भेज दिया ॥७०॥

विशेष—नन्दिनी के प्रसाद की प्राप्ति हो जाने पर राजा दिलीप का गो-सेवा-व्रत पूर्ण हो जाने पर राजा ने उसके दूध को पीकर व्रत की पारणा की। गुरु वशिष्ठ ने दूसरे दिन प्रातःकाल जाते समय के उचित आशीर्वादों को दिया और अयोध्या के लिए राजा रानी को विदा किया ॥७०॥

समास—यथोक्तव्रतपारणान्ते = उक्तं अनतिक्रम्य यथोक्तं (अव्ययी भाव), यथोक्त च यद् व्रतम् (कर्म धारण), यथोक्तव्रतस्य पारणायाः अन्ते (षष्ठी-तत्पुरुष)। दम्पती = जाया च पतिश्च (द्वन्द्व समास) ॥७०॥

व्याकरण = प्रस्थानिकम् = प्रस्थान = घञ्। प्रयुज्य = प्र + युज् + क्त्वा (ल्यप्)। वशी = वश् + इनि। प्रस्थापयामास = प्र + स्था + णिच् (पुक्) + लिट् प्र० पु० ए० व० ॥७०॥

प्रसंग—गुरु के प्रस्थान कराये जाने पर राजा दिलीप ने अग्नि, गुरु वशिष्ठ अरुन्धती और नन्दिनी का परिक्रमा कर अपनी राजधानी को प्रस्थान किया—

प्रदक्षिणीकृत्य हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरः प्रभावः ॥७१॥

अन्वय—नृपः हुताशम् भर्तुः अनन्तरम् अरुन्धतीम् च, सवत्साम् धेनुम् च प्रदक्षिणीकृत्य सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः (सन्) प्रतस्थे ॥७१॥

संस्कृत टीका—नृपः = राजा दिलीपः, हुताशम् = आहुतिभिः तृप्तम् अग्निम्, भर्तुः = पत्युः। अनन्तरम् = पश्चात्, अरुन्धतीम् = वशिष्ठ पत्नीं च, सवत्साम् = वत्सेन सहिताम्, धेनुम् = नन्दिनीं च, प्रदक्षिणीकृत्य = परिक्रमाम् कृत्वा सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः = श्रेष्ठैः प्रस्थानकालिकैः मङ्गलाचारैः पूर्वतोऽपि प्रचण्डसामर्थ्यः। प्रतस्थे = प्रस्थानम् कृतवान् ॥७१॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः सर्वप्रथमम् अग्नेः प्रदक्षिणां कृतवान्, तत्पश्चात् वशिष्ठं अरुन्धतीं च प्रदक्षिणीकृत्य सवत्सायाः नन्दिन्याः परिक्रमां

कृत्वा प्रस्थानकालोचितं मांगलिकाशीर्वादप्राप्त्यानन्तरं वशिष्ठेन अभ्यनुज्ञातः स्वकीयां राजधानीम् अयोध्या प्रति प्रस्थानं कृतवान् ॥७१॥

शब्दार्थ—हुतम्=हवन किये गये। हुताशम्=अग्नि को। भर्तुः=स्वामी वशिष्ठ को। अनन्तरम्=पीछे। अरुन्धतीम्=वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती को। सवत्साम्=बछड़े के साथ। धेनुम्=नन्दिनी के। प्रदक्षिणीकृत्य=परिक्रमा करके। सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः=मंगलमय कार्यों से बढ़े हुये प्रभाव वाले। प्रतस्थे=प्रस्थान किया ॥७१॥

हिन्दी—राजा दिलीप आहुति दी गई अग्नि के पश्चात् वशिष्ठ को उसके बाद अरुन्धती तथा बछड़े सहित गाय की परिक्रमा करके प्रस्थानकालिक आशीर्वादों से बढ़े हुये तेज से युक्त होते हुये अयोध्या को चले ॥७१॥

विशेष—प्रस्थान के समय शुभ आशीर्वाद वशिष्ठ जी ने राजा को दिये। उनसे राजा का तेज और भी अधिक बढ़ गया। उस प्रकार के तेजस्वी राजा ने चलते समय पहले अग्नि की और उसके बाद वशिष्ठ, अरुन्धती एवं बछड़े सहित नन्दिनी की परिक्रमा की। उसके बाद अयोध्या को गये ॥७१॥

समास—सवत्साम्=वत्सेन सहिताम् (अव्ययीभाव)। सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः=सन्ति मंगलानि, सन्मंगलैः उदग्रतरः प्रभावः यस्य सः (बहुव्रीहि) ॥७१॥

व्याकरण—प्रदक्षिणीकृत्य=प्रदक्षिण+च्वि+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। उदग्रतरः =उदग्र+तरप्। प्रभावः=प्र+भू+घञ् (अ)। प्रतस्थे=प्र+स्था+लिट् प्र०पु०ए०व० ॥७१॥

प्रसंग—राजा गुरु से विदा होकर अपनी नगरी अयोध्या को चले—

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन सः धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्धातसुखेन मार्गं स्वेनैव पूर्णेन मनोरथेन ॥७२॥

अन्वय—सहिष्णुः सः धर्मपत्नीसहितः श्रोत्राभिरामध्वनिना अनुद्घातसुखेन रथेन स्वेन पूर्णेन मनोरथेन इव मार्गं ययौ ॥७२॥

संस्कृत टीका—सहिष्णुः=व्रतादिदुखसहनशीलः, सः=राजा दिलीपः, धर्मपत्नीसहितः=सुदक्षिणया युक्तः, श्रोत्राभिरामध्वनिना=कर्णयोः सुखप्रदध्वनिकृता, अनुद्घातसुखेन=अनवरुद्धत्वात् सुखदायकेन, रथेन=स्यन्दनेन स्वेन

स्वकीयेन, पूर्णेन=सफलीभूतेन, मनोरथेन=अभिलाषया, इव=यथा मार्गम्=पन्थानम्, ययौ=जगाम ॥७२॥

संस्कृत भावार्थ—सन्तानप्राप्त्यै क्रियमाण-गो-सेवा-व्रतादि-दुख-सहन-शील: राजा दिलीप: स्वधर्मपत्न्या सुदक्षिणया सह कर्णयो: सुखप्रदध्वनिकृता पाषाणादीनां प्रतिघातरहितत्वात् सुखदायकेन स्वकीयेन रथेन मार्गं जगाम ॥७२॥

शब्दार्थ—धर्मपत्नीसहित:=धर्म पत्नी सुदक्षिणा के साथ। सहिष्णु:=सहनशील। श्रोत्रभिरामध्वनिना=कानों को सुखद ध्वनि से युक्त। अनुद्घात-सुखेन=आघात रहित सुख से। रथेन=रथ के द्वारा। स्वेन=अपने। पूर्णेन=पूर्ण। मनोरथेन इव=मनोरथ के समान। ययौ=गये ॥७२॥

हिन्दी—सहनशील राजा दिलीप कानों को सुख-प्रदायिनी ध्वनि वाले तथा उच्च-नीच भूमि पर न उछलने के कारण सुख देते वाले रथ में बैठकर ऐसे मार्ग को तय करने लगे मानो अपने सफल मनोरथ पर बैठ गये हों ॥७२॥

विशेष—राजा दिलीप सन्तान प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले व्रतादि के कष्ट को सहन करने वाला था। इस प्रकार का राजा अपनी धर्मप्रिया सुदक्षिणा के साथ कानों को प्रिय लगने वाली ध्वनि करने वाले तथा मार्ग में समतल होने के कारण कोई कष्ट न करने वाले रथ पर बैठकर ऐसे चले मानो वे अपने सफल हुये मनोरथ पर चढ़ कर चले हो।

समास—श्रोत्राभिरामध्वनिना=श्रोत्रयो: अभिराम: (षष्ठी तत्पुरुष) श्रोताभिरामध्वनि: यस्य स: (बहुव्रीहि)। धर्मपत्नीसहित:=धर्मपत्न्या सहित: (तृतीया तत्पुरुष)। अनुद्घातसुखेन=अनुद्घात: एव सुख यस्मिन् स: तेन (बहुव्रीहि) ॥७२॥

व्याकरण—अभिराम:=अभि+रम्+घञ्। सहिष्णु:=सह्+इष्णुच्। ययौ=या+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥७२॥

प्रसंग—राजा जब मार्ग को तय करके अयोध्या आते हैं तब व्रतादि के कारण कृश शरीर वाले राजा का स्वागत प्रजा सत्कार-पूर्वक करती है—

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थं व्रतकर्शिताङ्गम् ।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ॥७३॥

अन्वय—अदर्शनेन आहितौसुक्यम् प्रजार्यम् व्रतकर्शिताङ्गम् नवोदयम् तम् प्रजाः तृप्तिम् अनाप्नुवद्भिः नेत्रैः नवोदयम् औषधीनाम् नाथम् इव पपुः ॥७३॥

संस्कृत टीका—अदर्शनेन=अनवलोकनेन, अहितौत्सुक्यम्=जातोत्कण्ठम्, प्रजार्थव्रतकर्शिाङ्गम्=सन्तानप्राप्यर्थक्रियमाणेन व्रतेन कृशीभूतशरीरम्, नवोदयम्=नूतनोदितम्, तम=राजानं दिलीपम्, प्रजाः=अयोध्यावासिनः नगरिकाः, तृप्तिम्=सन्तोषम् अनाप्नुवद्भिः=अलभमानैः, नैत्रैः=नयनैः। नवोदयम्=तत्काल इव अभिभूतम्, औषधीनाम्=वनास्पतीनाम्, नाथम्=स्वामिनम् इव=यथा, पपुः=पातव्यः ॥७३॥

संस्कृत भावार्थ—राजा दिलीपः पुत्र-प्राप्त्यर्थं गो-सेवा-व्रता-धारणाय चिरकालात् वने न्यवसत्। अतः जनता तं नालोकितवती। अतः राज्ञः दर्शनार्थं महती समुत्कण्ठा जाता। गो-सेवा-व्रतकारणात् राज्ञः अंगानि दुर्बलानि आसन्। एवम्भूतं राजानं प्रजा नवोद्भूतं चन्द्रमसम् इव अतृप्तनैत्रैः अवलोकितवत्यः ॥७३॥

शब्दार्थ—अदर्शनेन=न देखने से। अहितौत्सुक्यम्=उत्कण्ठा को उत्पन्न करने वाली। प्रजार्थव्रतकार्शिताङ्गम्=सन्तान के लिये व्रतानुष्ठान के द्वारा दुर्बल अंग वाले। नवोदयम्=नवोदित। तम्=राजा दिलीप को। औषधीनाम् नाथम्=चन्द्रमा के समान। तृप्तिम्=तृप्ति को। अनाप्नुवद्भिः=प्राप्त करते हुये। पपुः=पान किया। ॥७३॥

हिन्दी—बहुत लम्बे समय से न देखे जाने के कारण अत्यन्त उत्सुकता को बढ़ाने वाले तथा सन्तान की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले व्रत के कारण दुर्बल हो गये है अङ्ग जिसके, नवीन अभ्युदय को प्राप्त करने वाले राजा दिलीप को नवोदित चन्द्रमा के समान अतृप्त नेत्रों से देखा ॥७३॥

विशेष—राजा दिलीप सन्तान प्राप्ति के लिए गो-सेवा करने के कारण अधिक समय वन में राजधानी से दूर रहे थे। इससे जनता उनके दर्शन से वञ्चित रही थी। इसके अतरिक्त गो-सेवा में लगे रहने के कारण उसका शरीर दुर्बल हो रहा था। इस प्रकार के राजा को जनता ने अतृप्त नवोदित चन्द्रमा के समान देखा। राजा नवीन अभ्युदय को प्राप्त किये हुए था। और

चन्द्रमा नवोदित है। नवोदित चन्द्रमा भी कृश होता है। राजा भी सेवा के कारण दुर्बल था राजा वनवास के कारण जनता को अदृश्य रहा चन्द्रमा भी उदित होने से पहले नहीं दिखाई देता। प्रस्तुत श्लोक में उसको औषधियों के प्रति चन्द्रमा के समान पान किया। इसमें चन्द्रमा उपमान, राजा उपमेय, नवोदित होना और नेत्रों से पिया जाना साधारण धर्म, तथा इव उपमा का वाचक होने के कारण पूर्णोपमा अलंकार है ॥७३॥

समास—आहितौसुक्यम्=आहितम् औत्सुक्यम् येन सः तम् (बहुव्रीहि)। प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम्=प्रजार्थं च तद् व्रतम् (कर्मधारय) प्रजार्थव्रतेन कर्शितानि अङ्गानि यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)। अनाप्नुवद्भिः=न आप्नुवद्भिः (नञ् तत्पुरुष) ॥७३॥

व्याकरण—आहित=आ+धा+क्त। अदर्शनेन=दृश्+ल्युट् (अन)। तृप्तिम्=तृप्+क्तिन्। पपुः=पा+लिट् प्र० पु० ए० व० ॥७३॥

प्रसंग—राजा दिलीप ने अयोध्या नगरी में प्रवेश कर पुनः राज्य भार को सम्भाल लिया, इसका वर्णन करते हुए महाकवि कहते है—

> पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।
> भुजे भुजगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ॥७४॥

अन्वय—पुरन्दरश्रीः सः पौरैः अभिनन्द्यमानः उत्पताकम् पुरम् प्रविश्य भुजगेन्द्रसमानसारे भुजे भूयः भूमेः धुरम् आससञ्ज ॥७४॥

संस्कृत टीका—पुरन्दरश्रीः=इन्द्रलक्ष्मीकः, सः=राजा दिलीपः, पौरैः=नगरवासिभिः, अभिनन्द्यमानः=स्वागतेन सम्मानितः। उत्पताकम्=उद्गतध्वजम्=नगरीमयोध्याम्, प्रविश्य=अन्तर्गम्य, भुजगेन्द्रसमानसारे=शेषनागतुल्यबलयुक्ते, भुजे=बाहौ भूयः=पुनः, भूमेः=पृथिव्याः, धुरम्=भारम्, आससञ्ज=धृतवान् ॥७४॥

संस्कृत भावार्थ—इन्द्रसदृशशोभः राजा दिलीपः अयोध्या-वासिजनैः क्रियमाणं स्वागतं स्वीकृत्य आहितध्वजम् नगरं प्रविश्य शेषराजसदृशे बलयुक्ते बाहौ पुनः पृथिव्याः भारम् धृतवान्। अर्थात् राजा पुनः राज्यभारं स्वीकृतवान् ॥७४॥

शब्दार्थ—पुरन्दरश्रीः=इन्द्र के समान शोभा वाले। पौरैः=पुरवासियों

के द्वारा। अभिनन्द्यमानः=अभिनन्दन किये गये। उत्पताकम्=उन्नत पताकाओं से सुशोभित। पुरम्=नगर में। प्रविश्य=प्रवेश करके। भुजङ्गेन्द्रसमानसारे=शेषनाग के समान बल वाले। भुजे=भुजाओं पर। भूयः=फिर। भूमेः=पृथ्वी के। धुरम्=भार को। आससञ्ज=धारण किया। ॥७४॥

हिन्दी—इन्द्र के समान शोभा वाले राजा दिलीप ने नगर वासियों के द्वारा किये जाने वाले स्वागत को स्वीकार कर जिसमें ध्वजाएं फहरा रही थीं; ऐसी अयोध्या नगरी में प्रवेश कर सर्पराज के समान बलशाली बाहुओं पर फिर से पृथ्वी के शासन भार को धारण किया ॥७४॥

विशेष—इन्द्र के समान शोभा एवं ऐश्वर्य वाले राजा दिलीप का अयोध्या की जनता ने स्वागत किया। स्वागत को स्वीकार करने के पश्चात् राजा ने राज्य के भार को पुनः अपने ऊपर ले लिया। राजा दिलीप वैभव में इन्द्र के समान था और उसकी भुजाओं में शेषनाग के समान बल था। गो-सेवा करने के लिए वन को जाते समय राजा ने जिस राज्य भार को अपने मन्त्री को सम्हला दिया था, उसे पुनः अपने ऊपर ले लिया। प्रस्तुत श्लोक में-"पुरन्दरश्रीः" तथा "भुजगेन्द्रसमानसारे" इन दो स्थलों पर उपमा अलंकार है। इसके अतरिक्त अनुप्रास अलंकार भी है ॥७४॥

समास—पुरन्दश्रीः=पुरम् दारयति इति पुरन्दरः, पुरन्दरस्य श्रीः इव श्रीः यस्य सः—पुरन्दरश्रीः (बहुव्रीहि समास)। उत्पताकम्=उद्गता पताका यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि समास)। भुजङ्गेन्द्रसमानसारे=भुजैः गच्छन्तीति भुजङ्गाः, भुजङ्गानाम् इन्द्रः भुजङ्गेन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष), भुजङ्गेन्द्रेण समानः सारः यस्य सः तस्मिन् (बहुव्रीहि समास)। ॥७४॥

व्याकरण—पुरन्दरः=पुरम् दारयतीत्यर्थे पुर+दृ+णिच्+खच्=पुरन्दरः। अभिनन्द्यमानः=अभि+नन्द्+यक्+शानच्। प्रविश्य=प्र+विश्+क्त्वा (ल्यप्)। पौरैः=पुरे भवाः इस विग्रह में पुर+अण् तृतीया बहुवचन)। धुरम्=धुर्व्+क्विप् (द्वितीया एकवचन)। आससञ्ज=आ+सञ्ज+लिट् लकार अन्यपुरुष एकवचन ॥७४॥

प्रसंग—सर्ग का उपसंहार करते हुए कवि कहता है—

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः,
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी,
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥७५॥

अन्वय—अथ द्यौः अत्रेः नयनसमुत्थम् ज्योतिः इव सुरसरित् वह्निनिष्ठ्यूतम् ऐशम् तेजः इव राज्ञी नरपतिकुलभूत्यै गुरुभिः लोकपालानुभावैः अभिनिविष्टम् गर्भम् आधत्त ॥७५॥

संस्कृत टीका—अथ=राज्ञः दिलीपस्य राज्यभारग्रहणानन्तरम्, द्यौः=स्वर्गः। अत्रेः=तन्नाम्नः महर्षेः, नयनसमुत्थम्=नेत्रयोःसमुत्पन्नम्, ज्योतिः=प्रकाशः, इव=यथा, सुरसरित्=गंगा, वह्निनिष्ठ्यूतम्=अग्निना प्रक्षिप्तम् ऐशम्=शिवसम्बन्धि, तेजः=वीर्यम्, इव=यथा, राज्ञी=सुदक्षिणा, नरपतिकुलभूत्यै=राज्ञः दिलीपस्य वंशस्य समुन्नत्यै। गुरुभिः=महद्भिः। लोकपालानुभावैः=इन्द्रादीनां अष्टलोकपालानां तेजोभिः, अभिनिविष्टम्=परिपूर्णम्, गर्भम्=भ्रूणम्, आधत्त=धृतवती ॥७५॥

संस्कृत भावार्थ—राजधानीं समागत्य जनैः क्रियमाणं स्वागतं स्वीकृत्य राजा दिलीपः शासनभारं पुनः स्वीकृतवान्। तदा किञ्चित्कालानन्तरं राज्ञी सुदक्षिणा गर्भवती संजाता। तस्या गर्भं इन्द्र,-वायु,-कुबेरादीनाम् अष्टलोकपालानां तेजोभिः सम्भृतमासीत्। भ्रूणोऽयम् सुदक्षिणया एवम् धारितः, यथा द्यौः चन्द्रमसम्, गंगा शैवं तेजः धारितवती ॥७५॥

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद। द्यौः=आकाश। अत्रेः=अत्रि ऋषि के। नयनसमुत्थम्=नेत्रों से उत्पन्न। ज्योतिः इव=तेज के समान। सुरसरित्=देवनदी गङ्गा। वह्निनिष्ठ्यूतम्=अग्नि द्वारा उगले हुए। ऐशम्=शिव जी को। तेजः इव=तेज के समान। नरपतिकुलभूत्यै=राजा के कुल के उन्नति के लिए। लोकपालानुभावैः=इन्द्र आदि लोकपालों के तेज से। अभिनिविष्टम्=युक्त। गर्भम्=गर्भ को। आधत्त=धारण किया ॥७५॥

हिन्दी अर्थ=जिस प्रकार आकाश अत्रि ऋषि के नेत्रों से उत्पन्न ज्योति को और गङ्गा अग्नि से निकले हुए शिव के तेज को धारण करती है, उसी प्रकार रानी सुदक्षिणा ने महाराज दिलीप के कुल के उन्नति के लिए इन्द्रादि लोकपालों के तेजों से युक्त गर्भ को धारण किया ॥७५॥

समास—नयनसमुत्थम्=नयनाभ्यां समुत्थम् (पञ्चमी तत्पुरुष)। सुरसरित्=सुराणां सरित् (षष्ठी तत्पुरुष)। वह्निनिष्ठ्यूतम्=वह्निना निष्ठ्यूतम् (तृतीया तत्पुरुष)। नरपतिकुलभूत्यै=नराणां पतिः नरपतिः, तस्य कुलम्—नरपतिकुलम्, तस्य भूत्यै=नरपतिकुलभूत्यै (तत्पुरुष समास) ॥७५॥

व्याकरण—नयन=नी+ल्युट् (अन)। समुत्थम्=सम+उत्+स्था+क्त। निष्ठ्यूत=नि+ष्ठिव्+क्त। ऐशम्=ईश्+अण्। भूत्यै=भू+क्तिन् (चतुर्थी एकवचन)। अभिनिविष्टम्=अभि+नि+विश्+क्त। अनुभावौ =अनु+भू+घञ् ॥७५॥

विशेष—राजा दिलीप के अयोध्या में आने के पश्चात् राज-कार्य को सम्हालने पर कुछ समय के बाद रानी सुदक्षिणा ने गर्भ को धारण किया। उन्होने गर्भ को उसी प्रकार धारण किया, जिस प्रकार प्राचीनकाल में आकाश ने अत्रि मुनि के नेत्रों से उत्पन्न चन्द्रमा को और गङ्गा ने अग्नि के द्वारा उगले हुए शिव के तेज को धारण किया था। वह गर्भ राजा के कुल का कल्याण करने वाला तथा इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुवेर आदि आठों दिक्पालों के तेज से परिपूर्ण था।

प्रस्तुत श्लोक में "जिस प्रकार आकाश अत्रि ऋषि के नेत्रों से निकले हुए प्रकाशपुञ्ज चन्द्रमा को धारण करता है और गङ्गा शिव से तेज को धारण करती है उसी प्रकार सुदक्षिणा ने गर्भ को धारण किया" इस कथन के द्वारा मालोपमा अलंकार है। यहाँ गर्भ एक उपमेय है और चन्द्रमा तथा शिव का तेज एक से अधिक उपमान है। इसी प्रकार रानी अकेली उपमेय और आकाश एवं गङ्गा एक से अधिक उपमान है। अतः मालोपमा है।

इस श्लोक में मालिनी छन्द है। मालिनी छन्द का लक्षण निम्न प्रकार है—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण हों, उसे 'मालिनी' छन्द कहते हैं।

नयण	नगण	मगण	यगण	यगण
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ
अ थ न	य न स	मु त्थं ज्यो	ति र त्रे	रि व द्योः

सुरस रिदिव तेजो व ह्निनिष्ठ्यू तमैशम्।

नरप तिकुल भूत्यै ग र्भमाध त्त राज्ञी

गुरुभि रभिनि विष्टं लो कपालानु भावैः॥

महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य का द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

परिशिष्ट–१

कालिदास-प्रशस्ति

निर्गतासु न वा यस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।।

(बाणभट्ट)

लिप्ता मधुद्रवेणासत् यस्य निर्विशता गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ।।

(दण्डी)

साकूतमधुरकोकिलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्तिषु ।।

(गोवर्धनाचार्य)

भारविः राजनीतिज्ञः कालिदासो महाकविः ।
भट्टिः व्याकरणज्ञाता माघे सन्ति बहुज्ञताः ।।

(डा० पारसनाथ द्विवेदी)

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।।

(कस्यापि)

कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ।
पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम् ।।

(कस्यापि)

वयमपि कवयः कवयः कवयोऽपि च कालिदासाद्याः ।
दृषदो भवन्ति दृषदश्चिन्तामणयोऽपि हा दृषदः ।।

(कस्यापि)

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासाः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावदनामिका सार्थवती बभूव ।।

(कस्यापि)

कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयश्चापलमात्रं परं दधति ॥

(कस्यापि)

अस्पष्टदोषा नलिनीव हृद्या हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ॥

(श्रीकृष्णकवि)

ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः
शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्र
सिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः ॥

(सोड्ढल)

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां,
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

(कस्यापि)

यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः,
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

(कस्यापि)

वाल्मीकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती,
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम् ।
धाऽसूतामरसिंहमाघधनिकान्सेयं जरा नीरसा,
शून्यालंकरणा स्खलन्मृदुपदा कं वा जनं नाश्रिता ॥

(सुभाषित)

अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो, द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यते ।

(आनन्दवर्धनाचार्य)

परिशिष्ट—२

द्वितीय सर्ग के सूक्तियों की सप्रसङ्ग व्याख्या

१—श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। प्रातःकाल राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के द्वारा पूजित नन्दिनी को जंगल में चराने के लिये ले जाते हैं। गाय के चलने पर सुदक्षिणा भी इसके पीछे-पीछे चलती है। प्रस्तुत प्रसंग में नन्दिनी का अनुसरण करने वाली रानी सुदक्षिणा का वर्णन करते हुये महाकवि कालिदास कहते है—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्

व्याख्या—जिस प्रकार स्मृतियां वेदों के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का अनुसरण करती हैं उसी प्रकार रानी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण किया। भाव यह कि राजा दिलीप नन्दिनी को चराने के लिये वन में ले जा रहे हैं और पतिव्रताओं में श्रेष्ठ रानी सुदक्षिणा नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण कर रही है। यहाँ पर उपमा अलंकार द्वारा यह बताया गया है कि जिस प्रकार स्मृतिशास्त्र किसी विषय की व्यवस्था देने में वेद-वाक्यों का अनुसरण करता है। अर्थात् स्मृतियाँ वेद-वाक्यों के अनुकूल अर्थ का प्रतिपादन करती हैं उसी प्रकार सुदक्षिणा भी भक्तिपूर्ण हृदय से नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण करती है।

यहाँ पर शास्त्रीय उपमा है। नन्दिनी गाय उपमेय और श्रुति (वेद) उपमान, मार्ग उपमेय है और अर्थ उपमान, सुदक्षिणा उपमेय है और स्मृति उपमान अर्थात् स्मृति के समान रानी सुदक्षिणा वेद वाक्यों के अर्थ के समान नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण कर रहीं है।

२—स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से अवतरित है। इस सूक्ति में महाकवि कालिदास ने मनुवंशीय राजा दिलीप के पराक्रम की प्रशंसा की है। राजा दिलीप गुरु वशिष्ठ की गाय नन्दिनी को जंगल में चराने के लिये ले जाते समय रानी सुदक्षिणा और पीछे आते हुये सेवकों को लौटा

दिया तथा गाय की सेवा स्वयं करने लगे। मनुवंश अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ होते हैं इस बात का समर्थन करते हुये महाकवि कालिदास कहते हैं—

न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।

व्याख्या—मनुकुलोत्पन्न क्षत्रिय राजा अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ होते हैं। उन्हें अपने शरीर की रक्षा के लिये किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता नहीं थी। भाव यह है कि राजा दिलीप पुत्र-प्राप्ति की कामना से गो-सेवा का व्रत धारण कर नन्दिनी के सेवक बने हुये थे। नन्दिनी की रक्षा तो वे स्वयं कर रहे थे और उन्हें अपनी स्वयं की रक्षा के लिये भी किसी की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि जो व्यक्ति किसी की सेवा का व्रत धारण किया हो और अपनी रक्षा के लिये सेवक रखे तो वह दूसरों की सेवा क्या कर सकता है ? राजा दिलीप भी नन्दिनी के सेवक हैं। अतः उन्होंने अपनी रक्षा के लिये किसी सेवक की आवश्यकता नहीं समझी। इसलिये उन्होंने पीछे आने वाले अनुचरों को भी लौटा दिया।

प्रस्तुत सूक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकार द्वारा यह बताया गया है कि राजा को अपनी रक्षा के लिये किसी की आवश्यकता नहीं थी। यहाँ पर "मनुवंशी राजा अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ है" इस सामान्य कथन के द्वारा "दिलीप को भी अपनी रक्षा के निमित्त किसी अन्य की आवश्यकता नहीं थी" इस विशेष का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहां पर मनुवंश के पराक्रम की प्रशंसा की गई है।

३. आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत है। इस सूक्ति में महाकवि कालिदास महाराज दिलीप की अन्तर्गत मदावस्था से युक्त मृगेन्द्र से उपमा देते हुए उनके तेज की प्रशंसा की है। राजा दिलीप वन में गाय की सेवा करते हुये छत्र, चंवर आदि राजचिन्हों को छोड़ दिये थे। फिर भी अपने तेज को धारण किये हुए थे। उनकी तेजस्विता का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं—

आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः

व्याख्या—महाराज दिलीप वन में ऐसे गजराज के समान दिखाई दे रहे थे कि जिसके मद की धारा अभी बाहर प्रकट नहीं हुई है किन्तु उसकी शक्ति और कान्ति से यह प्रतीत होता था कि यह मदधारा को बहाने वाला गज है। इसी प्रकार राजा ने छत्र, चंवर आदि राजसी थाट-बाट को छोड़ दिया है किन्तु उनके अन्दर जो तेज विद्यमान था उस तेजोविशेष से यह सहज में अनुमान लगाया जा सकता था कि ये राजा हैं। भाव यह कि यद्यपि राजा राजसी चिन्हों से युक्त नहीं थे। फिर भी उनकी तेजस्विता से यह प्रतीत हो रहा था कि यह राजा दिलीप ही हैं।

यहाँ पर राजा दिलीप की गजराज से उपमा दी गई है। जिस प्रकार अप्रकटित मद वाले और अन्तर्गत मदधारा से युक्त गजराज सुशोभित होता है। उसी प्रकार राजा भी बाह्य राजचिन्हों से रहित और भीतर तेजोविशेष को धारण करने के कारण तेजस्विता से राजा प्रतीत हो रहा था।

४.—भक्त्योपपन्नेषु हि तद्‌विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से अवतरित की गई है। इस सूक्ति में महाकवि कालिदास ने नन्दिनी के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूजा को स्वीकार करने का प्रसंग वर्णन किया है। नन्दिनी बछड़े के लिये उत्सुक होने पर भी धैर्य से खड़ी होकर पूजा को स्वीकार कर रही है। इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं—

भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिन्हानि पुरःफलानि।

व्याख्या—भक्ति से युक्त व्यक्तियों के प्रति नन्दिनी के समान महानुभावों की प्रसन्नता के चिह्न शीघ्र ही फलों को देने वाले होते हैं। भाव यह कि नन्दिनी दिनभर जंगल में चरने के बाद संध्या के समय आश्रम में लौटकर सुदक्षिणा की पूजा को स्वीकार करती है। यद्यपि वह दिनभर से बिछुड़े हुए बछड़े के लिये अत्यन्त उत्सुक थी, फिर भी उसने निश्चल भाव से खड़ी होकर सुदक्षिणा के द्वारा की गई पूजा को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। भाव यह कि नन्दिनी ने भक्ति-भाव से पूजन करती हुई नन्दिनी की सेवा को सहर्ष स्वीकार किया। इससे पता चलता है कि वह अपने भक्त राजा और सुदक्षिणा

पर अत्यन्त प्रसन्न थीं। क्योंकि उत्तम व्यक्ति अपने भक्तों पर तुरन्त ही कृपा करते है। इससे ज्ञात होता है उन्हें शीघ्र ही पुत्र-प्राप्ति रूप फल प्राप्त होगा।

यहां पर अर्थान्तरन्यास अलंकार द्वारा यह बताया गया है कि राजा और रानी को नन्दिनी की कृपा का फल शीघ्र ही प्राप्त होगा। यहाँ पर "महान् व्यक्तियों की कृपा शीघ्र ही फलदायिनी होती है" इस सामान्य के द्वारा 'राजा को नन्दिनी के कृपा का फल शीघ्र मिलेगा' इस विशेष वाक्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

५. भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। महाराजा दिलीप नन्दिनी पर आक्रमण करने वाले सिंह पर बाण प्रहार करने की इच्छा से तर्कस से बाण निकालना चाहा कि उनका हाथ बाण के अग्रभाग पर चिपक गया। इससे दिलीप भीतर ही भीतर क्रोध से जलने लगे। उसी का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं—

राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः।

व्याख्या—अपनी भुजाओं के बंध जाने से अत्यन्त क्रुद्ध राजा दिलीप अपने तेज से भीतर ही भीतर स्वयं जलने लगे। जिस प्रकार मन्त्र और औषधि के प्रभाव से अवरुद्ध हुये शक्ति वाला साँप सपेरे के सामने क्रोध से भीतर ही भीतर जलने लगता है। उसी प्रकार दैव्यशक्ति से अवरुद्ध हाथों वाले राजा दिलीप अत्यन्त क्रुद्ध होकर सामने समीपवर्ती अपराधी को स्पर्श न कर सकने वाले अपने तेज से स्वयं ही भीतर ही भीतर जलने लगे।

यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा यह बताया गया है कि राजा शेर के सामने शक्तिहीन होकर चित्रलिखित के समान उस प्रकार खड़े है जैसे, सपेरे के द्वारा मन्त्र और ओषधि के प्रभाव से सर्प निष्चेष्ट रहता है।

६. पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। जब राजा दिलीप का हाथ सिंह पर प्रहार करने

के लिये तर्कस से बाण निकालते समय बाण पर चिपक जाता है और वे शक्ति-हीन होकर भीतर ही भीतर जलने लगते हैं, उस समय सिंह मनुष्य की वाणी बोलकर राजा को और अधिक विस्मित करता हुआ कहता है—

अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ।।

व्याख्या—सिंह राजा से कहता है कि हे राजन्? जो तुम मेरे ऊपर अस्त्र प्रहार करना चाहते हो वह तुम्हारे द्वारा किया गया अस्त्रप्रहार निष्फल जायेगा। क्योंकि पेड़ों को उखाड़ फेंकने की शक्ति रखने वाला वायु का वेग वृक्षों को तो उखाड़ देता है, किन्तु पर्वत को वह नहीं उखाड़ सकता। अतः मुझे मारने के लिये तुम्हारा प्रयास व्यर्थ होगा। कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार पेड़ों को उखाड़ देने वाली आँधी पर्वत का कुछ नहीं बिगाड़ पाती उसी प्रकार आपके द्वारा प्रहार किया गया अस्त्र मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। अतः आप मेरे ऊपर प्रहार करने की चेष्टा न करें।

७. शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्ष्यं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति कालिदास कृत रघुवंश के द्वितीय सर्ग से अवतरित की गई है। इस सूक्ति में कालिदास ने यह बताया है कि जो कार्य अपने सामर्थ्य से बाहर हो उस कार्य के न होने पर उसके यश मे कोई कमी नहीं आती। जब राजा दिलीप गाय की रक्षा करने में असमर्थ हो जाते हैं। उस समय वह राजा को गाय का परित्याग कर लौट जाने की सलाह देता हुआ कहता है—

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान् दर्शितशिष्यभक्तिः ।
शस्त्रेण रक्ष्य यदशक्यरक्ष्यं न तद् यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ।।

व्याख्या—सिंह राजा से कहता है कि हे राजन्? मैंने आप के द्वारा रक्षित इस गाय को दबोच लिया है और आप कुछ नहीं कर पा रहे हैं। इससे आप को लज्जा नहीं आनी चाहिये कि गुरु के धन गाय को छोड़कर आप अकेले कैसे वापिस जायेंगे। आपने गुरु के प्रति अपार भक्ति दिखला दी है। अतः आप लौट जायें इससे आप का यश कम नहीं होगा क्योंकि शस्त्र के द्वारा रक्षा करने योग्य वस्तु की यदि शस्त्रों से रक्षा नहीं की जा सके तो उससे शस्त्र

धारण करने वाली की कीर्ति नष्ट नहीं होती। अतः आप अपनी शक्ति से इस गाय की रक्षा के लिये पूरा प्रयास किया है। इस पर भी यदि आप उसकी रक्षा नहीं कर सकें, उससे आपका यश कम नहीं होगा। आपके रक्षा में अस-फल होना आपकी शक्तिहीनता का द्योतक नहीं है, बल्कि यह तो शंकर का प्रभाव है जिसके कारण आप उसकी रक्षा नहीं कर सके।

८. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है इस सूक्ति में महाकवि कालिदास ने यह बताया है कि गाय की रक्षा करने में असमर्थ राजा सिंह से निवेदन करता है—हे मृगराज? आप इस गाय को छोड़ दीजिए और इसके बदले में मुझे खाकर अपनी क्षुधा शान्ति कर लीजिये। राजा के इस प्रस्ताव को सुनकर सिंह राजा की मूर्खता पर हँसने लगता है और राजा से कहता है—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥

व्याख्या—सिंह राजा से कहता है—हे राजन्? मेरे विचार से तुम मूर्ख मालूम पड़ते हो क्योंकि आप इस छोटी सी वस्तु के लिये अपने इस मूल्यवान् शरीर का विनाश करना चाहते हो। आपके पास संसार का एकच्छत्र राज्य है, समस्त जगत् की प्रभुता है, नयी युवावस्था है और सुन्दर शरीर है फिर भी तुम इस छोटी सी गाय के लिये इनका त्याग करने को तैयार हो। अतः मेरी दृष्टि में तुम मूर्ख मालूम पड़ते हो : क्योंकि थोड़े से फल के लिए महान् त्याग करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? अतः तुम्हें इस तुच्छ गाय के लिये सुन्दर शरीर को नहीं त्यागना चाहिए।

९. ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। इस सूक्ति में महाकवि कालिदास ने यह बताया है कि जब राजा सिंह के सामने अपने शरीर को अर्पित कर गाय को छुड़ाना चाहा तब सिंह राजा की मूर्खता पर हँसता हुआ उनके शरीर की रक्षा का उपदेश देता हुआ कहता है—

महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ।

व्याख्या—सिंह राजा से कहता है कि हे राजन्? विद्वान् लोग समृद्धशाली राज्य को पृथ्वीतल से सम्बन्ध होने के कारण स्वर्ग से पृथक् हुआ इन्द्र का स्थान कहते हैं। भाव यह कि सिंह कहता है कि हे राजन्? तुम पहले अनेक कल्याणमय परम्पराओं का उपभोग करने वाले अपने इस शरीर की रक्षा कीजिए। इस छोटी सी गाय के लिये अपने सुन्दर शरीर का विनाश मत कीजिए। कहा भी है "शरीमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् पहले शरीर की रक्षा करनी चाहिए। तदनन्तर धर्मसाधन करना चाहिये। अतः आप भी पहले अपने शरीर की रक्षा कीजिए तब गो-सेवा रूप धर्म का पालन कीजिए। क्यों कि यदि आप जीवित रहते हैं तो अनेक प्रजाओं का पालन कर सकते हो और विविध प्रकार धर्मों का पालन भी कर सकते हो; क्योंकि आपके पास इतना समृद्धशाली राज्य है जो इन्द्र के पद के समान है। अर्थात् आपका राज्य समृद्धि में इन्द्र से कम नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि इन्द्र का राज्य स्वर्ग में है और आपका राज्य पृथ्वी पर है।

१०. एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति कालिदास कृत रघुवंश के द्वितीय सर्ग से अवतरित है। इस सूक्ति में महाकवि कालिदास ने यह बताया है कि जब सिंह राजा को शरीर-रक्षा के लिए उपदेश देता है तब वह यशःशरीर की रक्षा के लिए प्रार्थना करता है। तब वह यशःशरीर की रक्षा का महत्त्व बताते हुए भौतिक शरीर के प्रति अनास्था प्रगट करता है। इसी बात का प्रतिपादन करते हुए महाकवि कहते हैं—

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।

व्याख्या—राजा कहता है कि हे मृगराज! यदि आप किसी कारणवश मुझे अवध्य समझते है तो आप मेरे इस भौतिक शरीर की चिन्ता न कर मेरे यशरूपी शरीर पर कृपा कीजिए। क्योंकि यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश इन पञ्च महाभूतों से बना हुआ है। ये पाँचों महाभूत अनित्य हैं, अतः उनसे निर्मित वह शरीर भी अनित्य है। इसलिए मुझे इस नश्वर भौतिक शरीर के प्रति कोई आस्था नहीं है। यह भौतिक शरीर एक दिन अवश्य ही नष्ट हो जायगा। केवल यश रूपी शरीर ही स्थायी रहेगा।

अतः इस नश्वर शरीर की अपेक्षा मुझे अपना यशःशरीर अधिक प्रिय है। यदि आपकी मेरे ऊपर अधिक कृपा है। तो इस भौतिक शरीर को नष्ट होने दीजिए और इस यशःशरीर की रक्षा कीजिए। जैसा कि कहा है कि 'दुष्कीर्तिः मरणादतिरिच्यते' अर्थात् अयश मृत्यु से भी बढ़कर है। अतः मैं अपने इस यश रूपी शरीर की रक्षा करना चाहता हूँ।

११—सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। जब राजा दिलीप ने सिंह को अपना शरीर अर्पित कर नन्दिनी की रक्षा के लिये प्रार्थना की तब सिंह ने उन्हें अनेके प्रकार के प्रलोभन देकर शरीर की रक्षा का उपदेश दिया, किन्तु दिलीप इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने सिंह से कहा कि आप मेरे मित्र हैं। अतः मेरे भौतिक शरीर की अपेक्षा यशःशरीर की रक्षा करें। इस बात का कथन करते हुए कालिदास कहते हैं—

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः।

व्याख्या—राजा दिलीप कहते हैं कि हे मृगराज! सज्जनों की मित्रता वार्तालापमात्र से ही हो जाती है। वह इस वन में हम दोनों की परस्पर वार्तालाप होने से आपस में मित्रता हो गयी। इसलिये हे शिव के अनुचर! जब आप मेरे अभिन्न मित्र हो गये हैं तो अपने मित्र की प्रार्थना को स्वीकार कर गाय को छोड़ दें। राजा के कहने का तात्पर्य यह है सज्जनों की मित्रता सात पग चलने मात्र से ही हो जाती है "सतां हि सख्यं साप्तपदीनमुच्यते"। यह मित्रता इस जंगल में वार्तालाप मात्र से हो गई। अतः मैं आपका मित्र हूँ। इसलिए मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर इस गाय को छोड़ दीजिए और इसके बदले में मेरे शरीर को खा लीजिए।

१२—शशंस वाचा पुनरुक्तयेव—

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग से उद्धृत की गई है। राजा दिलीप ने जब अपनी भक्ति से नन्दिनी को प्रसन्न कर लिया तब नन्दिनी ने राजा को पुत्र-प्राप्ति रूप दान देकर यह आदेश दिया कि वह मेरे दूध को एक दोने में दुहकर पी ले। किन्तु राजा ने यह कहा कि वछड़े के दूध

पी लेने के पश्चात् और यज्ञ कार्य से बचे हुए दूध को गुरु की आज्ञा से पिऊँगा। इस पर नन्दिनी और अधिक प्रसन्न हुई और वे दोनों आश्रम को लौट आये। गुरु वशिष्ठ से नन्दिनी की प्रसन्नता की चर्चा राजा ने की। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं कि—

प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव।

व्याख्या—राजा नन्दिनी के साथ जब आश्रम में लौटा तो गुरु वशिष्ठ ने राजा को प्रसन्न मुख देखकर यह अनुमान लगा लिया कि नन्दिनी राजा पर प्रसन्न हो गई है और उनकी कामनाओं को पूर्ण कर दिया है। फिर भी राजा ने गुरु वशिष्ठ से नन्दिनी की प्रसन्नता का सारा समाचार सुनाया उस समय ऐसा लग रहा था कि मानो एक बार कही हुई बात दुबारा कही जा रही है। दिलीप का उक्त कथन पुनरुक्ति के समान लग रहा था। भाव यह कि राजा के मुख की प्रसन्नता के चिन्हों से ही गुरु वशिष्ठ ने यह जान लिया था कि नन्दिनी राजा पर प्रसन्न हो गई है और उनकी मनोकामना को पूर्ण कर दिया है। किन्तु राजा के द्वारा यह समाचार सुनाया जाना पुनरुक्ति के समान प्रतीत हो रहा था। कही गई बात को दुबारा कहना पुनरुक्ति है। यहाँ पर एक बार समाचार प्रसन्नता के चिन्हों से प्रगट हो गया और दुबारा राजा के द्वारा कहे जाने पर। अतः वह पुनरुक्ति के समान लग रहा था।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

परिशिष्ट--३

विश्वविद्यालयों में प्रष्टव्य प्रश्नों के उत्तर

१. संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति और विकास पर एक टिप्पणी लिखिए—

संस्कृत साहित्य में श्लोक रचना करने वाले को कवि और उसकी रचना को 'काव्य' कहते हैं। काव्य के दो वर्ग हैं—दृश्य और श्रव्य। इनमें श्रव्यकाव्य के तीन भेद किये गये हैं—गद्य, पद्य और चम्पू। इनमें पद्यकाव्य तीन प्रकार का होता है—महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक। संस्कृत में पद्यकाव्य का विशेष महत्त्व है।

काव्य का मूलस्रोत वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में उदार एवं दानी राजाओं की प्रशंसा की गई है जिसे 'नाराशंसी' के नाम से अभिहित किया है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी दान की कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इन दानकथाओं में काव्य का स्वरूप देखा जा सकता है। नदीसूक्त, उषःसूक्त आदि काव्य की दृष्टि से विशेष सुन्दर है। उषः का मनोहारी वर्णन सहृदयों को आनन्दविभोर करता है। कुछ विद्वान् प्राकृत काव्यों को संस्कृत-काव्य का मूल स्रोत मानते हैं, किन्तु उनका यह विचार युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्राकृतकाव्य के उद्गम के बहुत पहले संस्कृतकाव्यों का उद्गम हो चुका था। वेदों में वर्णित दानी राजाओं के प्रशंसा-परक स्तुतियों के आधार पर शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों पर दानी राजाओं की कीर्तियां वर्णित हैं। जिसमें काव्य का मनोहारी सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। इनमें हरिषेण की 'समुद्रगुप्तप्रशस्ति' और वत्सभट्टि की 'मन्दसोर-प्रशस्ति' विशेष उल्लेखनीय हैं।

परम्परानुसार संस्कृत काव्यों का उदय पाणिनि के बहुत पूर्व हो चुका था। उस समय सरल एवं सुकुमार भाषा में काव्यों का प्रणयन होता था। सूक्ति-ग्रन्थों में पाणिनि-विरचित अनेक पद्य मिलते हैं जो काव्यकला की दृष्टि से अत्यन्त मनोहर हैं। सूक्ति-ग्रन्थों में वररुचि के नाम से भी अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं। पतञ्जलि ने महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी

नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि पतञ्जलि के समय तक कई संस्कृत काव्यों का निर्माण हो चुका था। और वे काव्य अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके थे।

शुङ्गकाल में रामायण, महाभारत जैसे काव्यों की रचना हुई है। उसके पश्चात् 'गुप्तकाल' संस्कृत काव्य-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस युग के महाकवि अश्वघोष हैं उन्होंने अनेक नाटक और महाकाव्यों का निर्माण किया है। अश्वघोष के पश्चात् महाकवि कालिदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत काव्य को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। कालिदास के समकालीन कुमारदास ललित भाषा में 'जानकीहरण' महाकाव्य का निर्माण किया। इस सुकुमारपद्धति के कवियों के बाद अलंकारशैली में काव्य-निर्माण की एक परम्परा रही है। इस परम्परा के महाकवि 'भारवि' माघ, और श्रीहर्ष आदि हैं। परवर्ती कवियों ने इसी परम्परा में काव्यों की रचना की है। इस प्रकार विभिन्न रूपों में संस्कृतकाव्य विकसित होता हुआ आज भी निर्माण की दिशा में पूर्ण सक्षम दिखाई देता है।

इस प्रकार संस्कृत-काव्य महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक न इतीन विधाओं में विकसित हुआ है। महाकाव्य का कथानक खण्डकाव्य की अपेक्षा बृहद् होता है और उसका नायक धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त होता है। काव्य के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण होता है और बीच में विविध प्रकार के दृश्यों का चित्रण होता है। खण्डकाव्य महाकाव्य की अपेक्षा छोटा होता है उसमें जीवन की सम्पूर्ण घटना का वर्णन न होकर किसी विशेष अंश का वर्णन होता है। जैसाकि विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है—

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।

मेघदूत, गीतगोविन्द आदि काव्य खण्डकाव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं। मुक्तककाव्य का प्रत्येक श्लोक अपने में पूर्ण स्वतन्त्र होता है। इसमें पूर्वापर प्रसङ्ग की कोई आवश्यकता नहीं होती। भर्तृहरि का शतकत्रय, अमरू का अमरुशतक आदि काव्य मुक्तककाव्य की श्रेणी में आते हैं।

इस प्रकार संस्कृत काव्यनिर्माण की एक विशाल परम्परा रही है। वेदोत्तरकाल से लेकर संस्कृत मे अनेक महाकाव्यों और मुक्तक काव्यों का

निर्माण हुआ है। जहां प्राचीन काव्यों में भावपक्ष का प्रधान रहा है वहां परवर्ती काव्यों में कलापक्ष का विशेष महत्त्व रहा है।

२—संस्कृत महाकाव्यों के उद्गम व विकास पर एक लेख लिखिये—

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के निर्माण की परम्परा कब प्रारम्भ हुई? इसका पता चलना कठिन है। हाँ महाकाव्य की परम्परा का स्रोत वेदों में देखा जा सकता है। परम्परा के अनुसार संस्कृत महाकाव्य के निर्माण का श्रेय महर्षि पाणिनि को दिया जाता है। पाणिनि ने 'जाम्बवती-विजय' और 'पाताल-विजय' नामक दो महाकाव्यों का निर्माण किया है। किन्तु ये ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान् काव्य-प्रणेता पाणिनि को वैयाकरण पाणिनि से भिन्न मानते हैं किन्तु राजशेखर ने दोनों को एक माना हैं। पाणिनि के पश्चात् वररुचिकृत 'कण्ठाभरण' नामक एक महाकाव्य का उल्लेख मिलता है। किन्तु वह काव्य भी आज उपलब्ध नहीं है।

वस्तुतः महाकाव्य के निर्माण का प्रारम्भ वाल्मीकि से माना जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' नामक काव्य की रचना की है जिसे लौकिक साहित्य का आदिकाव्य कहा जाता है। 'रामायण' को संस्कृत का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इसकी शैली सरस, स्वाभाविक और मनोरम है। यह रसमयी शैली में लिखा गया अद्वितीय महाकाव्य है। इसमें प्राकृतिक वर्णनों के साथ आलंकारिक छटा भी दर्शनीय है।

रामायण के पश्चात् महाकाव्य के निर्माता अश्वघोष हैं। उन्होंने 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' नामक महाकाव्यों की रचना की है। इनकी भाषा व शैली अधिक परिमार्जित है। इसके पश्चात् महाकाव्य पूर्ण परिमार्जित स्वरूप कालिदास के काव्यों में देखने को मिलता है। कालिदास के 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' दो महाकाव्य हैं। उनके महाकाव्यों की भाषा सरस, मधुर एवं सुरुचिपूर्ण हैं। उनके काव्यों में प्रसादगुण एवं भावपक्ष का विवेचन अत्यधिक पाया जाता है। 'उपमा' के तो वे प्रख्यात महाकवि हैं।

कालिदास के पश्चात् महाकाव्य के निर्माण की दिशा में एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ है जो 'अलंकृत-शैली' के नाम से प्रसिद्ध है। इस शैली के आचार्य महाकवि भारवि है। उन्होंने अलंकृत-शैली में 'किरातार्जुनीय'

नामक महाकाव्य लिखा है। इस शैली के महाकाव्यों में कथावस्तु के साथ-साथ नदी, पर्वत आदि प्राकृतिक दृश्यों तथा कल्पनामय वर्णनों का प्राचुर्य दिखाई देता है। इसी परम्परा के अनुयायी महाकवि माघ भी हैं। इन्होंने इसी अलंकृत-शैली में 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य में अलंकृत-शैली का विकसित रूप दिखाई देता है।

माघ के पश्चात् श्रीहर्ष ने इसी शैली में 'नैषधचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है। उनका यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य में अद्वितीय माना जाता है। इसी परम्परा में लिखा गया रत्नाकर का 'हरविजय' महाकाव्य भी है। इस परम्परा में महाकवियों की स्वाभाविक वर्णन की ओर उतनी अधिक रुचि नहीं रहीं है। उनका दृष्टिकोण स्वाभाविक वर्णन की अपेक्षा पाण्डित्यप्रदर्शन की ओर अधिक रहा है।

इस प्रकार परवर्त्ती युग में कवियों की दृष्टि स्वाभाविक वर्णन की अपेक्षा कृत्रिमता अधिक रही है। थोड़े से विषय को बढ़ा-चढ़ाकर इस प्रकार वर्णन करते थे कि वह एक सुन्दर प्रबन्ध का रूप धारण कर लेता था। इस शैली का इतना विकास हुआ कि एक-एक श्लोक में दो-दो, तीन-तीन अर्थ निकलने लगे। ऐसे महाकाव्य, द्व्यर्थी महाकाव्य कहलाते थे। इस शैली के महाकाव्यों में धनञ्जय का 'द्विसन्धान महाकाव्य' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त हरिदत्तसूरि का 'राघवनैषधीय' कविराज सूरि का 'राघवपाण्डवीय' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण द्व्यर्थी महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों में एक साथ दो अर्थ निकलते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ महाकाव्य ऐसे हैं। जिनके तीन-तीन अर्थ निकलते हैं। इस प्रकार के महाकाव्यों मैं चिदम्बरिसुमति का 'राघवपाण्डवयादवीय' और दीक्षित का 'राघवयादवपाण्डवीय' अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाव्य है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक महाकाव्य भी हैं। जिनमें इतिहास के विवेचन के साथ काव्यगत सौन्दर्य भी परिपूर्ण रूप में पाया जाता है। इस प्रकार के महाकाव्यों में विल्हण का 'विक्रमाङ्कदेवचरित' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है।

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य विभिन्न अवस्थाओं में विकसित होता रहा है और युगसीमा के अन्तर्गत विभिन्न रूपों में परिवर्तित होता रहा है। किन्तु उसके विकास की एक परम्परा रही है जो आज भी विद्यमान है। आज भी अनेक ऐसे महाकाव्य लिखे गये हैं जिनमें काव्यकला तथा काव्यगत सौन्दर्य प्राचीन महाकाव्यों की अपेक्षा कम नहीं है और साथ में उनकी अपनी नवीन मान्यतायें भी हैं। इस प्रकार के आधुनिक महाकाव्यों में उमापति द्विवेदी कृत 'पारिजातहरणमहाकाव्य' विशेष उल्लेखनीय हैं।

३. महाकाव्य किसे कहते हैं? रघुवंश एक महाकाव्य है इस कथन की समीक्षा कीजिये—

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने महाकाव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण प्रस्तुत किये हैं। यहाँ हम आचार्य दण्डी द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षण के अनुसार रघुवंश के महाकाव्यत्व की समीक्षा कर रहे हैं। दण्डी के अनुसार महाकाव्य का लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए।
२. महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु-निर्देशात्मक मङ्गलाचरण होना चाहिए।
३. महाकाव्य का नायक देवता या धीरोदात्तादिगुणविशिष्ट उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए।
४. महाकाव्य का कथानक इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए अथवा किसी सज्जन का चरित्र-चित्रित होना चाहिए।
५. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति महाकाव्य का लक्ष्य होना चाहिए।
६. महाकाव्य में नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, उद्यान, जलक्रीड़ा आदि विविध वर्णनों से अलंकृत होना चाहिए।
७. महाकाव्य में शृंगार, वीर और शान्त रसों में कोई एक रस प्रधान होना चाहिए।
८. महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। सर्ग न बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे। सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए।

९. प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होना चाहिए किन्तु सर्ग के अन्त का छन्द बदल जाना चाहिए।

१०. महाकाव्य का नाम कथावस्तु कवि अथवा नायक के नाम पर होना चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप पर अलग-अलग दृष्टिकोण से विचार किया है। उन्होंने महाकाव्य के दो भेद माने हैं–विकसित महाकाव्य और कलापूर्ण महाकाव्य। विकसित महाकाव्य की कोटि में वे महाकाव्य आते हैं, जो पहले गाथाओं के रूप में प्रचलित रहे हैं और शनैः शनैः विकसित होकर कालान्तर में महाकाव्य के रूप में आये हैं। इस प्रकार के काव्य की श्रेणी में वाल्मीकीय रामायण को रखा जा सकता है। कलापूर्ण महाकाव्य वे है जिनकी रचना कवि अपनी कलाकौशल द्वारा करता है। इस प्रकार के महाकाव्य की श्रेणी में रघुवंश, किरातार्जुनीय आदि महाकाव्य आते हैं। अब हम यहाँ भारतीय लक्षण के अनुसार रघुवंश को महाकाव्य की कसौटी पर परीक्षा करते हैं—

१. भारतीय लक्षण के अनुसार रघुवंश एक सर्गबद्ध महाकाव्य है। इसमें कुल १९ सर्ग हैं और ३७ राजाओं का बर्णन है।

२. रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया गया है। महाकवि ने प्रारम्भ में पार्वती और परमेश्वर की बन्दना रूप मंगलाचरण किया है।

३. रघुवंश महाकाव्य का नायक उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय राजा है। विश्वनाथ के अनुसार एक बंश में उत्पन्न अनेक क्षत्रिय राजा भी नायक हो सकते हैं। इस दृष्टि से रघुवंश में अनेक कुलीन क्षत्रिय राजाओं का चरित्र-चित्रण होने से उसके नायक अनेक हैं।

४. रघुवंश की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध हैं। इसमें सूर्यबंशी राजाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इसके अठारहवें सर्ग में बीस राजाओं का वर्णन है।

५. इस महाकाव्य का प्रमुख लक्ष्य पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति है। धर्म, अर्थ, काम, और अन्त में मोक्ष को प्राप्त करना ही सूर्यवंशी राजाओं का प्रमुख लक्ष्य है।

६. यह महाकाव्य विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक तथा अन्य वर्णनों से परिपूर्ण है। इसमें स्थान-स्थान पर नदी, पर्वत, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, उद्यान, यात्रा, युद्ध आदि का मनोरम वर्णन है। रघुवंश के पंचम सर्ग का प्रभातवर्णन, त्रयोदश सर्ग में वन, नदी, पर्वत, समुद्र आदि का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट और मनोहारी है।

७. रघुवंश महाकाव्य में भावानुसार शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसों का वर्णन किया गया है। जैसे—दिलीप के वर्णन में करुण और शान्त, रघु के वर्णन में वीर और शान्त रस का चित्रण दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त राम के युद्धवर्णन में वीर रस, अज के विलाप में करुण रस, अग्निवर्ण के वर्णन में शृंगार रस और आश्रम के वर्णन में शान्त रस का प्रमुख रूप से चित्रण हुआ है।

८. इस महाकाव्य में ८ से अधिक १९ सर्ग हैं। सर्ग न बहुत बड़े हैं न बहुत छोटे हैं।

९. रघुवंश के प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। और सर्ग के अन्त का छन्द परिवर्तित कर दिया गया है। किन्तु यह परिवर्तन छोटी-बड़ी घटनाओं के आधार पर छोटे-बड़े छन्दों में किया गया है।

१०. इस महाकाव्य का नाम सूर्यवंशी दानवीर प्रतापशाली राजा रघु के नाम पर रखा गया है।

इस प्रकार रघुवंश विविध प्रकार के वर्णनों से परिपूर्ण है। इसमें अनेक प्रकार के उदात्त आदर्शों का चित्रण किया गया है। इस महाकाव्य मे दृश्यों का वर्णन नाटकीय ढंग से किया गया है जो पाठकों के हृदय को बलात् आकृष्ट करता है रघु के शौर्य और पराक्रम के साथ उनकी दानशीलता का वर्णन भारतीय-संस्कृति के आदर्श उदाहरण है। इस प्रकार रघुवंश आदर्शवाद का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार रघुवंश को यदि महाकाव्य की कसौटी पर कसते है। तो यह एक सफल महाकाव्य ठहरता है। यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें कथानक का चयन बड़ी सफलता के साथ किया गया है। अतः रघुवंश एक उत्तम महाकाव्य है।

४—महाकवि कालिदास के जन्म-स्थान और जीवन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए—

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर इस ग्रन्थ की भूमिका (पृष्ठ ५ से ९ तक) में देखिए।

५—महाकवि कालिदास के स्थितिकाल की विवेचना कीजिए —

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर इस ग्रन्थ की भूमिका पृष्ठ (९ से १५ तक) में देखिए।

६—'कविकुलगुरुः कालिदासः' इस कथन की समीक्षा कीजिए—

कविकुलगुरु महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र है। जिसके उज्ज्वल प्रकाश से सारा संस्कृत साहित्य देदीप्यमान है। उनके काव्यों में उच्चकोटि का नैतिक आदर्श भरा पड़ा है। उन्होंने मानव-हृदय के मार्मिक स्थलों कों परखा है और उनका मनोरम एवं हृदयावर्जक चित्रण किया है। उनकी काव्य-कला और वस्तु-चित्रण संस्कृत साहित्य का अनुपम उदाहरण है।

महाकवि कालिदास रससिद्ध कवि है। उनके काव्यो में सभी रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है उनकी रसमय कविता को पढ़कर प्रत्येक सहृदय पाठक थिरक उठता है, क्या शृंगार, क्या करुण, क्या वीर, क्या शान्त और क्या हास्य रस सभी रसों के चित्रण में वे अद्वितीय हैं इन विविध प्रकार के रसों के चित्रण से उनका काव्य परिपूर्ण है।

महाकवि का जीवन उच्च आदर्शों से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने उच्च आदर्श को सामने रखकर एक दिव्य सन्देश दिया है। वे समाज के अमङ्गल के विनाश की कामना करते है। उनके आदर्श में श्रेय और प्रेय दोनों का सम्मिश्रण है उनका प्रेय श्रेय से बढ़कर है। स्त्री-समाज के प्रति वे अत्यन्त उदार थे। उन्होंने राम के द्वारा परित्यक्ता सीता का चरित्र आदर्श की उच्च सीमा पर पहुँचाने का प्रयास किया है। दुष्यन्त के द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला की रक्षा के लिए स्वर्ग की अप्सरा को प्रस्तुत करते है। उसे आश्रम में लाकर रखते है। जहाँ वह अपनी मर्यादा से विचलित नहीं होती। उनका नैतिक आध्यात्मिक आदर्श भी कम नहीं है। उनका किसी धर्म विशेष के प्रति आग्रह या द्वेष नहीं था। उनका विचार समवन्यात्मक था। वे शैव होते हुये भी

ब्रह्मा, विष्णु और शिव में अभेद मानते थे। उनकी सभी धर्मों में समान अभिरूचि थी।

महाकवि प्रेम और सौन्दर्य के महाकवि है उन्होंने अपने काव्यों और नाटकों में सरस और स्वाभाविक चित्रण किया हैं। उनका प्रेम कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है, उनके प्रेम में संयम है और उनमें किसी प्रकार की उच्छृंखलता नहीं आने पाई है। जैसा कि निम्नलिखित वर्णन में बताया गया है कि संयमी पुरुषों का मन परस्त्री के प्रेम से विमुख रहता है—

कुमुदान्येव शशांकः सविता बोधयति पंकजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङमुखी वृत्तिः ॥

महाकवि कालिदास ने प्रेम के साथ कर्त्तव्य-भावना पर अधिक बल दिया है। दुष्यन्त यद्यपि प्रेम का प्रतीक है, किन्तु देवों के लिये इन्द्र का निमन्त्रण पाते ही तैयार हो जाता है। प्रेम-वश कर्त्तव्य से पराङ्मुख होने पर मानव को कष्ट सहन करना पड़ता है। प्रेम-वश होने पर शकुन्तला को दुर्वासा की आतिथ्य-सेवा से पराङ्मुख होने के कारण शकुन्तला को कष्ट उठाना पड़ा था। कर्त्तव्यविमुख होने के कारण ही यक्ष को विरहदुःख सहन करना पड़ा था। इसी प्रकार कर्त्तव्य-विमुख राजा अग्निवर्ण का पतन हुआ था। कालिदास सौन्दर्य-वर्णन में अद्वितीय है। उहोंने सौन्दर्य का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। उन्होंने मानव के साथ प्रकृति का सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया है। उनके विचार से वास्तविक सौन्दर्य सभी दशाओं में रमणीय होता है—

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।

उन्होंने मानव-सौन्दर्य का मनोरम वर्णन किया है और प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है। जैसा कि अभिज्ञान-शाकुन्तल में शकुन्तला का तादात्म्य प्रकृति से बैठाने का प्रयास प्रशंसनीय है। शकुन्तला का अधर नवकिसलय के समान लाल है भुजायें कोमल शाखाओं के समान सुकुमार है और अंगों में झलकता हुआ यौवन पुष्प के समान लुभावना है—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम् ॥

महाकवि का प्रकृति-चित्रण भी अतीव सुन्दर एवं सजीव है। उनकी प्रकृति पात्रों से हँसती और रोती हुई दिखाई देती है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर उसका चित्रण किया है। मेघदूत का प्रकृति-चित्रण तथा कुमार-सम्भव एवं रघुवंश का प्रकृति-चित्रण अधिक चित्ताकर्षक एवं मनोरम है।

कालिदास का भाव-चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर है। उनकी निरीक्षण-शक्ति सूक्ष्म और अपूर्व है। उन्होंने मानव-हृदय के भावों को अत्यन्त कुशलता से चित्रित किया है। उनकी सुकुमार एवं कोमल भावनाओं का एक सुन्दर एवं सजीव चित्र देखिए—शकुन्तला के विदाई के समय महर्षि कण्व का हृदय प्रेम से द्रवित हो जाता है और वह कह उठते हैं—जब मुझ अरण्यवासी को पुत्री वियोग के समय इतनी विकलता हो रही है तो गृहस्थ लोग कितने विकल होते होंगे।

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।

कालिदास ने भावपक्ष के साथ कलापक्ष का भी अतीव सुन्दर वर्णन किया है। अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग में वे अत्यन्त कुशल हैं उपमा के वर्णन में तो वे बेजोड़ है। इसीलिये उनके सम्बन्ध में 'उपमा कालिदासस्य" यह सूक्ति प्रचलित है। कालिदास के काव्यों में उपमा के उदाहरण पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं।

"दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या", "श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्" आदि उपमाएँ नवीन एवं मौलिक हैं। उपमा के अतिरिक्त रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, यमक आदि अलंकारों के चित्रण में भी वे विशेष कुशल है। इस प्रकार वे कलापक्ष और भावपक्ष दोनों के चित्रण में अनुपम है और उनका अलंकारों का विन्यास तो अद्वितीय है।

महाकवि कालिदास के सभी वर्णन सुन्दर हैं उनके काव्यों की भाषा सरस एवं सुबोध है और शैली रोचक है। उन्होंने अपने काव्य में वैदर्भी

रीति का प्रयोग किया है उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वैदर्भीरीति के वर्णन में महाकवि कालिदास सर्वश्रेष्ठ है—

वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ।

महाकवि के काव्यों में काव्य-सौन्दर्य की अद्भुत छटा दिखाई देती है। उनके काव्यों में सर्वत्र प्रसाद गुण पाया जाता हैं। भावानुकूल शब्दों का सुन्दर प्रयोग इनकी निजी विशेषता है। भाषा में कहीं भी कृत्रिमता एवं कठिनता नहीं आने पाई है। उनकी भाषा में सरसता एवं मधुरता प्रमुख गुण हैं।

कालिदास ने अपने काव्यों में छन्दों का समुचित प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग में वे विशेष कुशल दिखाई देते हैं। विषयानुकूल छन्दों का वर्णन उनकी अपनी विशेषता है। मेघदूत में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग अत्यन्त सजीव हो गया है। शोक एवं करुणा के समय वैतालीय छन्द और चपलता-वर्णन के प्रसंग में रथोद्धता का प्रयोग अत्यन्त प्रशंसनीय है।

इस प्रकार कालिदास रस, भाव, भाषा, शैली आदि सभी की दृष्टि से एक उच्चकोटि के महाकवि हैं। उन्होंने क्या महाकाव्य, क्या गीतिकाव्य, तथा क्या नाटक सभी में अपनी कलाकौशल का पूर्ण परिचय दिया है। जहाँ वे एक उच्चकोटि के काव्यकार है वहाँ वे एक सफल गीतिकाव्यकार एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा को देखकर ही समालोचकों ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ महाकवि के रूप में सम्मानित किया है। उनकी दृष्टि में कालिदास के समान दूसरा कवि न हुआ और न होगा। जैसा कि महाकवि के सम्बन्ध में कहा गया है—

"पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव"

इस प्रकार महाकवि कालिदास बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न उत्कृष्ट काव्य-कला से मण्डित कविताकामिनी के विलास संस्कृत-साहित्य के अनुपम कवि निश्चय ही कविकुलगुरु है। अतएव उनके सम्बन्ध में "कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः" यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत है।

७—कालिदास के प्रकृति-वर्णन पर रोचनात्मक उद्धरण देते हुए एक लेख लिखिए—

महाकवि कालिदास केवल मानव-सौन्दर्य के ही नहीं, बल्कि प्रकृति-सौन्दर्य के भी प्रवीण उपासक थे। उनके सजीव प्राकृतिक वर्णन हमारी दृष्टि के सामने एक स्पष्ट चित्र अंकित कर देते हैं। वे मुख्यतः प्रकृति के भव्य मनोहारी पक्ष का ही वर्णन करते है। मनुष्य तथा प्रकृति दोनों के मंजुल सामञ्जस्य एवं अद्भुत एकरसता कालिदास की कृति में उपलब्ध होती है। कालिदास प्रकृति को सुन्दर अलंकारों से सजाकर पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने शृंगार के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों का रमणीय चित्र उपस्थित किया है। उनके मेघदूत, ऋतुसंहार, रघुवंश, शाकुन्तल आदि समस्त कृतियों में प्रकृति का सुन्दर एवं सजीव चित्रण मिलता है।

कालिदास के काव्यों में प्रकृति-चित्रण की विविधता है। वे प्रकृति के बाह्यरूप का जितना भव्य विवेचन करते हैं अन्तःप्रकृति के भी उतने ही पारखी हैं। अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर वे प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण करते हैं। कुमार-सम्भव तो प्रकृति-वधू का मनोरम ललित हास्य है। इसके प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन प्रकृति का मनोहर दृश्य उपस्थित करता है। सन्ध्या के समय चन्द्ररूपी नायक अपनी किरणरूपी सुकुमार अंगुलियों से रात्रि के अन्धकार रूपी बिखरे केश-पाश को समेट कर रजनी प्रियतमा का अर्धमुद्रित कमलरूपी नेत्र वाले मुखमण्डल का चुम्बन कर रहा है:—

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशिः॥

कालिदास का प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों प्रकार के रूपों का वर्णन प्रशंसनीय है। कुमारसम्भव में तो आलम्बनरूप में प्रकृति का वर्णन चातुर्य के साथ किया गया है। उपर्युक्त उदाहरण इस कोटि में रखा जा सकता है उद्दीपन प्रकृति-वर्णनों से ऋतु-संहार एवं कुमारसम्भव भरा पड़ा है।

ऋतुसंहार का ऋतुओं का वर्णन इतना सजीव है कि उसके पढ़ने से ही वह पाठकों के हृदय को मनोरंजित कर देता है। अभिज्ञान-शाकुन्तल

में एक ही वस्तु का दो रूपों में वर्णन कितना मनोहर है। वही चन्द्रमा संयोगी को अपने किरणों से आनन्द प्रदान करता है और वही वियोगिनी को अपनी शीतल किरणों से भी दग्ध करता हुआ दिखाई देता है—

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः,
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः
त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥

सम्वेदनात्मक प्रकृति-वर्णन में कालिदास का अत्यन्त मनोयोग दृष्टि-गोचर होता है। मानव प्रकृति के साथ सामंजस्य प्रकट करते हुये लक्षित होता है। मानव के साथ प्रकृति भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला के विदाई के अवसर पर उनके वियोग में प्रकृति भी दुःखी है। मृग कुशाओं के ग्रास को उगल रहे है, मयूर नृत्य बन्द कर दिये हैं और लताएँ अश्रु के रूप में पीले पत्तों को छोड़ रही है। कितना सुन्दर वर्णन है:—

उद्गलितदर्भकवला मृगा परित्यक्तनर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चत्यश्रूणीव लताः ।

मानवीयकरण के रूप में प्रकृति-वर्णन तो कालिदास के काव्यों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। रघुवंश के द्वितीय सर्ग में राजा दिलीप का नन्दिनी की सेवा करते समय वनस्पति एवं वायु आदि का भव्य मानवीकरण किया है। राजा दिलीप के ऊपर लताएँ उस प्रकार पुष्प-वृष्टि कर रही हैं। जिस प्रकार पौरकन्याएं खीलों की वृष्टि करती हैं, वांस के समूह राजा का यश गा रहे है और पवन भी उनकी सेवा कर रहा है:—

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणाम—
नोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्र—
माचारपूतं पवनः सिषेवे ।

कालिदास का मेघदूत प्रकृतिकान्ता के सुन्दर भोग-विलास आदि चेष्टाओं का वर्णन है। इसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रकृति वर्णन ही है। महाकवि ने अपनी कृतियों मे प्रकृति और प्रेम का मधुर सम्बन्ध स्थापित किया है। उन्होंने प्रकृति को नायिका के रूप में देखा है।

इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें मेघदूत में मिलता है। यक्ष अपनी पत्नी के अंगों की समता प्रियंगुलता से करता है। चकित हरिणी की दृष्टि में उसके कटाक्षों का अनुभव करता है। चन्द्रमा में उनके मुख की शोभा एवं मयूर-पुच्छों में अलकों का अनुमान करता है। नदी की चंचल लहरों में भौंहों की शोभा देखता है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने प्रकृति को मानव के सहचर-रूप में प्रदर्शित किया है क्योंकि अलंकारों से रहित वल्कल वस्त्र धारण करने वाली शकुन्तला में अकृत्रिम सौंन्दर्य को प्राकृतिक उपमा के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है:--

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।

विशेषत: नाटक का चतुर्थ अंक प्रकृति-वर्णन का ही ज्वलन्त उदाहरण है। उसमें प्राय: सभी वर्णन प्रकृतिपरक हैं। तपोवन में वृक्ष शकुन्तला के विदाई के समय आभूषण देते हैं। उनके विचार से प्रकृति जड़-पदार्थ नहीं है। उसमें भी चेतनता का व्यवहार दिखाई देता है। जिस प्रकार चेतन जगत् में भी लोग आपस में प्रेम होने कारण सुख-दुःख में एक दूसरे को सहायता करते हैं, उसी प्रकार प्रकृति भी करती है:—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभः लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैः,
दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।

कवि मानव-सौन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता के अभिव्यंजन के निमित्त का आश्रय लेता है। कहीं वह प्रकृति के ऊपर मानव-भावों एवं व्यापारों का ललित आरोप करता है। कहीं वह प्रकृति एवं मानव के बीच परस्पर गांठ बांधकर सहानुभूति एवं रमणीय रागात्मक वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ता है। कहीं वह प्रकृति को भगवान् के ललित-लीला का निकेतन मानकर आनन्द में विभोर हो जाता है। अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि

कालिदास प्रकृति के अन्तःतल के सूक्ष्म पारखी महाकवि है। जिनकी दृष्टि प्रकृति के सौम्य-भाव, माधुर्यमय वर्णन पर तथा प्रकृति के स्निग्ध सौन्दर्य पर रुकती है तथा भीषणता से पराङ्मुख रहती है।

८—कालिदास की शैली की विशेषतायें बताइये—

महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत-साहित्य के कवियों में प्रथम है। अतएव इन्हें कवि-कुल-गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है। उनका नाम केवल शिक्षित समाज तक ही नहीं, बल्कि अशिक्षित समाज में भी उसी प्रकार व्याप्त है। कालिदास की प्रतिभा एवं शैली सर्वातिशायिनी है। शैली की दृष्टि से कालिदास की शैली संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय है। संस्कृत-साहित्य के दो मार्ग प्रमुख है--(१) सुकुमार-मार्ग (२) बिचित्र-मार्ग। सुकुमार-मार्ग कों ही रसमयी-पद्धति कहीं जाती है। इसके उद्भावक वाल्मीकि है। इसी मार्ग का अवलम्ब लेकर महाकवि कालिदास ने 'रसमयी-पद्धति' में अपने काव्यों का प्रणयन किया है।

वैदर्भी-रीति—महाकवि कालिदास की लोकप्रियता का कारण है उनकी प्रसादपूर्ण लालित्ययुक्त परिष्कृत शैली। उनके समस्त ग्रन्थ वैदर्भी शैली में लिखे गये हैं—

"वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।"

यही नहीं बल्कि दण्डी ने भी वैदर्भी-रीति की शुद्धि कालिदास के द्वारा मानी है—

लिप्ता मधुद्रवेणासत् यस्य निर्विशता गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्।

ललित-पद-बिन्यास के माधुर्य की विशेषता एवं सुन्दर भावों की व्यंजना में कालिदास को कबिता-कामिनी का विलास कहा जाता है। कालिदास के काव्यों में हृदय-पक्ष की प्रधानता है। कवि मानव-हृदय की प्रवृत्तियों को समझने और प्रकट करने में चतुर है। संसार का अनुभव गहरा होने के कारण मार्मिक पक्ष ग्रहण करने में अपूर्व भावुक है। व्यजना-वृत्ति के वे सिद्धि कवि हैं। एक ही शब्द में अनेक भावों का चित्रण उनकी विशेषता है। भाषा की दृष्टि से उनकी भाषा सरल एवं सुबोध है। भाषा में दुरूहता एवं कृत्रिमता

नहीं है। लम्बे समासों का अभाव एवं ललित-पद-सन्निवेश इनकी विशिष्ट कला है। भाषा की सरलता, शैली की सुगमता इनके प्रमुख गुण है।

प्रतिभा—कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने महाकाव्य, गीतिकाव्य एवं नाट्य-काव्य सभी में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है। इस दिशा में कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सकता है। काव्य की आत्मा रस की अभिव्यक्ति जैसी इनके काव्यों में हुई है वैसी अन्यत्र कहीं भी नहीं हुई है। इनके काव्यों में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों का सुन्दर चित्रण हुआ हैं। मेघदूत तो दोनों दृष्टिकोण से एक सफल काव्य है।

प्रकृति-वर्णन—कालिदास बाह्य एवं अन्तः दोनों पक्षों के प्रकृति-वर्णन में बेजोड़ है। प्रकृति के विविध भावों के चित्रण में वे अद्वितीय हैं। जितना सुन्दर वर्णन बाह्य-प्रकृति का कर सकते हैं उतना ही भव्य-चित्रण वे अन्तः प्रकृति का भी कर सकते हैं। इस प्रकार वे प्रकृति के प्रवीण पुरोहित है।

अलंकार-योजना—महाकवि कालिदास अलंकार-योजना में अनुपम है। इनकी कविता में अलंकार बल-पूर्वक नहीं लाया गया है। जहाँ कहीं अलंकार आये हैं वे स्वाभाविक है। उनमें कृत्रिमता नहीं है। उपमा में तो वे बेजोड़ है ही, बल्कि उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक आदि अलंकार भी उनके काव्यों में उसी प्रकार मिलते हैं। द्रुतविलम्बित छन्द में यमक का वर्णन इनका अद्वितीय हैं। राजा दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा के बीच में नन्दिनी गाय की उपमा दिन व रात्रि के मध्य सन्ध्या के समान दी गई है—

"दिनक्षपामध्यगतेव संध्या"

इस प्रकार अलंकार के चित्रण में कालिदास कम नहीं है। उपमा तो उनके वाक्यों के पग-पग पर हैं।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण में कालिदास का स्थान अद्वितीय है। उनके पात्र आदर्श एवं चरित्र-प्रधान है। पात्रों का व्यक्तित्व अपनापन लिये हुए है। रघुवंशी राजाओं का चरित्र-चित्रण तो आदर्श रूप है। शैशवकाल में विद्याध्ययन करने वाले, युवावस्था में विषय की कामना करने वाले, वृद्धावस्था में मुनि की वृत्ति धारण करने वाले और अन्त में योग से शरीर का त्याग करने वाले, त्याग के लिये धन संग्रह करने वाले, सत्य के लिये कम बोलने वाले उनके राजाओं का आदर्श था।

दुष्यन्त का चित्रण कितना आदर्श पूर्ण है कि स्वविवाहिता अद्वितीय सुन्दरी शकुन्तला के विवाह-काल का स्मरण न आने से उनका परित्याग कर देता है।

प्रेम एवं सौन्दर्य--कालिदास प्रेम के तो वे कवि हैं ही सौन्दर्य के उपासक भी हैं। उनके काव्यों में प्रेम का सुन्दर चित्रण हुआ है। जहाँ मेघदूत में यक्ष एवं यक्षपत्नी के प्रेम का सुन्दर चित्रण हुआ है वहाँ शकुन्तला के अविवाहित नायक एवं नायिका के प्रेम का वर्णन किस सफलता से वर्णित है। कुमारसम्भव में पार्वती एवं भगवान् शंकर का प्रेम दर्शनीय है। सौन्दर्य के सम्बन्ध में तो "**किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्**" के मानने वाले हैं। जो वस्तु स्वतः सुन्दर है उसके लिये अलंकार की आवश्यता नहीं है। कालिदास ने प्रेम का आदर्श बहुत ऊँचा माना है। उन्होंने प्रेम की परिधि में ही सौन्दर्य माना है। "**प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता**" अर्थात् जहाँ सौन्दर्य वहाँ प्रेम भी हो यह कोई आवश्यक नहीं। क्योंकि प्रेम अनिर्वचनीय है। कालिदास के विचार से प्रेम त्याग और तपस्या से निर्मल होता है। कवि केवल मानवीय सौन्दर्य ही नहीं बल्कि प्राकृतिक सौन्दर्य के भी उपासक रहे हैं।

रसाभिव्यक्ति—महाकवि कालिदास शृंगार रस के कवि हैं। शृंगार रस के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का मार्मिक उद्‌घाटन कालिदास ने ही किया है। यद्यपि इनका करुण रस भी कम मार्मिक नहीं है। फिर भी शृंगार के विवेचन में अद्वितीय है। शकुन्तला का चतुर्थ अंक, अज का विलाप ये करुण रस के उदाहरण हैं। महाकवियों ने जहाँ-जहाँ शृंगार का वर्णन किया है वहाँ-वहाँ करुण रस को भी लाने का प्रयत्न किया है। शृंगार रस के शृंगारपक्ष की अपेक्षा वियोगपक्ष की मार्मिक मान्यता उनके मत से नवीन काव्यों में है।

सूक्तिवर्णन—कालिदास की शैली सूक्ति प्रधान है। उनके काव्य ग्रन्थों में सूक्तियों का भण्डार भरा पड़ा है। वे प्राचीनता के पक्षपाती नहीं हैं उनके मत से नवीन भी श्रेष्ठ माना जा सकता है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

कालिदास के हृदय के नवीनता के लिए बहुत बड़ा स्थान है। उनका कथन है कि क्षण-क्षण में जहाँ नवीनता पाई जाय वही सौन्दर्य है—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

अधिक हम कहाँ तक कहें, निश्चय ही महाकवि हमारे देश के राष्ट्रिय कवि हैं। इनके काव्यों में जो साहित्य रत्न हैं वह केवल भारतीयों को ही नहीं, बल्कि पाश्चात्यों को भी मार्ग प्रदर्शन करता आया है।

इस प्रकार शैली की दृष्टि से महाकवि कालिदास संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय कवि हैं। अतएव वे संस्कृत-कविता-कामिनी के विलास एवं 'कविकुल-गुरु' कहें जाते हैं। उनकी शैली में मधुरता का न्यास, प्रसाद की स्निग्धता रस का मधुर सन्निवेश प्रमुख है।

९—"उपमा कालिदासस्य" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि कालिदास का स्थान अद्वितीय है। महाकवि ने अपने काव्यों में अलंकारों का समुचित प्रयोग किया है। उनके अलंकार हृदयहारी, स्वाभाविक और मधुर है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का यथास्थान प्रयोग किया है। शब्दालंकार रजत के समान और अर्थालंकार सुवर्ण के समान है। जिस प्रकार मानव की चाँदी के आभूषणों की अपेक्षा स्वर्णालंकारों में सहज प्रवृति होती है उसी प्रकार कवियों में भी शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों को अधिक महत्त्व दिया है। किन्तु कालिदास ने दोनों को यथोचित स्थान दिया है। अनुप्रास अलंकार को उनकी कविता में स्वयं आ जाता है; किन्तु यमक और श्लेष अलंकारों का भी उन्होंने सुन्दर प्रयोग किया है। अर्थालंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, निदर्शना, उपमा आदि अलंकारों का उन्होंने सफलता के साथ चित्रण किया हैं। किन्तु उन्होंने उपमा को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय अलंकार माना है वे उपमाओं के द्वारा भावों को पाठक के हृदय में सरलता पूर्वक बैठा देना चाहते है। उनके काव्य ग्रन्थों में सर्वत्र ही उपमा की अलौकिक आभा प्रतिभासित होती है। किसी भी वर्णन को सजीव एवं यथार्थ चित्रण करने

में अत्यन्त सफल रहे हैं। यही कारण है कि आलोचक विद्वान् मुक्तकण्ठ से उनकी उपमा की प्रशंसा करते है—

'उपमा कालिदासस्य'

महाकवि कालिदास उपमा के सम्राट् है उनकी सभी उपमायें यथार्थ एवं वैज्ञानिक है। एक सुन्दर उपमा का उदाहरण देखिये— इन्दुमती स्वयंम्बर में आये हुये राजाओं का परिचय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ती जाती है इन्दुमती जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ जाती थी उसी राजाओं की आशाओं पर तुषारपात हो जाता था और उसका मुख मलिन हो जाता था—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल:।।

जिस प्रकार रात्रि में चलती हुई दीपक की शिखा जिस महल को छोड़कर आगे बढ़ जाती थी वही महल अन्धकार से मलिन हो जाता था उसी प्रकार इन्दुमती जिस राजा को छोड़ देती थी उसी राजा का चेहरा निराशा से मलिन हो जाता था। यहां पर दीपशिखा के साथ इन्दुमती की उपमा अद्वितीय है। इसी उपमा के कारण महाकवि को दीपशिखा की उपाधि मिली है।

कालिदास ने केवल भौतिक पदार्थों को ही उपमान नहीं बनाया है अपितु वेद, शास्त्र, स्मृति, व्याकरण, दर्शन आदिको भी उपमान बनाया हैं। वन की ओर जाती हुई नन्दिनी का सुदक्षिणा अनुगमन करती है। उस समय वह ऐसी लगती है जैसे स्मृतियां वेदों का अनुगमन करती है—

तस्या: खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।।२२।।

कालिदास की उपमायें यथार्थ तो हैं ही साथ ही उनकी विविधता भी दर्शनीय है। अनुरूपता की दृष्टि से उनकी उपमाएँ अद्वितीय हैं। वन से लौटते हुये दिलीप के तथा नन्दिनी के स्वागतार्थ खड़ी सुदक्षिणा के मध्य

नन्दिनी उसी प्रकार शोभा पा रही थी जैसे दिन और रात्रि के बीच सन्ध्या शोभा प्राप्त करती है :—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥२-२०॥

उपमा की उपर्युक्त कल्पना अत्यन्त स्वाभाविक और यथार्थ है। रक्त वर्ण वाली स्त्रीलिंग नन्दिनी सन्ध्या के समान और तेजस्वी पुल्लिग राजा दिलीप दिन तथा स्त्रीलिंग सुदक्षिणा रात्रि के समान है। यह उपमा यथार्थ के साथ-साथ प्रसंगानुकूल भी है।

कालिदास ने उपमानों का चयन करने के लिये पौराणिक कथाओं का भी आश्रय लिया है अमूर्त कल्पनाओं के सृजन में भी कवि को खूब सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार की उपमाओं का प्रदर्शन कर कालिदास ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। सज्जनों द्वारा आदरणीय उस राजा से युक्त नन्दिनी उसी प्रकार शोभायमान हुई जिस प्रकार सज्जनों से अनुमोदित अनुष्ठान से युक्त श्रद्धा शोभायमान होती हैं—

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः ।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ॥ २-१६ ॥

भोजन के लिए पारण के समय पर उपस्थित नन्दिनी सिंह को उस प्रकार तृप्ति प्रदान करने वाली थी जैसे चद्रमा का अमृत राहु को तृप्ति देता है—

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण ।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषः चान्द्रमसी सुधेव ॥ २-३९ ॥

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में उपर्युक्त उपमा का सौन्दर्य पूर्णरूप में विद्यमान है। कुछ श्लोकों को छोड़कर अधिकतर श्लोकों में उपमा प्राप्त हो ही जाती है।

१०—संस्कृत साहित्य के कवियों में महाकवि कालिदास का स्थान निर्धारित कीजिए—

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि कालिदास का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् कालिदास के सदृश दूसरे कवि की गणना नहीं करते हैं। महाकवि कालिदास एक कुशल कवि और सफल नाटककार

है। उन्होंने कुमारसम्भव और रघुवंश दो महाकाव्य, मेघदूत और ऋतुसंहार दो खण्डकाव्य, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र और अभिज्ञानशाकुन्तल तीन नाटकों की रचना की है। महाकवि की काव्यतन्त्री से जो अलौकिक संगीत निकला है उसकी झंकार सुनकर सारा संसार मन्त्र-मुग्ध हो गया है। महाकवि बाण ने उनकी प्रशंसा में कहा है—

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते" ॥

जर्मन कवि महाकवि कालिदास के प्रति अपने हृदय का उद्गार प्रकट करते हुये कहते हैं—

"Wouldst thou the earth and heaven itself in one sole name combine ? I uame thee O, Shakuntala and all at once is said".

सर विलियम् जोन्स कालिदास को भारत का शेक्सपियर मानते है। भारतीय कवि राजशेखर महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में कहते हैं—

"एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्"

वस्तुत: संसार में महाकवि कालिदास के समान कोई दूसरा कवि नहीं है। प्राचीनकाल में जब महाकवियों की गणना की जाती थी तो सर्वप्रथम कनिष्ठिका अंगुली पर कालिदास का नाम आता था। उनके सदृश दूसरे कवि के न होने से अनामिका पर गणना रुक जाती थी और इसलिये अनामिका का नाम सार्थक हो गया—

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

महाकवि कालिदास राष्ट्र के कवि है। वे विश्व के मङ्गल की कामना करते हैं। उनकी राष्ट्र-भावना बहुत ही प्रौढ़ है। उनके हृदय में समस्त विश्व के अभ्युदय की कामना निहित है। महाकवि की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनके विचार से राजा जगत् की विभूतियों का केन्द्र है वे राजा के हृदय में श्रेय का सम्बन्ध चाहते हैं वे भोग-विलास में आसक्त कामी राजा अग्निवर्ण का पतन दिखाकर देश को यह दिव्य सन्देश देते हैं कि मानव को भोग-विलास में फंसना नहीं चाहिये। इससे उसका पतन होता है।

महाकवि राष्ट्र के सामने रघुवंशी राजाओं का आदर्श रखते है वे रघुवंशी राजाओं का आदर्श-चरित्र सामने रखकर दिव्य सन्देश देते हैं। उनमें नवीनता और प्राचीनता का समन्वय है। उनका उच्च आदर्श, उनका दिव्य सन्देश तथा उनकी अलौकिक काव्य-प्रतिभा देशवासियों और विदेशियों को चमत्कृत कर देती है। यही कारण है कि वे आज भी जन-जन के कण्ठ के हार बने हुये हैं। महाकवि कालिदास उपमा के सम्राट् और अनुपम कवि हैं

महाकवि ने अपनी समस्त रचनाओं में वस्तु-विन्यास बड़े सुन्दर ढंग से किया है। मेघदूत का वस्तु-विन्यास बहुत ही उत्तम रीति से हुआ है। ऋतु-संहार में प्रकृति का मनोरम वर्णन किया गया है। रघुवंश के १९ सर्गों में ३७ राजाओं का चरित्र सुन्दर ढग से वर्णित किया गया है। दिलीप का तपोवन में जाकर गो-सेवा करना, रघु का दिग्विजय, इन्दुमती का स्वयंवर, अज का विलाप, दशरथ का आखेट, राम का विजय, पुष्पक विमानद्वारा यात्रा आदि दृश्यों को बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है। ये दृश्य पाठकों के सामने सहज ही उपस्थित हो जाते है। कुमारसम्भव का वस्तु-विन्यास अद्वितीय और अनुपम है।

रस, भाव, भाषा, अलंकार आदि सभी के चित्रण में महाकवि अद्वितीय है। उनकी कविता प्रसादगुण से युक्त है। भाषा और शैली सरस परिमार्जित एवं परिष्कृत है। अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक और बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। उनका छन्दो-विधान भी अद्वितीय है। उनकी काव्यकलाकौशल एवं रसमय वर्णनों को देखकर उन्हें 'कविकुलगुरु' की उपाधि से सम्मानित किया गया है।

जैसी काव्य-प्रतिभा कालिदास में दिखाई देती है वैसी अन्य किसी कवि में नहीं। यही कारण है भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् उन्हें संसार के कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं। वे मानव-हृदय के सुकुमार भावों की व्यंजना में अनुपम है। उनकी अप्रतिम काव्य-शैली स्पृहणीय विशेषताओं के कारण उन्हें सभी विद्वान् एक स्वर से संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार करते है।

११—रघुवंश के द्वितीय सर्ग का कथानक संक्षेप में लिखिए और उसका महत्त्व बताइए—

सूर्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु के कुल में समुद्भूत महाराज दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ सन्तान-प्राप्ति का उपाय पूंछने के लिए गुरु वशिष्ठ के आश्रम पर पहुँचते हैं। गुरु वसिष्ठ उन्हें 'नन्दिनी की सेवा करो. उसकी प्रसन्नता से पुत्र-प्राप्ति होगी' इस प्रकार गो-सेवा का उपदेश देते हैं। राजा उस रात्रि को गुरु के आश्रम पर ही बिताता है। राजा प्रातःकाल सोकर जगने के बाद नित्यकर्म से निवृत्त होकर सुदक्षिणा द्वारा सम्पूजित गाय को वन में चराने के लिए ले जाता है। सुदक्षिणा भी उनका अनुगमन करती हैं। परन्तु दयालु राजा उनको लौटा देते हैं। बाद में राजा अन्य सेवकों एवं अंगरक्षकों को भी लोटा देते हैं क्योंकि वे अपनी रक्षा करने में स्वयम् समर्थ हैं।

वन में राजा बिना किसी व्यवधान के नन्दिनी का अनुसरण करते हुए सेवा करते हैं। जब सायंकाल को नन्दिनी वशिष्ठाश्रम को लौटती है तब वे भी उसके साथ ही लौटते हैं। नन्दिनी के आश्रम में आने पर सुदक्षिणा नन्दिनी की विधि से पूजन करती है। बछड़े को दूध पिलाने के पश्चात् राजा रात को भी सेवा में लग जाते हैं। दूसरे दिन फिर यही क्रम चलता है।

इस प्रकार राजा को नन्दिनी की सेवा करते हुए इक्कीस (२१) दिन व्यतीत हो जाते हैं। बाइसवें दिन राजा की परीक्षा लेने के उद्देश्य से नन्दिनी हिमालय की कन्दरा में घुसकर एक सिंह द्वारा अपने को आक्रान्त प्रदर्शित करती है। पर्वत की शोभा में दत्तचित्त राजा गाय के शब्द को सुनते हैं और गाय को सिंह से दबोची हुई देखकर सिंह को मारने के लिए तरकस से बाण निकालना चाहते हैं। परन्तु राजा का हाथ बाण पर चिपक जाता है, इससे राजा मन ही मन दुःखी होता है।

उसके बाद अपने विषय में विस्मित राजा से सिंह हंसकर कहता है कि मुझे साधारण सिंह मत जानो। मैं शिवजी का सेवक कुम्भोदर हूं। मुझे इस वृक्ष की रक्षा हेतु शंकर जी ने नियुक्त किया है क्योंकि हाथी इसकी छाल

को उखाड़ देते थे इससे पार्वती जी को अत्यन्त दुख हुआ था, क्योंकि इसे उन्होंने पुत्रवत् पाला था। तभी से उन्होंने मुझे इसकी रक्षा के लिए नियुक्त किया है। अतः यहाँ पर आने वाले जीवों को मैं खा लेता हूं। इसलिये इस गाय को मैं खाऊंगा और आप लौटकर गुरु के आश्रम पर चले जाइये।

सिंह की इस बात को सुनकर राजा का क्रोध एवं दुःख कुछ कम हुआ क्योंकि उसके कमजोर पड़ जाने का कारण शंकर का तेज था। राजा सिंह से कहता हैं कि शकर का प्रभाव मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु आप इस गाय के बदले मुझे खाकर अपना नियम को पूरा करें। सिंह राजा से कहता है कि तुम मुझे विवेकहीन मालूम पड़ते हो जो इस गाय के बदले स्वयम् को नष्ट करना चाहते हो। यदि जीवों की रक्षा का विचार कर तुम स्वयम् को नष्ट करना चाहते हो तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इस गाय के बदले गुरु को तुम असंख्य गाय देकर प्रसन्न कर सकते हो। तुम्हें पृथ्वी में स्वर्ग का सुख अनुभव करना चाहिये।

तब राजा कहता है कि क्षत्रिय वही है जो नष्ट होने से रक्षा करे। यदि मैं इसकी रक्षा नहीं कर सका तो मेरा जीना बेकार है। आप परतन्त्र हैं और यह जानते हैं कि रक्षणीय वस्तु को नष्ट कर सेवक स्वामी के सामने किस प्रकार मुख दिखा सकता है। मुझे अपने शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। आप मुझे खा लीजिये। आपस में बातचीत करने से हम दोनों मित्र हो गये हैं। अतः मित्र की प्रार्थना स्वीकार करें। तब सिंह राजा की प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है।

उसके बाद राजा अस्त्रों को अलग रखकर सिर झुकाकर सिंह के आक्रमण की प्रतीक्षा करता है। परन्तु आकाश से पुष्प वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और राजा सामने नन्दिनी को ही देखता है, सिंह नहीं दिखाई देता है। विस्मित राजा को नन्दिनी समझाती है कि परीक्षा लेने के लिये मैंने ही नाटक रचा था। अब मैं प्रसन्न हूँ। वर मांगो। राजा पुत्र का वर मांगता है। नन्दिनी वर देते हुए अपना दूध पीने की आज्ञा देती है। राजा बछड़े एवं यज्ञादि से बचे हुए दूध को पीने के लिए कहता है। नन्दिनी और भी प्रसन्न होती है तथा वशिष्ठ के आश्रम पर लौटती है।

राजा नन्दिनी के प्रसन्न होने का वृत्तान्त गुरु वसिष्ठ से कहता है। वशिष्ठ बछड़ेको पीने के पश्चात् तथा यज्ञादि क्रियाओं के सम्पादन से शेष दूध को पीने का आदेश राजा को देते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल सुदक्षिणा के साथ राजा को अयोध्या के लिये प्रेषित करते हैं। अयोध्या में आगमन पर राजा का विशेष स्वागत किया जाता है। राजा मन्त्री को सौंपे हुए राज-काज को पुनः सम्हाल लेता है। कुछ समय पश्चात् रानी सुदक्षिणा गर्भवती हो जाती है।

महाकवि कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य संस्कृत साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ है। इसमें द्वितीय सर्ग का विशेष महत्त्व है। महाकवि कालिदास की काव्य-कला द्वितीय सर्ग में जितनी प्रस्फुट हुई है उतनी किसी अन्य सर्गों में नही। इस सर्ग में प्रायः काव्यगत सभी विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि महाकवि उपमा अलंकार के सर्वश्रेष्ठ कवि है। द्वितीय सर्ग मे उपमा अलकार के विविध उदाहरण मिलते हैं। कहीं पर प्राकृतिक उपमाएं अपनी छटा दिखला रही है और कहीं पर शास्त्रीय उपमायें अपनी कमनीय कान्ति विखेर रही है। उपमा के सभी प्रकार के उदारण इस सर्ग में मिलते हैं। उपमा के अतिरिक्त अन्य अलंकारो का भी यथा-स्थान सुन्दर चमत्कार देखा जाता है। द्वितीय सर्ग में अनेक प्रकार की सूक्तियों को प्रस्तुत कर प्रसंग को सर्वोत्तम बनाया गया है।

इस सर्ग में साभिप्राय शब्दों का विशेष प्रयोग किया गया है। इस सर्ग की एक प्रमुख विशेषता है। प्राकृतिक चित्रण उपमा के समान प्रकृति के ही विविध रूपों का चित्रण इस सर्ग में हुआ है। इस सर्ग की प्रायः समस्त घट-नाएं प्रकृति के गोद में ही घटित हुई है। प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों का भव्य चित्रण इस सर्ग में हुआ है। राजा दिलीप का चरित्र-चित्रण बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। सिंह-दिलीप-सम्वाद नाटकीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। रस, भाव, भाषा, शैली आदि सभी विशे-षताओं से परिपूर्ण है।

१२. रघुवंश के द्वितीय सर्ग के आधार पर दिलीप का चरित्र-चित्रण कीजिए—

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के द्वितीय सर्ग में इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न महाराज दिलीप का चरित्र चित्रित किया है। राजा दिलीप पुत्र की कामना से गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। इनके आदेश से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी को चराने के लिये वन में ले जाते हैं। महाकवि ने राजा दिलीप को एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया है। राजा दिलीप चक्रवर्ती सम्राट् होते हुए भी राज्य चिन्हों का परित्याग कर गुरु के आदेश से गुरु-सेवा का व्रत धारण करते है। राजा दिलीप तेजोविशेष से युक्त एक प्रतापशाली राजा हैं। उन्हें अपनी रक्षा के लिये किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं है। वे अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ है—

न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा,
स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।

दिलीप श्रेष्ठगुणसम्पन्न गुरु के प्रति अपार श्रद्धा रखने वाला राजा है। वह वीर होते हुए भी दयालु है वह अपनी भौतिक शरीर पर आस्था न रखकर यशरूपी शरीर को उत्तम धन समझता है। वह सिंह से प्रार्थना करता है कि हे मृगेन्द्र ! आप मेरे इस भौतिक शरीर की चिन्ता न करें, मेरी कीर्ति-रूपी शरीर की रक्षा के लिये दयालु बने। **(यशः शरीरे भव मे दयालुः)** नन्दिनी के वर मांगने के लिए कहने पर भी अनन्त कीर्ति वाले पुत्र की याचना करता है।

राजा दिलीप गुरु वशिष्ठ का परम-भक्त और नन्दिनी का सेवक है। वह गुरु की यज्ञीय क्रियाओं की विधिवत् सम्पादन को ध्यान में रखकर गाय की रक्षा के लिये अपने शरीर को अर्पित कर देता है। सन्ध्या के समय वन से लौटकर गुरु और गुरु-पत्नी के चरणों का अभिवादन करते हैं। नन्दिनी के दूध पीने के लिये कहने पर भी विना गुरु के आदेश के वे नन्दिनी का दूध पीना स्वीकार नहीं करते। आश्रम से राजधानी को लौटते समय भी गुरु के प्रति आदर प्रकट करना नहीं भूलते। गुरु के आशीर्वाद से ही उन्हें उत्तम पुत्र की प्राप्ति होतीहै।

राजा दिलीप एक उच्चकोटि के शासक हैं। प्रजा का पालन करना उनका परम कर्त्तव्य है। वह दीनों का उद्धारक एवं उद्दण्ड व्यक्तियों का विनीत करने वाला है। उनमें आदर्श राजा के सभी गुण विद्यमान हैं।

राजा दिलीप कर्त्तव्यपालन में पूर्ण सजग रहे हैं उन्होने गो-सेवा रूप व्रत को धारण किया और उसे पूर्ण रूप से निभाया है। नन्दिनी जब राजा की परीक्षा लेने के लिये मायामय शेर से आक्रान्त हो जाती है तब राजा दिलीप गो-रक्षा को अपना परम-कर्त्तव्य समझ कर उसकी रक्षा के लिये शेर के सामने अपने को स्वयं अर्पित कर देता है। शेर के अनेकों प्रलोभन देने पर भी वे अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होते। वे सिंह से कहते हैं कि मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रिय शब्द का अर्थ क्षत भय से रक्षा करना है। अतः मैं क्षत्रिय शब्द के उक्त अर्थ के विपरीत आचरण वाला नहीं होना चाहता हूँ।

इस प्रकार राजा दिलीप एक आदर्श राजा है। उनके उदात्त चरित्र और लोकोत्तर कार्यों से प्रसन्न होकर देवता उन पर पुष्प वृष्टि करते हैं। उनकी गुरु-भक्ति और नन्दिनी के प्रति करुणा अद्वितीय है। राजा दिलीप का चरित्र आदर्श तथा प्रशंसनीय है।

१३. रघुवंश के द्वितीय सर्ग में वर्णित दिलीप की गो-सेवा का वर्णन कीजिए—

प्राचीन काल में अयोध्या में इक्ष्वाकु-वंशी राजा दिलीप राज्य करते थे। वे एक प्रतापशाली और दयालु राजा थे, पर उनके कोई सन्तान न थी। सन्तान न होने के कारण वे खिन्न थे। अतः सन्तान-प्राप्ति का उपाय पूछने के लिये पत्नी सुदक्षिणा के साथ अपने कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम पर गये। गुरु वशिष्ठ ने सन्तान-प्राप्ति के लिये उन्हें कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करने का आदेश दिया। गुरु की आज्ञा पाकर महाराज दिलीप राज-चिह्न का परित्याग कर गो-सेवा में लग गये।

गो-सेवा का प्रकार—

रात्रि भर आश्रम में विश्राम करने के पश्चात् प्रातःकाल राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के द्वारा गन्ध-माला आदि से पूजित नन्दिनी को खोलकर चराने के लिये वन में ले गये। कुछ दूर जाकर राजा ने पत्नी सुदक्षिणा तथा

अनुचरों को लौटा दिया और स्वयं गाय का रूप धारण करने वाली पृथ्वी के समान गाय की रक्षा करने लगे। महाराजा दिलीप घास को उखाड़ कर उसके स्वादिष्ट ग्रासों को खिलाते थे, खुजली होने पर खुजलाते थे और डांस आदि वन-मक्खियों को उड़ाते थे। इस प्रकार गाय की सेवा में तत्पर हो गये—

"आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत्॥"

तदनन्तर राजा दिलीप गाय की सेवा करते हुए उसके खड़े हो जाने पर खड़े हो जाते थे और उसके चल देने पर चल पड़ते थे और जब गाय बैठ जाती थी तब वह बैठते थे और जब वह जल पी चुकती थी तब वे भी जल ग्रहण करते थे। इस प्रकार जैसे छाया मनुष्य का अनुसरण करती है उसी प्रकार राजा दिलीप ने भी नन्दिनी का सब प्रकार से अनुसरण किया। राजा दिलीप उस गाय की सेवा करते थे कि जिससे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे और उसके कार्य में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न न हो।

"स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥"

इस प्रकार दिन भर गाय चराने के पश्चात् सन्ध्या के समय राजा दिलीप आश्रम पर लौट आते थे। आश्रम पर आने पर उनकी पत्नी सुदक्षिणा विधिवत् गाय की पूजा करती थी। अक्षत हाथ में लेकर नन्दिनी की परिक्रमा कर उसके विशाल ललाट की पूजा करती थीं। नन्दिनी बछड़े के लिये उत्सुक होते हुये भी धैर्यपूर्वक पूजा को स्वीकार की थी। सन्ध्या के समय राजा दिलीप गुरुपत्नी के साथ गुरु वसिष्ठ के चरणों की वन्दना कर और सायंकालीन विधि को समाप्त कर दुह लेने बाद पुनः गाय की सेवा करने में तत्पर हो गये।

राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ नन्दिनी के पास भोज्य-पदार्थ और दीपक रखकर बैठ गये। उसके बाद उसके सो जाने पर सो गये और प्रातःकाल उसके सोकर उठने के बाद उठे—

"तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्॥"

इस प्रकार गाय की सेवा करते हुये राजा दिलीप के २१ दिन बीत गये। २२ वें दिन नन्दिनी राजा दिलीप की भक्ति और श्रद्धा की परीक्षा लेने के लिये एक पर्वत की गुफा में घुस गयी और राजा ने मायारूपी सिंह के द्वारा आक्रान्त नन्दिनी को देखा। राजा दिलीप अपने को सिंह के सामने अर्पित कर गाय को छुड़ाना चाहे कि नन्दिनी ने प्रसन्न होकर राजा से कहा—हे राजन्! मैंने माया को उत्पन्न कर तुम्हारी परीक्षा ली है। हे पुत्र! मैं तुम्हारी गुरु के प्रति भक्ति और मेरे प्रति करुणा से प्रसन्न हूं। तुम मुझसे वर मांगो। मुझे साधारण गाय न समझकर समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु समझो।

"भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते पुत्र! वर वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।"

नन्दिनी के ऐसा कहने पर राजा पुत्र की याचना करता है। अन्त में गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से बछड़े के दूध पी लेने के बाद और गुरु की यज्ञ-विधि के पूरा हो जाने के बाद गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से दुग्धपान किया और उन्हें मनोभिलषित पुत्र की प्राप्ति हुई।

१४— रघुवंश के द्वितीय सर्ग में वर्णित सिंह-सम्वाद को अपनी भाषा में लिखिए और उसका महत्त्व बताइये —

महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दिलीप नन्दिनी की सेवा-व्रत धारण कर उसे जंगल में चराने के लिये ले गये। राजा के नन्दिनी की सेवा करते हुये इक्कीस दिन बीत जाने पर २२ वें दिन नन्दिनी राजा की परीक्षा लेने के लिये एक पर्वत की कन्दरा में घुस गई। राजा ने नन्दिनी के आर्त्तनाद को सुनकर जब उधर देखते हैं कि नन्दिनी के ऊपर एक सिंह दबोचे हुये बैठा है। राजा सिंह के इस आक्रमण को सहन न कर सके। उन्होंने सिंह से नन्दिनी की रक्षा के लिये धनुष पर बाण चढ़ाने के लिये तर्कस से बाण निकलना चाहा, किन्तु उसका हाथ वहीं पर चिपक गया।

इसके पश्चात् राजा की इस अवस्था को देखकर मुस्कराता हुआ सिंह मनुष्य की वाणी में राजा से बोला—हे राजन्! आप परिश्रम न करे आपका मेरे ऊपर प्रहार किया गया अस्त्र निष्फल होगा। जिस प्रकार वृक्षों को उखाड़ फेंकने की शक्ति रखने वाला वायु पर्वत को उखाड़ने में असमर्थ रहता है। उसी प्रकार आपका यह अस्त्र प्रहार करना व्यर्थ जायेगा।

"अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥"

तदनन्तर राजा को सम्बोधित करते हुये सिंह कहता है कि हे राजन् ! मैं कुम्भोदर नामक शिव का सेवक हूँ। तुम सामने जो देवदारु का वृक्ष देख रहे हो इसे शिव ने अपना पुत्र मान रखा है और पार्वती ने सोने के घड़े रूपी स्तन से निकले हुये पय से सींचा है। किसी समय एक जंगली हाथी ने इस वृक्ष की छाल को उखाड़ दिया था इससे पार्वती जी को अत्यधिक कष्ट हुआ। तभी से शिवजी ने मुझे सिंह बना करके इस पेड़ की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया है और कहा जो प्राणी अपने आप यहाँ आये उससे तुम अपनी जीविका-निर्वाह करना। आज मेरे भोजन के अवसर पर यह गाय उपस्थित हुई है। अतः इसके रुधिर से मैं अपनी भूख मिटाना चाहता हूँ। इसलिये लज्जा को त्याग कर लौट जाओ। आपने गुरु के प्रति अपनी भक्ति दिखा दी है।

सिंह के इस प्रकार धृष्टतापूर्ण वचन को सुनकर वाण के प्रहार में निष्फल प्रयास वाला राजा सिंह से बोला—हे मृगराज ! इस चराचर जगत् के सृष्टि, रक्षा और विनाश करने वाले भगवान् शिव मेरे आदरणीय है। उनका शासन मेरे लिये शिरोधार्य है। किन्तु सामने नष्ट होते हुये गुरु वशिष्ठ की इस गो रूप धन की उपेक्षा नहीं कर सकता। हे मृगेन्द्र ! आप इसके बदले में मुझे खा लीजिए और इस गाय को छोड़ दीजिए।

इस प्रकार राजा दिलीप का वचन सुनकर हँसता हुआ सिंह बोला कि हे राजन् ! मेरे विचार से तुम मूर्ख मालूम पड़ते हो जो कि तुम इस तुच्छ गाय के लिये जगत् का एकछत्र राज्य युवावस्था और सुन्दर शरीर को त्याग रहे हो।

"एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥"

सिंह फिर कहता है कि हे राजन् ! तुम जीवित रहते कितनी प्रजाओं का पालन करोगे और इस प्रकार करोड़ों गायें देकर गुरु को प्रसन्न कर सकते हो। अतः आप अपने इस बलवान् शरीर की रक्षा कीजिये। सिंह की इस प्रकार वाणी को सुनकर राजा सिंह से फिर बोला—हे राजन् ! क्षत अर्थात् भय से रक्षा करने वाले को क्षत्र कहते है और क्षत्र शब्द क्षत्रिय का वाचक है।

अतः क्षत्रिय होकर उक्त अर्थ के विपरीत आचरण कैसे कर सकता हूँ मैंने अपने शरीर को अर्पित कर आपसे इस गाय को छुड़ाना चाहता हूँ। इससे आपके भोजन की पूर्ति भी हो जायगी और मुनि वशिष्ठ की होमानुष्ठान की विधि भी नष्ट नहीं होगी। हे मृगराज ! मुझे अपने इस भौतिक शरीर पर कोई आस्था नहीं है यदि आप मेरा वध नहीं करना चाहते तो मेरा यश रूपी शरीर की रक्षा करने की कृपा कीजिए। हे मृगेन्द्र ! परस्पर वार्तालाप से आप मेरे मित्र हो गये हों। अतः आप इस मित्र की प्राथना को अस्वीकार न करें।

सम्बन्धभामाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ सङ्गतयोर्वनान्ते।
तद्भूतनाथानुग ? नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥

इसके बाद राजा सिंह के सामने अपने शरीर को अर्पित कर देते हैं। राजा दिलीप सिंह के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उनके ऊपर पुष्प होने लगती है। राजा "हे पुत्र उठो" इस प्रकार को वाणी सुनकर शिर ऊपर उठाकर जब देखता है। तो समाने प्रसन्नचित्त नन्दिनी खड़ी है और सिंह कहीं भी नहीं दिखाई दिया।

रघुवंश के इस सिंह-दिलीप-सम्वाद से तत्कालीन भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। चक्रवर्ती सम्राट् होते हुये भी राजा राज-चिह्नों का परित्याग कर जगल में गौ-चारण करता है। इससे राजा की गो के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति लक्षित होती है। राजा गाय को सिंह से आहत देखकर अपने प्राण को समर्पित करने को तैयार हो जाता है। उसे अपने शरीर की तनिक भी परवाह नहीं है। वह अपने कीर्ति की कामना करता है। वह सोचता है कि कहीं मेरी कीर्ति में कलंक न लग जाय इससे राजा का राजोचित विशिष्ट गुण का प्रभाव चलता है। दिलीप में राजा के वैसे ही गुण विद्यमान है जो एक आदर्श राजा में होने चाहिये यही कारण है कि राजा के इस उदार गुणों को देखकर नन्दिनी प्रसन्न हो जाती है। और राजा को मनोभिलषित वर प्रदान करती है।

परिशिष्ट—४

श्लोक-सूची

	श्लोकसंख्या	पृष्ठ संख्या
'अ'		
अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः	७५	१३०
अथ प्रजानामधिपः प्रभाते	१	३१
अथान्धकारं गिरिगह्वराणाम्	४६	९२
अथैकधेनोरपराधचण्डात्	४९	९६
अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावम्	२६	६६
अमुं पुरः पश्यसि देवदारुम्	३६	७९
अलं महीपाल ! तव श्रमेण	३४	७७
'आ'		
आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्	१८	५६
आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानाम्	५	३८
'इ'		
इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो	४१	८६
इत्थं क्षितीशेन वशिष्ठधेनुः	६७	११९
इत्थं व्रतं पालयतः प्रजार्थम्	२५	६५
'उ'		
उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानम्	६१	१११
'ए'		
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं	४७	९३
एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे	५१	९९
'क'		
कण्डूयमानेन कटं कदाचित्	३७	८१
कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेः	५४	१०२

	श्लोकसंख्या	पृष्ठ संख्या
किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहम्	५७	१०६
कैलासगौरं वृक्षमारुरुक्षोः	३५	७८
क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः	५३	१०१
'ग'		
गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ	२३	६३
'त'		
ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी	३०	७१
ततः समानीय स मानितार्थी	६४	११५
तदा प्रभृत्येव वनद्विपानाम्	३८	८२
तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोः	२८	६६
तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणाम्	५०	६७
तथेति गामुक्तवते दिलीपः	५६	१०६
तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुः	३३	७५
तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन	७३	१२७
तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो	६२	११२
तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानाम्	६०	११०
तस्या खुरन्यासपवित्रपांसुः	२	३४
तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादम्	६८	१२०
तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै	३६	८३
तामन्तिकन्यस्तवलिप्रदीपाम्	२४	६४
तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थाम्	१६	५३
'ध'		
धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावम्	११	४६
'न'		
निर्वर्त्य राजा दयितां दयालुः	३	३५
निशम्य देवानुचरस्य वाचम्	५२	१००
'प'		
पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकम्	७४	१२८

	श्लोकसंख्या	पृष्ठसंख्या
पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन	२०	५८
पृक्तस्तुषारैः गिरिनिर्झराणाम्	१३	४९
प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे	४२	८७
प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं ताम्	२१	६०
प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशम्	७१	१२४
प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते	७०	१२३
'ब'		
बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः	३२	७४
'भ'		
भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च	६३	११४
भवानपीदं परवानवैति	५६	१०५
भूतानुकम्पा तव चेदियं गौः	४८	९५
'म'		
मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभम्	१०	४५
मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानाम्	४४	९०
'ल'		
लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैः	८	४२
'व'		
वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषम्	६६	११७
वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्याम्	२२	६१
वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तम्	१९	५७
व्रताय तेनानुचरेण धेनोः	४	३६
वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुः	३१	७२
विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य	९	४४
'श'		
शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निः	१४	५०
श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन	७२	१२५

	श्लोकसंख्या	पृष्ठसंख्या
'स'		
संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र ? कामम्	४३	८९
स कीचकैर्मारुतरन्ध्रपूर्णैः	१२	४७
सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि	१५	५२
स त्वं निर्वतस्व विहाय लज्जाम्	४०	८५
स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिम्	४५	९१
स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा	६९	१२१
सन्तानकामाय तथेति कामम्	६५	११६
स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीम्	७	४१
स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथा०	१७	५४
स पाटलायां गवि तस्थिवांसम्	२९	७०
सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः	५८	१०८
सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैः	२७	६७
सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण	५५	१०४
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयाताम्	६	३९

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट—
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

औषधयः - वनस्पति
गीता - योग व क्षेम
उपनिषद् - रहस्य